सवैया। लहिकै यह तामस दानव को तन
जामैं बिबेक न नेकु रहै।
मुनि सौ वर बात बखानत हो
गुनिकै जन जो भव ताप दहै॥
गिरिधारन भक्ति प्रभाव महा
कहिए किमि जा जस बेद कहै।
हरिभक्त अनन्य मैं गन्य सदा
तुमरे सम धन्य न अन्य अहै॥ ४९॥

जयंत। (सानन्द) तब तब।

कार्तिकेय। दोहा। इमि कहि कुलिस उठाइकै प्रमुदित चित सुरनाथ।
परिघ सहित असुरेस को काट्यो दूजो हाथ॥ ५०॥
तब निज बदन पसारिकै वृत्रासुर अरिकाल।
बाहन सहित सुरेस को लील गयो बिकराल॥ ५१॥
लखि सहसा सहसाच्छ कहं निगलत समर मंझार।
देवन हाहाकार किय असुरन जैजैकार॥ ५२॥

छप्पय। असुर उदर मैं सुरथ सहित चलि गए पुरन्दर।
जैसे कोऊ जाय स्याम गिरि कन्दर अन्दर॥
कृष्ण कवच परभाव भयो असु को अभाव नहिं।
काटि कुलिस सों कुच्छि कढ़े तुरतहिं ता थल महिं॥
जिमि फारि महातम निकर कों निकरत नभ मैं नखतपति।
तिमि कढ़त भए अरिअंग सों सुरपति वर भट बिमल मति॥५३॥

जयंत। (सानन्द) तब तब।

कार्तिकेय। दोहा।
तब निज कर महं कुलिस गहि रोस सहित सुरनाथ।
कई बरस मैं काटि कै महि पार्यौ अरि माथ॥ ५४॥

कबित्त। वृत्रासुर धर जबै धरनी पै आय गिर्यौ
थर थर हाले तबै तीन लोक नव खंड।
मेरे जान स्याम ने अपानी सता धरी नाय
तासों बची सृष्टि प्रलैकाल ना भयो अखंड॥

गिरिधरदास ना तौ कौन जानै कहा होतो
पाय कै प्रहार महाकाल दंड सो अखंड ।
छूटि जातो गज प्रान टूटि जातो कोल, रद्दु
कूटि जातो सेस फन फूटि जातो ब्रम्हअंड ॥ ५५ ॥

दोहा । वृत्रासुर की ज्योति कढ़ि भई व्याम मैं लीन ।
लखि व्याकुल भागे असुर सुरन नगारे दीन ॥ ५६ ॥

(मानन्द) पाप कट्यो पाप कट्यो ।

हा
अब मोहि उपजी चित्त मैं पितु पद दरसन चाह ।
ते कित देहु बताय मोहि निर्जर सैनानाह ॥ ५७ ॥

केय । दोहा । वृत्रासुर के नास लैां हम देखे अमरेस ।
अब तिनकों जानत नहीं अहैं कौन से देस ॥५८॥*

इतने मैं आयो मातलि दोउन के पाय परि ठाढ़ो भयो)

। दोहा । कहु मातलि अरि मारि कै कित राजत सुरराज ।
मैं तिनको दरसन चहत भयो सिद्ध सब काज ॥ ५९ ॥

मातलि । दोहा । वृत्रासुर कों मारिकै द्विज भय हत्या पागि ।
हम नहिं जानत कौन थल गए देवपति भागि॥६०॥

जयंत । दोहा । शत्रु मर्यो हत्या लगी मनु दोहरानो रोग ।
अब चलि तिन कें खोजिकै हरिए कोउ बिधि सोग ॥६१॥

कार्तिकेय, मातलि । सत्य सत्य

(इमि कहिकै सब निकरे)

इति श्री नहुष नाटके प्रथमोऽङ्कः ।

---

* यहां फिर गड़बड़ हो गया है, ६३ के स्थान पर ६४ का अङ्क दिया है ।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका ।

दसवां भाग ।

सम्पादक
कालिदास ।

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित ।

BENARES:
Printed at the Medical Hall Press,
1906.

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

दसवां भाग।

राजपुताने में प्राचीन शोध–अंक १।

(मुंशी देवी प्रसाद लिखित।)

(१) बूंदी।

बूंदी आड़ाबला पहाड़ के नीचे जो एक विभाग अर्बली[1] पर्वत का है, एक प्राचीन राजधानी हाड़ा जाति के चौहानों की है। इसको इनका राज होने से पहिले बुंदा मीने[2] ने बसाया था। उस समय सब मिला कर ३०० घरों की बस्ती थी। बुंदा के पोते जैता का कर्मचारी एक राजपूत था। उसकी बेटी जैता ने अपने बेटे के लिये मांगी। राजपूत ने बहुत कहा कि हमारा आपका सम्बन्ध नहीं हो सकता परन्तु जैता ने नहीं माना, तब वह मेवाड़ देश के गांव बम्बावदे में बांगाजी हाड़ा के पास गया और उनके कंवर देवाजी की सलाह से उसने ब्याह करना स्वीकार कर लिया और बरात ठहराने के लिये एक बाड़ा बनाकर उसके नीचे बारूद बिछा दी। आषाढ़ बदी ९ संवत १२९८[3] का ब्याह ठहरा था। उस दिन कंवर देवाजी भी आगए। मीने बड़ी धूम से बरात लेकर आए, उनको उसी बाड़े में

---

(१) अर्वली या अरिवली का नाम राजा भोज की बनाई "हिमाद्रि भूगोल" में अहिगवलो लिखा सुना है। यह भूगोल एक मित्र ने भोपाल में राठी जाति के महेसरी महाजन रामलाल के पास देखी थी।

(२) आड़ाबला तथा अर्बली पहाड़ में मीने विशेष कर के रहते हैं। इनको मारवाड़ और मेवाड़ में मेणे कहते हैं। हाड़ोती अर्थात् कोटा बूंदी और ढूंढाड़ तथा जयपुर के राज्य में मीने दो प्रकार के हैं एक उज्वल जो गाय बैल नहीं खाते हैं और दूसरे मैले जो खाते हैं। इनके हाथ का कोई हिन्दू पानी नहीं पीता। मारवाड़ और मेवाड़ के मेणे भी इसी प्रकार के हैं। इनका सविस्तर वृतान्त हमने मारवाड़ मनुष्यगणना की रपोट के तीसरे विभाग में लिख दिया है।

(३) सही संवत दूसरे इतिहासों से हमको १३४२ मिला है।

ठहराया ओर खूब मद्यपान कराया, जब वे नशे में धुत्त हो गए तो देवाजी ने बारूद में आग लगा कर उनको उड़ा दिया और जो बचे उनको तलवार से मार कर बूंदी में अमल कर लिया और उस राजपूत की तेल चढ़ी कन्या का बिवाह टोड़े के सोलंखी[१] रुपाल से कर दिया। फिर बूंदी से ढाई कोस दक्षिण पश्चिम के कोने में अपने पिता बांगाजी के नाम से बागेश्वरी देवी का मंदिर बावली सहित बनवाया और अपने दादा कोलणजी की छत्री गांव लाखेरी में बनवाई।

राव देवाजी के कंवर समरसी थे उनके राज में भीलों ने बड़ा उपद्रव मचाया। समरसी चंबल से उतर कर उनको दंड देने गए। पीछे आते हुए कोटे के भील कोटिये को भी लड़ाई में हरा कर भगा दिया। इनके २ कंवर जैतमाल और नरपाल थे, जैतपाल ने गांव बसाने के लिये वह धरती पिता से मांगली जहां उन्होंने भीलों पर जीत पाई थी और वहां जाकर कोटिया भील को मारा और कोटे में अपना अधिकार कर लिया।

राव समरसी के पीछे नरपाल और उनके पीछे हामा बूंदी के राव हुए जो संवत १३९३ में अपने कंवर बरसिंह को राज देकर काशी सेवन करने को चले गए और वहीं १४१३ में धाम प्राप्त हुए।

राव बरसिंह ने संवत १४११ में पहाड़ के ऊपर तारागढ़ का क़िला बनवाया और उसके नीचे नई बूंदी बसाई जिससे पुरानी बूंदी उजड़ गई। इस नई बूंदी की पोलें स्वर्गबासी महाराव राजा रामसिंह जी ने बहुत सुन्दर और सुदृढ़ बनवाई हैं।

बूंदी के क़िले में अच्छे अच्छे महल और दरीखाने रावरतन आदि पिछले राजाओं के बनाए हुए देखने के योग्य हैं। यह राजधानी हिन्दू बस्तियों का एक नमूना है।

महाराव राजा रामसिंहजी एक विद्वान और विद्यारसिक

---

(१) टोड़े के सोलंखी राजों की संतान में टोंक के भोमिये हैं। वे कहते हैं कि देवा जी बाप से रुठ कर बूंदी में रहते थे और उन्हींकी सहायता करके हमारे मूल पुरुष राव रूपाल जी ने मीनों को मारा था और बूंदी का राज दिलाया था। जिसके प्रतिफल में देवाजी ने अपनी पुत्री राव रूपाल जी को ब्याही थी।

श्रीमान थे। उनकी सभा के उत्तमोत्तम पण्डित और कवि शोभा देते थे जिनमें मुख्य पण्डित गंगासहाय जी थे जो अब भी विद्यमान हैं और कौंसिल के मेम्बर हैं। ये पहिले दीवान भी रह चुके हैं। बूंदी में जो संस्कृत ग्रंथ नहीं लगते थे वे सब इन्होंने पढ़ कर उनकी टीका भी बनादी है। यंत्रराज बनाने में तो ये बड़े कुशल हैं। इनके बनाए दो यंत्रराज बूंदी के दरीखाने में हैं एक भूगोल यंत्र है जिस पर लिखा है कि भादों सुदी १० संवत १९२८ को शिवलाल कारीगर से यह भूगोल यंत्र पण्डित गंगासहाय ने बनवाया।

दूसरा खगोल यंत्रराज है। इस पर यह लिखा है कि महाराव-राजा श्री रामसिंहजी के पण्डित गंगासहाय ने अपनी युक्ति से यह यंत्रराज पौष सुदी ३ संवत १९२८ को महाराजा की वर्षगांठ के दिन शिवलाल कारीगर से बनवाया।

इन पण्डितजी ने कई पुस्तकें बनाई हैं जिनमें श्रीमद्भागवत की टीका विद्वानों के समाज में अति आदर से देखी जाती है।

ऐसे ही वैद्यक विद्या में विशारद बाबा अत्मारामजी सन्यासी महाराव राजा के सभासदों में थे। इन्होंने कई शीघ्र प्रभाव दिखाने वाली औषधियां, चंद्रोदय, सत्त, सिलाजीत, वसंतमालती, मृगांक, अभ्रक, अभ्रक का सत्त, सोमल, रसकपूर, रूपरस, आदि महाराव राजा को दी थीं।

बाबा जी का यह नियम था कि जिस औषधि का गुण जितने दिनों, महीनों, वा वर्षों तक बना रहता था उतनी अवधि तक उसे रखते थे फिर फेंक देते थे, चाहे वह कितना ही द्रव्य लगकर क्यों न बनी हो।

महाराव राजा के पास चार अपूर्व पदार्थ रोग और विष का नाश करने वाले थे जिनकी परीक्षा वे अनेक बेर कर चुके थे। उनमें से चौथा पदार्थ बाबा जी ने मोर के पंखों से तांबा निकालकर बना दिया था।

१—पत्थर का प्याला जिसमें पानी भर कर पिलाने से सांप का जहर उतर जाता था और यह उनके किसी पूर्वज को एक फ़कीर ने दिया था।

२– एक पत्थर का कड़ा जिसको पूरे दिनों स्त्री की कोख पर फेरने से कड़ी से कड़ी पीड़ा बालक जन्मने की शांत हो जाती है।

३–एक पत्थर की माला जिसे पसलियों पर फेरने से पसली की पीड़ा जाती रहती थी।

४ एक छल्ला बाबा आत्माराम जी का बनाया हुआ जिसे धोकर पानी पिलाने से सर्प का काटा हुआ आदमी अच्छा हो जाता था।

सूरजमलजी चारण भी जिन्होंने एक बहुत बड़ा काव्यग्रंथ वंश-भास्कर नामक भाषाकविता का बनाया है इन्हीं राव राजाजी के आश्रित थे।

आसानन्द जी आदि और भी अनेक पंडित और बुद्धिमान पुरुष राव राजा रामसिंह जी के समय में बूंदी के भूषण थे। जिनमें आसानंद जी, बोहरा जीवनलाल जी, दंडी आत्माराम जी, चंडा-दान जी चारण के आत्मज सूर्यमल जी और पठाण हमीद खां जी तो पञ्चरत्न(१) ही कहलाते थे।

जैतसागर।

यह तलाव बून्दी के बाहर बस्ती से लगा हुआ प्रारम्भ में तो जैता मीने का खुदवाया हुआ था, पीछे से महाराव राजा शत्रु शल्ल जी की रानी ने उसकी पक्की पाल बंधवाई, फिर और महल तथा मकान

---

(१) इन पंचरत्नों के विषय में पंडित लोग यह श्लोक पढा करते हैं।

आशानंदो ज्ञानभाण्डो दण्डी चण्डीदानजः सूर्यमल्लः।
भूभृद्रत्नत्वत्सभायां हमीदखां ज्ञायते पंचरत्नान्यमूनी ॥ १ ॥

इस श्लोक में कुछ अशुद्धि देखकर कविराव रामनाथ जी ने यह नया श्लोक बना के फागुन बदी १२ संवत १९४० को मेरे पास भेजा था।

आशानंदो जीवनः सूर्यमल्लोऽप्यात्मारामोऽथहमीदखां प्रवीणः।
भूभृद्रत्नत्वत्कृपापात्रसभ्येष्वालोक्यं पंचरत्नान्यमूनी ॥ १ ॥

अब आशानंदजी के पुत्र आचार्य सदानंदजी हैं। जीवनलाल जी के पुत्र न होने से उनके स्थानापन्न उनकी दो बहिनें हैं। आत्मारामजी विरक्त थे, सूर्य-मल्लजी के औरस पुत्र नहीं थे, अंकस्थ पुत्र मुरारिदानजी हैं। हमीदखांजी के ऊपर रावराजाजी की अति कृपा थी। ये ताजीमी थे। इन्हें दो गांव जागीर में मिले थे परंतु जीवनलाल जी ने रावराजाजी के दिल पर और तरह जमादी जिससे वे सकुटुंब चले गए

भी उसके ऊपर बने। सुखराम धाभाई ने महल बनवाया। यह तालाव इस बात के लिये विख्यात है कि महाराव राजा बुधसिंह जी के भाई जोध सिंह जी गनगोर सहित इसमें डूब गए थे जिसकी यह कहावत अब तक चली आती है "हाडोले डूबो गनगोर'।

छारबाग।

बून्दी से एक कोस उत्तर नगर नेणवे के रास्ते पर छारबाग है जिसमें राव शत्रुशल्ल जी से लेकर अब तक पिछले राजाओं के चबूतरे और छत्रियां उत्तमोत्तम पाषाणों की बनी हुई हैं। महाराव राजा रामसिंह जी ने सब को सुधार कर प्रत्येक में लेख भी खुदवा दिए हैं। जिस राजा के साथ जितनी रानियां सती हुईं उनकी भी मूर्तियां उन राजाओं की मूर्तियों के साथ हैं।

केदारजी।

छारबाग से आगे एक और बून्दी से दो कोस उत्तर टोंक के मार्ग में परबत के नीचे एक सुरम्य स्थान है जहां बाण गंगा बहती है, केदार जी और बाणेश्वर महादेव जी के पुराने मंदिर हैं, पर लेख कोई नहीं है। केदारा जी का मंदिर देवा जी के दादा कोलण जी हाड़ा का बनवाया हुआ है और उन्हींकी भक्ति से केदार यहां प्रगट भी हुए ऐसी जनश्रुति है।

बाणेश्वर जी का मंदिर पुराना है। बाण गंगा के तटस्थ होने से बाणेश्वर नाम महादेव का हुआ है। बाण गंगा पर राव शत्रु शल्ल जी के पहिले पूर्वजों के चबूतरे हैं क्योंकि इस भूमि के पुनीत होने से उनकी उत्तर क्रिया यहीं हुई थी।

(२) खटकड़।

बूंदी से ८ कोस पूर्व में पहाड़ों के नीचे मेज नदी के तट पर खटकड़ नाम एक प्राचीन ग्राम है। इसके पास जंगल झाड़ी बहुत हैं। पहिले एक बंधा भी इस नदी का बंधा हुआ था जो अब टूटा पड़ा है।

बंधा।

कहते हैं कि इस बंधे को दोसा और कानड़ नाम के दो ब्राह्मणों

ने बांधा था और इसकी एक विचित्र कथा है कि गांव दुर्गापुरे की सीमा में जो यहां से पासही है महादेव जी का एक मंदिर था उसमें एक पत्थर के ऊपर ये अक्षर खुदे थे।

ईंको बीज कछे पतवाणों।
तींको भेद बिलाड़ जाणें॥

इसके नीचे एक बिल्ली सिर झुकाए हुए बनी थी। विचारशील लोग इन अक्षरों का आशय सोचते रहते थे। कोई कोई पतवाने और बिलाई का अर्थ नीचे और कांटा[1] मान कर कुओं में कांटा डाला करते थे परन्तु कुछ हाथ नहीं लगता था। निदान दोसा और कानड़ दो ब्राह्मण भाई यह कल्पना करके कि यहां कुछ द्रव्य गड़ा है जिसका भेद यह बिल्ली जानती है, बिल्ली के नीचे जमीन खोदने लगे तो उनको द्रव्य मिल गया।

वहां के राजा ने यह बात सुनकर उनको बुलवाया और पूछा तो उन्होंने कह दिया कि द्रव्य तो मिला है आपको चाहिए तो ले लीजिए। राजा ने कहा कि प्रथम तो महादेवजी के मंदिर से निकला, दूसरे तुम ब्राह्मण हो मैं तो क्या लूं। तुमही किसी पुण्य के काम में लगा दो। तब उन्होंने यह बंध बनाया और महादेवजी के मंदिर का जीर्णोद्धार भी किया।

इन दोनों भाइयों का देहान्त दुर्गापुरे में हुआ। दोनों की स्त्रियां सती हुईं। वहां उनके चबूतरे हैं जिनके लेखों से संवत् ११६० के वैशाख में दोसा और कानड़ का मरना जाना जाता है।

धूंधलाजी जोगी और पट्टण उट्टण।

यहां पहाड़ के पूर्व नाके में धूंधलाजी जोगी का मंदिर राव शत्रुशल्ल जी हाड़ा का बनवाया हुआ है। धूंधला जी को गुरु गोरखनाथ जी और जलंधरनाथ जी का चेला बताते हैं। वे तपस्या करने को इस पहाड़ में आगए थे और यहां पाटण नाम एक नगर बसता था परन्तु धूंधला जी के चेले को कोई भीख नहीं देता था, वह जंगल

---

(१) बिलाई उस कांटे को भी कहते हैं कि जिससे कुए में गिरे हुए लोटे तथा डोल निकाला करते हैं।

से लकड़ियां काट कर बेचता और उनके मोल से अनाज लेकर एक तेलन को देता, वह पीस कर रोटी बना देती थी। एक दिन गुरु ने चेले की टाट के बाल उड़े देख कर कारण पूछा तो उसने वह सब कथा सुनाई। धूंधला जी ने कहा कि तू जाकर उस तेली से कह दे कि अभी अपने बाल बच्चे लेकर चार कोस पर चला जाय क्योंकि इस नगरी पर उल्कापात होने वाला है।

जब वह तेली वहां से चला गया तो धूंलाजी ने कोप करके कहा कि "पट्टण पट्टण सब डटण और तेली का घर बच्चन"।

बस उसी समय से गर्म रेत बरसने लगी जिसमें सब लोग जल मरे और सब मकान रेत में दब गए परन्तु तेली का घर बच गया।

कहते हैं कि उस दिन पट्टण नाम के सब शहरों का [1] यही हाल हुआ। अब भी उनके खंडहरों में खोदने से राख और उस समय के दबे हुए बरतन निकलते हैं।

इस दुर्घटना के पीछे धूंधला जी लाखेरी में जा रहे। वहां उनकी गुफा है जिसके आगे धूनी लगी रहती है और उस गुफा का एक सिरा खटकड़ में भी इस पहाड़ पर आ निकला है जहां यह मंदिर बना है और पहाड़ का सिरा मंदिर पर झुका हुआ है।

धूंधला जी की मूर्ति सफ़ेद पत्थर पर खुदी रखी है, कानों में मुद्रा हैं और चरण चौकी में यह लेख है।

संवत् १२०३ अगहण सुदी १४ देवता धूंधला जी राजा शिव सिंह का राज स्थिर रक्खे और नाथ सेवक रहैं।

राव राजा शत्रुशल्ल जी और सिंधुनाथ जी जोगी।

राव राजा शत्रुशल्ल जी के समय में यहां सिंधुनाथ जोगी तपस्या करते थे। रावजी उनके चेले होगए थे। उनके और सिंधुनाथ जी के चित्र कए पाषाण में खुदे हैं। दोनों के हाथ में प्याले हैं। एक मनुष्य

---

(१) मारवाड़ में भी ऐसी कई कथाएं धूंधली धमाल जोगी के नाम से विख्यात हैं।

राव जी पर चंवर कर रहा है और नीचे एक लेख खुदा है जिसका यह आशय है कि संवत १७१६ ज्येष्ठ सुदी ११ सोमवार को राव राजा जी शत्रुशाल जी बूंदी नरेश और गुरु जी बाबा सिंधुनाथजी के चेले ने बनाया, चुंगी और भूमि सदा के लिये लगा दी, लेख के सिरे पर ये अक्षर हैं।

श्री धुधला जी आदि अनादि ।

पुरानी सतियाँ।

मंदिर की भीतों में कुछ पत्थर पुरानी सतियों के चबूतरों के भी लगे हैं जिनमें से दो के लेखों का सार यह है ।

१ संवत १०६९ वैशाख सुदी १४ बृहस्पति वार सालिंगा सती।

२ संवत १०८९ आषाढ़ बदी ९ गंगा सती ।

तिल द्रोणी नदी।

तिलद्रोणी नदी पूर्व दिशा से आकर खटकड़ से कुछ दूर जंगल में मेज नदी से मिलजाती है।

श्रीकृष्णजी और इन्द्र के युद्ध का स्थान।

यहां के लोग कहते हैं कि श्रीकृष्णजी और राजा इन्द्र की लड़ाई जो श्रीमद्भागवत में लिखी है इसी जगह हुई थी।

इस लड़ाई का वर्णन विष्णुपुराण में भी १९९ अध्याय से लेकर आगे के कई अध्यायों में लिखा है। उनमें के कई श्लोक खटकड़ के ब्राह्मणों ने कंठ कर रक्खे हैं जिनका तात्पर्य यह है कि उस लड़ाई में इंद्र का हाथी और श्रीकृष्णजी का गरुड़ दोनों लड़ते लड़ते पारियात्रिक पर्वत पर गिरपड़े थे और श्रीकृष्णजी ने विजय पाकर बिल्वकेश्वर महादेवजी को वहां स्थापित किया था और महादेवजी ने कहा था कि यहां गंगा प्रकट होगी इससे पहिले इस जगह आवर्ता नाम नदी बहती थी।

फिर जब देवताओं ने दोनों में संधि कराई तो इंद्र और श्रीकृष्ण जी उस नदी में स्नान करके एक दूसरे के कंठ से लग कर मिले थे।

वे ब्राह्मण कहते हैं कि अब जो मेज नदी है वही आवर्ता है और तिलद्रोणी गंगा है जिसका प्रादुर्भाव महादेव जी के वर-

द्दान से हुआ था। जहां ये दोनों मिले हैं उस ठौर का नाम प्रिय-संगम था, वही अब सुमेल कहलाता है और पारियात पर्वत का नाम अब गैंद (गयंद) पहाड़ है जिस पर इन्द्र के हाथी के गिरने का चिन्ह हैं और बिल्वकेश्वर महादेव जी को अब बिलकेसर जी बोलते हैं। इस पते से प्रतीत होता है कि वह युद्ध यहीं हुआ था।

ब्रह्मदत्त का यज्ञ स्थान।

कुछ दूर आगे एक बड़ा मंदिर ढहा पड़ा है। कहते हैं कि यहां वसुदेव जी के मित्र ब्रह्मदत्त ब्राह्मण ने यज्ञ किया था और श्रीकृष्ण जी ने निकुंभादि दैत्यों को मार कर इस प्रांत का राज ब्रह्मदत्त को दिया था।

गेंदपहाड़।

खटकड़ से एक कोस उत्तर गेंद (गयंद) पहाड़ है उस पर वृक्षों के बीच में एक नीची भूमि को यहां वाले हाथी थाना बोलते हैं और कहते हैं कि इन्द्र का हाथी श्रीकृष्ण जी के गरुड़ से हार कर यहीं पर गिरा था।

बिलकेसर (बिल्वकेश्वर)।

यहीं बिल्वकेश्वर महादेव जी का शिखरबंद मंदिर है पर उसमें कोई पुराना लेख नहीं है। एक नया लेख माघ बदी १४ संवत् १७४२ का है जिससे जाना जाता है कि इस मंदिर को खटकड़ निवासी व्यास चुतरा के बेटे रिखीराम ने बनवाया था।

बिल्वकेश्वर महादेव जी का माहात्म्य जो हरिवंश पुराण के पारिजातक हरन कथा में लिखा है वह यहां के ब्राह्मणों को याद है। उससे जाना जाता है कि श्रीकृष्ण जी ने इन महादेव जी को अपनी फ़तह की यादगारी में जो देवराज (इन्द्र) के ऊपर हुई थी बिल्वपत्र और जल हाथ में लेकर स्थापित किया था।

ऐसी पुनीत यादगारें भारत में प्राचीन काल से बहुत चली आती हैं जिनकी रक्षा और मरम्मत धर्म समझ कर राजा और प्रजा दोनों किया करते हैं।

कार्तिक के महीने में यहां मेला होता है, दूर दूर के यात्री महादेव जी के दर्शन करने को आते हैं ।

खटकड़ के खंडहर ।

खटकड़ में अब तो थोड़ेसे ही घर बसते हैं परन्तु पहिले किसी समय में यहां बड़ी बस्ती होगी यह बात खटकड़ के खंडहरों से जानी जाती है, जो दूर तक पड़े हैं । पश्चिम के खंडहरों में एक शिखरबंद मंदिर महादेव जी का है जिसकी मूर्तियाँ मरहठा गरदी में टोंक के नव्वाब अमीरखां के किसी फ़ौजी अफ़सर ने तोड़ डाली हैं ।

खटकड़ का इतिहास ।

कहते हैं कि अनादि काल में यहां उजाड़ पड़ी थी, जब त्रिपुर के दैत्यों की दुष्टता से देवताओं ने जंबुकारण्य में जो यहां से ८ कोस है, जाकर महादेव जी से पुकार की और महादेव जी ने उन दैत्यों को जला दिया तो बचे हुए दैत्य ब्रह्मा जी की शरण में गए और ब्रह्मा जी ने उनको इस उजाड़ धरती में बसने की आज्ञा दे दी तो निकुंभादि छ राक्षसों के आकर बस जाने से इसका नाम खटपुर हो गया । इसी को खैराड़ कहते हैं और खटकड़ भी इसीका नाम है, परन्तु अब खैराड़[1] तो देश है और खटकड़ नगर है ।

दैत्य और देवता दोनों ब्रम्हाजी के पोते कश्यप ऋषि के बेटे और आपस में सौतेले भाई थे । कश्यपजी की एक स्त्री दिति थी और दूसरी अदिति । दिति से देवता और अदिति से दैत्य हुए और ये दोनों प्राचीन काल में राज्य के लिये परस्पर लड़ा करते थे ।

श्रीकृष्णजी और अर्जुनादि पांडवों ने खटकड़ के दैत्यों को मार कर यहां का राज्य ब्रम्हदत्त ब्राम्हण को दिया था । अब जो ब्राम्हण यहां रहते हैं वे अपने को ब्रम्हदत्त के वंश में बताते हैं । राज के बदले यहां

---

(१) यथार्थ में खैराड़ का अर्थ है खैर के वृक्षों की आड़ । इस प्रान्त में खैर के वृक्षों की सघन झाड़ी थी, इसीसे यह नाम प्रसिद्ध हुआ है और अब भी वहां खैर के वृक्ष बहुत हैं, यह खैराड़ देश बूंदी और उदयपुर के राज्यों में बंटा हुआ है ।

की पटेलाई इनके पास रहगई है। इनसे किसने और कब राज लिया यह इनको भी याद नहीं है और न और किसी प्रमाण से जाना जाता है। धूंधलाजी की चरणचौकी में जो शिवसिंह राजा का नाम लिखा है उससे प्रगट होता है कि शायद उसके पूर्वजों तथा उनसे पहिले के राज करने वालों ने यह पापकर्म किया हो।

यद्यपि उस लेख में राजा शिवसिंह का वंश नहीं लिखा है और न उसके बाप दादों के नाम हैं परन्तु यहां उनका राज्य होने में संदेह नहीं है, क्योंकि लेख में नाम और समय राजा का ही लिखा जाता। है शिवसिंह तथा उसके वंश का राज कब और क्योंकर गया, इसका भी कुछ पता नहीं लगता परन्तु खीचियों के भाटों की बही में पीलपिंजरजी खीची का संवत् ११९१ में लाखेरी और संवत् १२०१ में खटकड़ जीतना लिखा है, किससे जीता इसका कुछ पता नहीं है।

पीलपिंजर जी के पीछे छितसेन, रणधीर, संग्राम, दूल्हराय, और राव सनजी, पारी पारी से गद्दी पर बैठे। सनजी का बेटा देवअंसी और बेटी गंगाबाई थी जो टोलरगढ़[१] के राजा बीजल डोडस[२] से व्याही थी। देवअंसी ने गद्दी बैठे पीछे ३०० बछेरे चरने के लिये बीजल के पास भेजे थे और बीजल ने एक एक बछेरा अपने एक एक गांव में छोड़ दिया था। फिर जब देवअंसी ने मंगाए तो नहीं भेजे। देवअंसी चुप हो रहा। एक दिन बीजल ने गंगाबाई को सुना कर कहा कि खीचियों में कुछ रजपूती नहीं है, हमने ३०० बछेरे देवअंसी के दबा रक्खे हैं और वह आजतक हम से नहीं ले सका है।

यह बात गंगा के कलेजे में कटारी सी लगी। उसने भाई को लिखा कि ये लोग खीचियों की निंदा करते हैं। देवअंसी ने कहलाया कि मुझे ऐसा समय बता कि जब सब डोड एक ठौर मिल जावें। उसने लिख भेजा कि फागुन में पेमपुरे के तालाब पर फूलडोल का मेला होता है उसमें ये सब इकट्ठे हो जाते हैं। देवअंसी ने खटकड़ से उस

---

(१) खटकड़ से ३० कोस पूर्व और दक्षिण के कोन में स्थित है।
(२) पंवारों की एक शाखा।

मेले में जाकर हाड़ों को मारा। खीची केवल १६ मारे गए। बीजल उस समय ३०० बछेरों के बदले ६०० घोड़े देता था परन्तु देवअंसी ने नहीं लिया और भाले से उसको मारकर ढोलरगढ में अमल कर लिया। फिर बहिन से मिला, वह अपने पति की लोथ मंगाकर सती हो गई और भाई से कह मरी की मेरा नाम स्थिर रखना, तब उसने ढोलरगढ़ का नाम गढ़ गागरोण रख दिया। उस समय ५२ परगने इस गढ़ के नीचे थे।

देवअंसी के पीछे इतने राजा हुए।

१	नेतूजी	२	रणधीर संवत् १२३०
३	केवल अंसी संवत् १२३२	४	हंसराज
५	गईयूजी, इसने सं १३३० में गईयूदह का बाँध बँधाया	६	नेतसी
७	गणेसी	८	मलेसी
९	रतनसी	१०	जैनसी संवत् १३६५
११	सांडलसी	१२	रावकड़वा
१३	राव अचला जो मंडू के बादशाह[१] से लड़कर कुटुम्ब सहित माघ बदी १२ संवत् १४४२ [२] को काम आया। लाखेरी, खटकड़ और गागरोण में बादशाह का अमल हुआ।		

जब मंडू की बादशाहत बिगड़ी[३] तो बूंदी वालों ने खटकड़ ले लिया और जैतावत जाति के हाड़ों को दे दिया, जिनके महलों के खँडहर खटकड़ में हैं।

(३) केशवराय जी का पट्टण।

यह बहुत पुरानी नगरी बूंदी से १० कोस पूर्व दिशा में चंबल

(१) इस बादशाह का नाम होशंग था-तवारीख मालवा।

(२) सही संवत् १४८४ है। ऐसेही ऊपर लिखे और संवतों में भी संदेह है।

(३) इसका समय संवत् १५७६ के करीब हो सकता है जब कि राना सांगा ने मंडू के बादशाह महमूद को पकड़ कर उसका आधा राज छीन लिया था और बूंदी वाले भी उनके आधीन थे। उसी प्रसंग से उनको भी यह हिस्सा मालवे के राज का मिल गया हो तो आश्चर्य नहीं।

नदी के पश्चिम तट पर बसती है। इसका प्राचीन नाम रन्तदेव पत्तन है क्योंकि माहेश्वरपुरी चन्द्रवंशी राजा रन्तदेव ने इसको बसाया था।

जम्बुकारण्य।

भूमि के जिस भाग में यह शहर बसा है उसका प्राचीन नाम जम्बुकारण्य है। यहाँ पहिले जम्बुक (गीदड़) बहुत रहते थे जिससे ऐसा नाम हुआ था अर्थात् गीदड़ों का जंगल। जब त्रिपुरासुर दैत्य ने इन्द्रादि देवताओं को दुःख दिया और उन्होंने यहां आकर महादेव जी की शरण ली तो महादेव जी ने श्वेत बैल पर उनको दर्शन देकर दैत्यों का नाश किया जिसके चिन्ह स्वरूप जम्बुकेश्वर और श्वेतवाहन नाम के लिंग देवताओं ने यहां स्थापित किए।

अब भी यहां जंगल में एक जाति का गीदड़ होता है जिसके मुंह से ज्येष्ठ के महीने में ज्वाला निकला करती है।

पुरानी सतियां।

चंबल के घाट में कई पुराने पत्थर सतियों के लगे हैं एक में संवत् ९२ और दूसरे में सं १५० पढ़ा जाता है, बाकी अक्षर घिस गए हैं।

पुराने सिक्के और बरतन।

बरसात में जब नदी के करारे पानी की मार से टूट जाते हैं या जो कोई गहरा कुआं खोदा जाता है तो कभी कभी प्राचीन समय के बरतन और सिक्के निकल आते हैं।

मेला।

पाटन में हर साल कातिक सुदी ९ से १५ तक मेला भरा करता है जिसमें २०, २० कोस के यात्री और व्यापारी आते हैं और यहां के तीर्थों की जो पांच कोस के भीतर हैं परिक्रमा करते हैं। आखातीज के दिन भी इस पंचकोसी यात्रा के लिये बहुधा लोग आया करते हैं।

जम्बुकेश्वर महादेव जी का मंदिर।

यह पुराना मंदिर चंबल के घाट पर था जो अब केशवराय जी के मंदिर के परकोटे में आगया है। महादेव जी मंदिर से भी पुराने हैं। इनके बाण में जगह जगह गराड़ें पड़ गई हैं और जो पानी उनपर डाला जाता है वह नीचे चलाजाता है। ये गराड़ें इतनी चौड़ी हैं कि उनके अंदर आदमी का हाथ जा सकता है। इस बाण का पाषाण अति जीर्ण हो जाने से दिन दिन खिरता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि जब घोर कलू होगा तो यह बिलकुल खिर जावेगा।

इस पर बचाव के लिये किसी राजा ने पीतल का चोला चढ़ा दिया है जिससे लिङ्ग रात दिन ढका रहता है, पूजन करने के लिये चोला उतारा जाता है।

यह मंदिर पंडशाला कहलाता है क्योंकि पंड नाम का एक राजा हुआ था जिसने इसको बनवाया था। कोई इसे पांडवों का बनाया हुआ कहते हैं। महाभारत से भी पांडवों का जम्बुकारण्य में दो बेर आना सिद्ध होता है।

इसीके पास एक पूतना का मंदिर कुन्ती का बनवाया हुआ, और दूसरा बीजासन माता का द्रौपदी का बनवाया हुआ प्रसिद्ध है।

केशवराय का मंदिर।

केशवराय जी का मंदिर चंबल के एक ऊंचे और संगीन घाट पर बना है। इसका शिखर इतना ऊंचा है कि बहुत दूर से दिखाई देता है। इसमें, लाल, पीले, गुलाबी, सफ़ेद, और बसंती रंग के पत्थर लगे हैं जो पाटन के आसपास की खानों तथा बूंदी और कोट आदि से लाए गए थे और पत्थरों में कोरनी भी बहुत सुंदर हुई हैं। अंगरेज़ लोग बहुधा इस मंदिर को देखने को आते हैं और नक़शे उतार कर लेजाते हैं।

कहते हैं कि रावरतन हाड़ा की रानी बड़ी पुण्यशीला थी उसने यहां एक विशाल मंदिर बनवाना स्थिर करके १२ पक्के घाट चंबल पर बनवाए जिनमें विष्णुघाट सब से ऊंचा था। उसकी पोल

से लेकर नदी तक १०० सीढियां हैं। इसी घाट पर मंदिर का उछाला (कुरसी) आठ दस गज़ चौक छोड़ कर बना था जो घाट से ३ गज़ ऊंचा, १४–१५ गज़ लम्बा और इतना ही चौड़ा भी है। उसपर साफ़ और स्वच्छ पत्थरों का अठपहलू फ़र्श तैयार हुआ था। फिर रानी के मरजाने से काम बन्द होगया पर तीसरी पीढ़ी में राव शत्रुशाल जी ने मंदिर बनवाकर अपनी दादी का मनोरथ पूरा किया और केशवराय जी को उसमें विराजमान करा दिया।

केशवराय जी की चतुर्भुजी मूर्ति सफ़ेद पाषाण की है। एक आंख में हीरा है जो चमकता हुआ दिखाई देता है। इसी प्रकार का हीरा दूसरी आंख में भी था जिसको एकात्‌ हुल्कर जसवंतराव निकाल लेगया और अपनी एक आंख के समान ठाकुरजी की इस आंख को भी बिना हीरे की कर गया।

यह मूर्ति राव शत्रुशाल जी को चंबल नदी में से मिली थी और कोई कहते हैं कि वे उसे मथुरा से लाए थे।

राव शत्रुशाल जी शाहजहां बादशाह और शाहजादे दाराशिकोह के बड़े कृपापात्र थे। वे संवत्‌ १७१५ में दाराशिकोह की तर्फ़ होकर औरंगज़ेब से बहादुरी के साथ लड़कर काम आए। औरंगज़ेब जी ने इस द्वेष से केशवराय जी का मंदिर गिराने को फ़ौज भेजी जिसके लिये १००० हाड़े लड़ने मरने पर तैयार हुए। निदान बादशाही अफ़सर बादशाह की बात रखने के लिये कलश और थोड़ासा शिखर गिराकर चले गए जिसकी मरम्मत महाराव राजा बुधसिंह जी के समय में हुई और उनकी कछवाही रानी ने सोने के कलश चढ़ाए। इस मंदिर में जो लेख है उससे जाना जाता है कि संवत्‌ १७७६ में फागुन सुदी ७ शुक्रवार को महाराव राजा बुधसिंह जी की बड़ी रानी कछवाही[1] जी ने शिखर और गुमटियों के ऊपर कलश चढ़ाए थे।

---

(१) यह रानी जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह की बहिन थीं। सवाई जयसिंह ने भी ऐसेही औरंगज़ेब के गिराए हुए मंदिरों की जगह जगह मरम्मत कराई थी।

राजा रन्तदेव और चंबल नदी की उत्पत्ति।

राजा रन्तदेव महेश्वर का राजा था। इन्होंने एक बड़ा यज्ञ किया था जिसके पीछे जब वह ब्राह्मणों और मेहमान राजाओं सहित जो दूर दूर से आए थे स्नान करने को जाने लगा तो उदास होकर बोला कि यहां कोई समुद्रगामिनी नदी नहीं है। यह कहतेही उसकी श्रद्धा और ब्राह्मणों के वरदान से मृगछालाओं के नीचे से जो ब्राह्मणों को देने के लिये रक्खीं थी पानी बहने लगा सो आगे बढ़कर चंबल नदी का सोता बन गया असली नाम इसका चर्मन्वती है।

रन्तदेव का प्रजापालन।

दूसरी कथा इस राजा की सब पुराणों में यह लिखी है कि इसने अकाल में अपना सब ख़ज़ाना प्रजा को खिला दिया और आप रंक होकर प्रजा के साथ परदेस में निकल गया, तब भी जो कुछ भिक्षा मिलती थी भूखों को खिलाए बिना वह नहीं खाता था।

रन्तदेव को भागवत वचन।

तीसरी बात यह है कि रन्तदेव ने जम्बुकारण्य में चंबल नदी के तट पर रन्तदेवपत्तन नाम का एक नगर बसाया था। वही यह पाटण है। उसको भगवान के दर्शन हुए थे और भगवान ने वचन दिया था कि कलियुग में हमारी एक मूर्ति तेरी नगरी में रहेगी। सो वह यही मूर्ति केशवराय की है जो महाराव शत्रुशाल जी को चंबल नदी में से मिली थी।

श्वेतवाहन जी का मंदिर।

शहर से बाहर बाहड़िया नाम के तलाव की पाल पर श्वेतवाहन जी का मंदिर है। इसके पास एक कुंड परशुराम जी का बनाया हुआ है जिसका पानी दिन भर में कई रंग बदलता है। इसको महादेव जी की करामात समझते हैं।

(४) सथूर।

बूंदी से तीन कोस पश्चिम को चंद्रभागा नदी के तट पर पहाड़ के नीचे यह पुराना खेड़ा बसा है। असली नाम इसका सुरथपुर

था। इसको चंद्रवंशी राजा सुरथ ने जो शत्रुओं से पराजित हो कर यहां आरहा था, मारकंडेय ऋषि के उपदेश से रक्तदन्ता देवी का पूजन कर के यह शहर बसाया था और देवी का मंदिर बनवाया था जो अब तक मौजूद है परन्तु कोई पुराना लेख नहीं है जिससे समय का निर्णय होता, हां मारकंडेय पुराण में इसकी कथा है।

बैजनाथ जी।

गांव से पश्चिम दिशा में बैजनाथ जी का मंदिर संवत् १८०० का बना हुआ है। यहाँ सतियों की देवलियों (पत्थर पर खुदी हुई मूर्तियों) में संवत् १३९१ से लेकर संवत् १४०० तक के लेख हैं जिनमें कोई इतिहास के उपयोगी वार्ता नहीं है।

चंद्रभागा और मारकंडेय ऋषि।

चंद्रभागा नदी दक्षिण दिशा में एक पहाड़ की खोह से निकलती है, जो सथूर से ढाई कोस जंगल में है, मारकंडेय ऋषि इसी पहाड़ पर तपस्या करते थे। यहां जंगल बहुत विकट है और दूर तक चला गया है जिसमें शेर बघेरे आदि जानवर रहते हैं।

महादेव जी का मंदिर।

इस पहाड़ में महादेव जी का भी एक मंदिर है परन्तु जब तक कि बहुत सा साथ न हो अकेला दुकेला आदमी दर्शनों के लिये नहीं जा सकता है।

पुराने लेख।

इस मंदिर के मंडप की ताकों में कई पुराने पत्थर धरे हुए हैं जिन पर अक्षर खुदे हैं जिनमें से कुछ का सारांश नीचे लिखा जाता है।

१ संवत् १३२ सावन बदी १४। आगे मतलब नहीं खुलता।

२ श्रीहटसा संवत् १२२ सावन बदी ऊपर ४ मूर्तियां मर्दों की, नीचे १२ औरतों की खुदी हैं।

३ राव श्रीबोलिया—ऊपर एक मूर्ति पुरुष की और नीचे तीन औरतों की।

४ राव श्रीसंडा और दो औरतों की मूर्तियाँ।

५ राव श्रीरत्न सिंह, और नीचे चार स्त्रियां ।

६ राव श्रीहालू और नीचे दो औरतें ।

७ राव श्रीजयसिंह और नीचे एक स्त्री ।

इस तरह नं० ३ से ७ तक पत्थरों में १५ औरत मर्द खुदे हैं और नाम के पहिले राव की पदवी होने से जाना जाता है कि ये बूंदी के पुराने राजा रहे होंगे और यहां इनको दाग दिया गया होगा। जिन औरतों की मूर्तियां इनके साथ खुदी हैं वे इनके पीछे सती हुई हैं पर संवत् मिती नहीं होने से समय का कुछ पता नहीं लगता।

यहीं, एक टूटे हुए पत्थर पर ये अक्षर हैं।

"संवत् १३३४ का बैशाख बदी ११ सुनपत हाड़ा पर सती की बड़ी"

यह सुनपत हाड़ा राव देवाजी के भाइयों में से होंगे।

(५) हींडोली।

बूंदी से सात कोस उत्तर को हींडोली नाम का एक पुराना गांव बसता है। इसके पास इससे भी पुरानी नगरी हींडोली के खंडहर पड़े हैं जो संवत् १४०० तक वर्तमान थी। यहां हीडेश्वर महादेव जी का मंदिर है। लोग कहते हैं कि जब पाँचो पांडव लाक्षाभवन में जलने से बचकर यहां आए थे तो भीम ने हिड़ंब राक्षस को मार कर उसकी बेटी हिड़ंबा से गंधर्व विवाह किया था और इन महादेव जी की स्थापना की थी। मंदिर पीछे से एक बनिये ने बनवाया था जब कि यहां हींडोली नगरी बसी थी।

हींडोली और हींडोली के बीच में एक बड़ा तालाब निर्मल जल का है जिसका नाम रामसागर है। यह भी एक बनिये का ही बनवाया हुआ है। हींडोली भी एक बनिये की लड़की थी उसीके नाम पर यह बस्ती बसी थी। हींडोली की मूर्ति एक पत्थर पर खुदी है जिसमें संवत् १०७ का अंक तो रह गया है महीने और पक्ष के अक्षर उड़ गए हैं, मिती ११ है, आगे भी कुछ नहीं पढ़ा जाता क्योंकि अक्षर जाते रहे हैं।

हींडोली हींडा नाम एक गूजर ने संवत् १४२५ में बसाई थी

फिर यहाँ हम्मीर जाति के हाड़ा आकर रहे। उनके महल टूटे पड़े हैं।

इन्हीं हाड़ों में से श्यामदास हाड़ा का वृत्तान्त लिखने के लायक जान कर नीचे लिखते हैं।

वह महाराव शत्रुशाल जी का खजानची था। रावजी बादशाही चाकरी में बाहर रहा करते थे। एक बेर उन्होंने खर्चे मंगाया तो श्यामदास ने लूट मार के भय से मेखें ठोकने की मोगरियों को पोली करके उनमें रुपये भरे और गाड़ी में लाद कर अपने काम-दार डूंगर के साथ दिल्ली को चलते किए। डूंगर जब वहां पहुंचा तो रावजी के मिलने का अवसर नहीं था और वह बरावरी था, दिन थोड़ा रह गया था। इसलिये गाड़ी को हवेली की पोल पर छोड़ कर रोटी खाने चला गया।

पीछे महाराव जी ने ऊपर से देख कर पूछा कि गाड़ी कहां से आई तो किसी ने कह दिया कि श्यामदास ने रुपए के बदले में मोगरियां हमलोगों के सिर फोड़ने के लिये भेज दी हैं।

राव जी ने नशे की तरंग में कंवर भाव सिंह जी को लिख भेजा कि हुकम पहुंचते ही श्यामदास को मार डालना।

दूसरे दिन डूंगर ने हाज़िर हो कर अर्ज़ किया कि खर्च हाज़िर है। श्यामदास ने बचाव के लिये मोगरियों में भर कर भेजा है। तब राव जी ने दूसरा हुकम नहीं मारने का लिखा परन्तु उसके पहुंचने से पहिलेही भावसिंह ने बूंदी से हिंडोली पहुंच कर श्यामदास को तोप से उड़ा दिया और उसका घर लूट लिया। पर उसका बेटा रूकमांगद भाग कर उदयपुर चला गया था। भावसिंह ने उसको बुला कर फिर हिंडोली में बसाया।

इन महलों के आगे तीन शिखरबंद मंदिर हैं जिनसे इस उजाड़ बस्ती की रौनक बनी हुई है।

(६) लोयचा।

यह गांव बूंदी से पांच कोस दक्षिण पश्चिम के कोने में है। यहां

एक पानी का कुंड और उसके पास महादेव जी का मंदिर है। मंदिर के सामने एक खड्डा हाथ भर लंबा और इतनाही गहरा है परन्तु चौड़ा कम है। उसमें रात से लेकर पहर भर दिन चढ़े तक तो बेंत भर पानी रहता है फिर घटने लगता है और दो पहर तक कुछ भी नहीं रहता। रात को फिर भर जाता है। लोग इसको महादेव जी की सकलाई (करामात) समझते हैं।

(७) लाखेरी।

यह गांव चौहान जाति के एक राजपूत लाखा नाम ने बसाया था। इसमें दो पहाड़ों के नाकों पर एक दरवाजा बना है जो लाखेरी का दरा कहलाता है। इसके आगे कोटे का राज है।

यहां लूनानाम एक अच्छी बावली लूना जी अतीत की बनवाई हुई है। असली नाम लूनाजी का अध्यातमजी था। यह राव राजा रतनजी के समय में थे। एक बनजारा खांड की बालद लिये जाता था। अध्यातमजी ने पूछा इसमें क्या है तो लवन (नमक) बताया। इन्होंने कहा है कि लवन ही होगा। उसने गांव में जाकर देखा तो सब बालद में नमक हो गया था। तब तो रोता पीटता आया और कहने लगा कि मेरी बालद में तो खांड थी। अध्यातमजी ने कह दिया कि खांडही होगी सो खांड हो गई। उसने १०० बैल पीछे एक आना अध्यातमजी का लगा दिया जो अब तक उनके चेलों को मिला जाता है।

खांड को लवन कर देने से अध्यातमजी का नाम लूणाजी हो गया और इसके पीछे उन्होंने यह बावली बनवाई थी जो लूणाजी की बावली कहलाती है और राव रतन ने संवत् १६६५ में उनके लिये मठ बनवाकर बाज़ार में चुंगी लगा दी जो अब तक उनके चेलों को मिली चली जाती है।

लूणाजी की छत्री उनके मरे पीछे उनके चेले रामदास ने संवत् १७०१ में बनवाई। लाखेरी में पान होते हैं जो बिकने को दूर दूर जाते हैं।

यहां एक छत्री संवत् १६८८ की बनी है उसमें लिखा है कि अंकुरराय मूतादहिया राजपूत चौहान पर बीलांदे सती हुई।

फ़ाहिश्रान श्रौर युश्रन च्वांग का
सरल रेखा माप ।

[पण्डित रामेश्वर प्रसाद त्रिपाठी द्वारा अनुवादित ।]

सरल रेखा माप के दो मुख्य शब्द जो कि फ़ाहिश्रान श्रौर युश्रन च्वांग तथा चीन के दूसरे यात्रियों ने भारतवर्ष के वा उसकी सीमा के भिन्न भिन्न देशों के वर्णन में व्यवहार किए हैं वे योजन श्रौर ली हैं। इन दोनों शब्दों का हमारे अंग्रेज़ी समय के सरल रेखा के माप के अनुसार क्या अर्थ है सो अभी तक सर्व सम्मति से निश्चय नहीं हुआ है । जब तक यह पूर्ण निश्चय न हो जाय तब तक उन बातों का समझना जो कि इन यात्रियों ने लिखी हैं बिलकुल असंभव है । उनके वर्णन में भारतवर्ष की ५, और ७, शताब्दी के भूगोलीय वृत्तान्त के बहुत ठीक वर्णन दिए हैं ।

फ़ाहिश्रान श्रौर युश्रन च्वांग के बहुत तरह से योजन के माप उनके पढ़नेवाले को बहुत घबड़ा देते हैं ।

एच· एच· विलसन साहब ने युश्रन च्वांग के योजन को अंग्रेज़ी चार मील के बराबर ठहराया है, जनरल कनिङ्गहाम ने ६·७५ श्रौर मिस्टर वी· ए· स्मिथ ने ६·५ के लगभग श्रौर जूलियन साहब ने ८ मील के बराबर माना है ।

फ़ाहिश्रन के योजन को जनरल कनिङ्गहाम ने ६·७१ मील के बराबर माना है, सर एच· एम· इलियट ने ७ मील, मिस्टर वी· ए· स्मिथ ने ७·२५ के लगभग श्रौर गाइल साहब ने ५ से ९ मील तक ठहराया है श्रौर जो कुछ डाक्टर एम· ए· स्टीन साहब ने अपने "मेमायर में (Memoir on Maps of Kasmir) जिसमें कि उन्होंने काश्मीर के पुराने भूगोल का वृत्तान्त दिया है लिखा है उससे मालूम होता है कि योजन वर्तमान राजधानी अर्थात् श्रीनगर के समीप युश्रन च्वांग के समय में अंग्रेजी ८ मील के बराबर था ।

युअन च्वांग अपनी किताबों में भारतवर्ष की लंबाई और दूरी के माप का इतिहास बयान करता है परन्तु अभाग्य से उसने इन बातों को साफ़ साफ़ नहीं लिखा है। वह लिखता है–

"माप में पहिली बात योजन है। वह योजन प्राचीन समय के धर्मशील राजाओं के समय से सेना के एक दिन के कूच के बराबर समझा जाता है। प्राचीन वृत्तान्तों से मालूम होता है कि यह ४० ली के बराबर है। भारतवर्ष की सामान्य गणना के अनुसार यह ३० ली के बराबर है। परन्तु बुध की धर्मपुस्तकों में योजन केवल १६ ली का है। दूरी के भाग में योजन ८ कोस के बराबर है। एक कोस उतनी दूरी को कहते हैं जहां तक गौ का शब्द सुनाई दे। एक कोस का ५०० धनुष में भाग हुआ और एक धनुष चार हाथ में बांटा गया है और एक हाथ २४ अंगुल में और एक अंगुल ७ जव में"। इसी तरह पर जनरल कनिङ्गहाम जूलियन साहब के ऊपर के वृत्तान्त के फरासीसी अनुवाद की टीका में यह कहते हैं "हुनच्वांग लिखता है कि योजन परंपरा के अनुसार ४० चीनी ली के बराबर था परन्तु उसका माप उस समय के व्यवहार के अनुसार केवल ३० ली के बराबर था। चीन के भिन्न भिन्न यात्रियों के प्रसिद्ध स्थानों की दूरी के वृत्तान्तों को एक दूसरे के साथ मिलाने से यह मालूम होता है कि हुनच्वांग ने परंपरा के योजन के माप को ४० ली के बराबर माना है।" इसके बाद वह लिखता है कि ३० ली का योजन कदाचित् पुराने हिन्दुस्तानी २४००० फुट का योजन है जो कि करीब साढ़े-चार अंग्रेज़ी मील के बराबर है और इसका भाग ३० चीनी ली में हुआ है और प्रत्येक ली बराबर ८०० फुट के है। परन्तु फिर वह कहता है कि हुनच्वांग ने जो हिन्दुस्तानी योजन को ३० ली के बराबर ठहराया है उसमें अवश्य कोई गलती मालूम होती है। अन्त में उसने यह निश्चय किया है कि "युअन च्वांग" का योजन अंग्रेज़ी ६·७५ मील के बराबर है क्योंकि ऐसा प्रसिद्ध स्थानों की दूरी के नापने से मालूम हुआ है। मैंने जनरल कनिङ्गहाम के वृत्तान्त को कुछ पूरी तौर से लिखा है क्योंकि इस बात को दिखलाने से कि कहां पर उस वाक्य को जिसमें कि योजनों की दूरी का वर्णन हुआ है वह नहीं

समझा है मुझे आशा है कि मैं उन कठिनाइयों को जो कि युअन च्वांग के योजन के विषय में पड़ती हैं दूर कर दूं और उसके माप की लंबाई को ठीक ठीक ठहरा दूं।

मेरा विश्वास है कि उस वाक्य से जिसमें दूरी की माप युअन-च्वांग ने हमको साफ़ साफ़ बताई है यह मतलब है कि बौद्ध धर्मपुस्तकों में योजन का भाग १६ ली या हिस्से में हुआ है परन्तु यदि हिन्दुओं की पुरानी परिपाटी पर चलें तो एक योजन ४० ली या हिस्सों में प्रायः बांटा जाता है। आज कल हिन्दुस्तान की बड़ी बड़ी जगहों के नियम के अनुसार योजन ३० ली का होता है अर्थात् पुराने योजन का $\frac{3}{4}$ होता है।

जुलियन का अनुवाद इस बात को स्पष्ट करता है कि १ योजन जिससे उसका मतलब कोई योजन है वहां के नियम के अनुसार ४० हिस्सों में बांटा जाता था। हमको इसका विश्वास है कि जनरल कनिङ्गहाम इस बात के विचारने में भ्रम में पड़े थे कि युअनच्वांग की बातों से मालूम होता है कि उसके यात्रा के समय में या उससे पहिले १ चीन की ली $\frac{1}{40}$ योजन के बराबर थी।

४० खण्ड में विभाग करना अब तक प्रचलित है और सदा से प्रचलित रहा है। जब कभी कोई मनुष्य भारतवर्ष में किसी तोल को भिन्न भिन्न हिस्सों में बांटता है तो मन के $\frac{1}{40}$ वें हिस्से को १ सेर कहता है। युअन च्वांग के मतलब को समझाने के लिये जैसा कि मैं समझता हूं मैं एक उदाहरण देता हूं।

जब कभी कोई व्यापारी सुनता है कि किसी देश में गल्ला सस्ता है और उसको विश्वास हो कि वहां जाने से बहुत गल्ला मिलेगा और उससे लाभ होगा और वह उस देश में पहिले कभी नहीं गया है और वहां के मन और सेर के विषय में कुछ नहीं जानता है, तो उस स्थान पर जहां कि वह गल्ला खरीदने जाता है पहुंचने पर उसका पुराना परिचित मनुष्य जो कि उसके देश से व्यवहार कर चुका है उसको कहता है कि इस नगर के तोल उसके नगर से $\frac{1}{4}$ हिस्सा भारी हैं। व्यापारी ने अब जाना कि उसके नगर का

५३$\frac{१}{३}$ सेर या ४०+$\frac{४०}{३}$ तोल उस स्थान की तौल के एक मन के बराबर है। उस अपरिचित व्यापारी के परिचित मनुष्य से यदि उस अपरिचित मनुष्य के नगर की तौल पूछी जाय तो वह अपने प्रश्न करने वाले को उत्तर देगा कि उस अपरिचित मनुष्य के नगर के एक मन की तौल यहां के मन की तौल से भिन्न है अर्थात् एक मन शामिल करता है अथवा बराबर होता है ३० सेर के, जिससे उसका मतलब यह होगा कि वहां का मन यहां के $\frac{३०}{४०}$ मन के बराबर होगा। इसको वह ठीक ठीक उन्हीं क्रिया और शब्दों से कहता है जैसा कि युअनच्वांग ने ३० ली के योजन और दूसरे योजनों को कहा है। संक्षेप में उस अपरिचित व्यापारी का मित्र कहेगा कि ३० सेर का मन है और सेर बराबर १२ छटांक के है।

इस प्रकार से वर्णन करने से यह बात स्पष्ट होजाती है कि उस अपरिचित के नगर का एक मन दूसरे नगर के ३० सेर के बराबर है। निःसन्देह वहां का मन $\frac{३०}{४०}$ मन है। परन्तु उसका मतलब यह नहीं है कि वहां का मन ३० हिस्सों में बांटा गया है और उसका प्रत्येक भाग एक सेर के बराबर है क्योंकि यह असंभव है जैसा कि प्रत्येक मनुष्य जानता है कि सेर मन का $\frac{१}{३०}$ भाग नहीं है।

इस कारण से एक सेर से प्रत्येक स्थान में मन का ४० वां हिस्सा, न कि $\frac{१}{३०}$ हिस्सा समझा जाता है। युअनच्वांग ने ३० ली के योजन का वैसाही बयान किया है जैसा कि उस अपरिचित व्यापारी के मित्र ने उसके नगर के मन को समझाया था।

उसका भावार्थ यह नहीं था कि उसकी यात्रा के समय के प्रचलित योजन भारतवर्ष में ३० भाग में बँटे थे क्योंकि वह अपने पढ़ने वालों को जनाता है कि प्राचीन समय से भारतवर्ष में योजन का ४० हिस्सों में बांटना प्रचलित है, सिवाय उस समय के जब कि बौद्ध मत की पुस्तकों के अनुसार एक योजन के १६ भाग होते थे।

यह रीति जिसको हमने वर्णन किया है भारतवर्ष भर में प्रचलित है। यह एक तो बहुत सरल है, दूसरे उन मनुष्यों की समझ में जो इसको जानते हैं वह बहुत सहज में आ जाती है। वह

मनुष्य जो इस रीति से अपरिचित है पहिले पहल इसको सुनकर बहुत घबड़ा जाता है कि इसका क्या तात्पर्य है। इस रीति में भिन्न का हर नहीं बतलाया जाता क्योंकि बोलने वाला यह मान लेता है कि जो कुछ वह कहता है उसका मतलब साफ़ है। वह हर जो नहीं बतलाया गया है चाहे वह पृथ्वी के माप के भिन्न का हो, चाहे तौल के भिन्न का हो, भारतवर्ष के प्रत्येक देश में बदल जाता है और किसी मुख्य भिन्न को भली भांति जानने के लिये उसके हर का जानना अति आवश्यक है। यह बहुधा सुना गया है कि फलाना आदमी फलाने गांव के ३ आना या ५ आने का अधिकारी है अथवा फलाना सिक्का १० माशे भर है। इसका अर्थ यह है कि ३ आना बराबर है उस संपूर्ण ग्राम के $\frac{३}{१६}$ वें भाग के या वह १० माशे वाला सिक्का बराबर है $\frac{१०}{१२}$ तोले के—३ आने वाले हिस्से में हर १६ है क्योंकि एक रुपया १६ आना में बँटा है और १० माशे वाला सिक्का बराबर है $\frac{१०}{१२}$ तोले के क्योंकि १२ माशे का १ तोला होता है। यह प्राय: सुना गया है कि उस रुपये को, जो बृटिश इंडिया में प्रचलित है और जो कानूनी तौल का है अथवा १८० ग्रेन के बराबर है उसको १० माशे भर कहते हैं। ऐसे उदाहरणों से यह स्पष्ट झलकता है कि उनका कहने वाला अपने मन में किसी स्थानी तौल से मुकाबिला कर रहा है।

युअनच्वांग ने योजन के $\frac{१}{४०}$ वें भाग का नाम एक ली रक्खा है। इस नाम रखने का तात्पर्य कदाचित यह है कि चीन और भारतवर्ष के भूमि के माप में जो संबन्ध उस समय था जिस समय उसकी पुस्तक लिखी गई थी उसको चीनी पाठक भली भांति समझते थे।

इस समय हम ठीक ठीक नहीं कह सकते कि युअनच्वांग का एक ली कितने अंगरेजी गज़ फ़ीट और इञ्च के बराबर है। इसका मुख्य कारण केवल यही है कि ली का अर्थ वंशपरंपरा के साथ बदलता रहा है।

युअनच्वाङ्ग ने अपनी यात्रा के वर्णन में ली शब्द का प्रयोग योजन से अधिक किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि यहां के

योजन और इससे समता रखने वाला जो चीन का माप था इन दोनों में बहुत अन्तर था। इसके विरुद्ध फ़ाहियान छोटी छोटी दूरी को छोड़कर और स्थानों पर योजन शब्द का प्रयोग करता है।

इससे यह मालूम होता है कि उस समय जब वह भारतवर्ष में आया तब यहां के योजन और चीन के माप में बहुत समता थी।

युअनच्वाङ्ग के वर्णन से हमें निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं।

(१) जिस समय वह भारतवर्ष में था उस समय सब के लिये एकही प्रकार का योजन था और वह ४० भागों में विभक्त था। युअन-च्वाङ्ग ने भी इसी योजन को माना है।

(२) युअनच्वाङ्ग कहता है कि यह योजन ३/४ उस योजन का था जो कि पहिले प्रचलित था और वह भी ४० भागों में विभक्त था जैसा कि परम्परा से चला आया था कि प्रत्येक योजन के ४० भाग होने चाहिए।

(३) बुद्ध की धर्मपुस्तकों में योजन के ४० भाग नहीं हैं। उस-में प्रत्येक योजन के केवल १६ भाग किए गए हैं।

यदि हमारी सम्मति सही है तो इस प्रकार युअनच्वाङ्ग के समय में यहां पर दो प्रकार के योजन प्रचलित थे।

(१) प्राचीन योजन जो कि बहुत कम काम में आता था और ४० ली में विभक्त था।

(२) प्रचलित योजन जो कि प्राचीन योजन का ३/४ था और वह भी प्राचीन योजन के सदृश ४० ली में विभक्त था।

और प्राचीन अथवा नवीन योजन जब कि १६ भागों में विभक्त किए जाते थे तो उन्हें पवित्र योजन कहते थे।

और इन दोनों योजनों से पहिले कितने योजन प्रचलित थे इस विषय में युअनच्वाङ्ग कुछ भी नहीं लिखता। परन्तु यह सम्भव है कि इनके पहिले और भी योजन प्रचलित हों।

जनरल कनिङ्गहाम साहब ने जूलियन साहब की पुस्तक से यह अर्थ निकाला है कि योजन एक ही था परन्तु उसका विभाग

दो भिन्न भिन्न प्रकार से किया गया था। एक तो प्राचीन प्रथा के अनुसार जिसे युधन च्यांग ने माना है, और जो योजन कि ४० ली में विभक्त था। दूसरा वह जो कि भारतवर्ष के ज्योतिषियों में उस समय प्रचलित था जब वह यात्री भारतवर्ष में आया और यह योजन ३० ली में विभक्त था। जनरल कनिङ्गहाम साहब कहते हैं कि योजन को जो ३० ली में विभक्त किया है इसमें कुछ भूल है।

मेरी सम्मति यह है कि इसमें कुछ भी भूल नहीं है। भूल जनरल साहब की है जिन्होंने हुएन तीसियांग के यथार्थ मतलब को नहीं समझा है।

मेरे विचार में इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि यदि हम उस रीति पर ध्यान देवें जिसके अनुसार दूरी, तौल आदि के भिन्न बतलाए जाते हैं जो कि भारतवर्ष में प्रचलित हैं तो हमारी समझ में आ जायगा कि ३० ली का योजन जैसा कि हमने वर्णन किया है दूसरे योजन का केवल $\frac{३०}{४०}$ योजन है और यह दूसरे योजनों की भांति ४० ली में विभक्त है और ३० ली में नहीं विभक्त है जैसा कि जनरल साहब ने समझा है।

अब केवल १६ ली वाला योजन बतलाना रह गया है। हमको यह भली भांति नहीं मालूम है कि जनरल कनिङ्गहाम साहब ने इसका वर्णन अथवा इसके विषय में कहीं पर वाद-विवाद किया है या नहीं।

जिस प्रकार ३० ली का योजन दूसरे योजन का $\frac{३०}{४०}$ या $\frac{३}{४}$ है उसी प्रकार १६ ली के योजन से युधन चयांग का यह तात्पर्य है कि वह किसी दूसरे योजन का $\frac{१६}{४०}$ या $\frac{२}{५}$ है।

बरमा और लंका के लोगों के लेखों में लिखा है कि कपिल-वस्तु नगर से अनोमा नदी ३० योजन की दूरी पर है और सियु-हिंग पेनकीकिंग नाम की पुस्तक में ४८० ली का अंतर लिखा है और हारडी साहब के अनुसार ४८० मील का अन्तर है। इन सभों को देखने से यह ज्ञात होता है कि एक समय बरमा और लंका में १६ ली का योजन था। यह १६ ली का योजन कदाचित उस बड़े योजन का

जिसके विषय में युअन च्वांग ने लिखा है (यदि उसका तात्पर्य किसी खास योजन से है) एक छोटा भाग है।

श्रावस्ती नगर का अनाथ पिंडिका नाम का एक व्यापारी राजगृह को गया था और वहां पर जाकर उसने बौद्ध मत को स्वीकार किया और बुध से श्रावस्ती नगर में चलने की प्रार्थना की।

राजगृह से श्रावस्ती ४५ योजन की दूरी पर थी। बुध ने श्रावस्ती के लिये प्रस्थान किया और वह सुख से १६ मील नित्य चलता था। इस चाल से वह ४५ दिन में राजगृह से श्रावस्ती पहुंच गया।

इससे प्रगट होता है कि बुध प्रति दिन एक योजन चलता था और प्रत्येक योजन के १६ भाग थे जिनमें से प्रत्येक भाग बराबर एक मील अथवा ली के है जैसा युअन च्वांग कहता है। अब इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह वही पवित्र योजन १६ ली का है जिसका कि यात्री (युअन च्वांग) वर्णन करता है और जो बुध की धर्मपुस्तकों में मिलता है।

इसके विपरीत इस पर भी ध्यान देना चाहिए कि युअन च्वांग ने जहां पर योजनों के विषय में लिखा है वहां पर १६ ली के योजन को प्रचलित योजन माना है।

इससे यह ज्ञात होता है कि उसका यह तात्पर्य है कि ४० ली का प्रचलित योजन १६ ली के पवित्र योजन के बराबर था। पवित्र योजन जिसके विषय में उसने कहा है वह प्रचलित योजन के १०० ली के बराबर था।

क्योंकि १६ : ४० :: ४० : १०० अर्थात् उसका पवित्र योजन प्रचलित योजन का ढाई गुणा था जैसा कि यात्री कहता है कि एक योजन में ४० ली होते थे। इस प्रकार से प्रचलित योजन पवित्र योजन का $\frac{१६}{४०}$ या $\frac{२}{५}$ भाग था।

हमने उसकी पुस्तक से यही अर्थ निकाला है और अपने पत्र को सबल करने के लिये यष्टी के वन से राजगृह तक की दूरी को जो कि १२ मील अथवा लगभग ३ घण्टे के है मैं उपस्थित करता हूं।

राजगृह से श्रावस्ती तक की दूरी में जितने योजन हैं प्रत्येक १६ मील में विभक्त हैं। इसलिये यष्टी के बन से राजगृह तक के १२ मील १०० ली के $\frac{12}{16}$ या ७५ ली के बराबर हैं।

यदि ऐसे शुद्ध योजन किसी और योजन के २$\frac{1}{2}$ गुणे के बराबर हैं और भारतवर्ष में जितने पवित्र योजन हैं सब १६ भागों में विभक्त हैं तो इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यष्टी का बन वही है जिसको युअनच्वाङ्ग यष्टी बन कहता है। भाग्य से मुकाबिला करने के लिये चीन के यात्री ने यष्टी बन से राजगृह तक की दूरी लिख दी है। युअनच्वाङ्ग ने इस दूरी के विषय में यह लिखा है।

(१) यष्टी बन के दक्षिण पूर्व (अग्निकोण) में ६, ७, ली की दूरी पर एक बड़ा पहाड़ और स्तूप है।

(२) इस पहाड़ के उत्तर में ३, ४, ली की दूरी पर व्यास ऋषि की पहाड़ी है।

(३) व्यास ऋषि की पहाड़ी से उत्तर पूर्व (ईशानकोण) दिशा में ४ या ५ ली की दूरी पर वह पहाड़ी है जिसमें असुरों की गुहा है।

(४) असुरों की गुहा से पूर्व दिशा में लग भग ६० ली की दूरी पर कुशागारपुर है जहां का मार्ग असुरों की गुहा से पर्वतों में होकर जाता है।

(५) कुशागारपुर से उत्तर दिशा में लग भग १ ली की दूरी पर करंडवेणु-वन-विहार है।

(६) करंडवेणु-वन-विहार से उत्तर २०० कदम अथवा ३·३ ली की दूरी पर करंड ह्रद है।

(७) करंड ह्रद से उत्तर पश्चिम २ या ३ ली की दूरी पर अशोक स्तूप और हाथी के सहित एक स्तंभ है।

(८) अशोक स्तंभ से उत्तर पूर्व बहुत ही निकट राजगृह है।

व्यास ऋषि की पहाड़ी गुफा यदि यष्टी बन की पूर्वी सीमा पर नहीं है तो उसके बहुत ही निकट है। मेरी समझ में वह

स्थान यष्टी वन से २ ली की दूरी पर है। मेरे ऊपर के विभागों में से आठवां छोड़ देने में कोई हानि नहीं है।

३, ४, ५, ६, ७, विभागों की दूरी ७२·३ या ७४·३ ली के बराबर है। इसमें दूसरे विभाग के लिये २ ली और भी जोड़ दी गई है। फाहिआन के अनुसार कुशागारपुर से कारंडवेणु-वन-विहार ३०० कदम की दूरी पर है जो कि मैं विचारता हूं कि युअनच्वाङ्ग के ४०० कदम के बराबर है। और युअनच्वांग के अनुसार एक ली केवल ६० कदम के बराबर है। प्रचलित हिसाब से ३४० कदम या ५·६ का अंतर पड़ता है। इस कारण से प्रचलित हिसाब के अनुसार राजगृह से यष्टी वन ७८ या ८० ली है, यदि हम फ़ाहिआन के अनुसार ३०० कदम की दूरी मानें।

यदि युअनच्वांग का एक ली सही है तो कुछ ली ७२·३ या ७४·३ ली में जोड़े जा सकते हैं क्योंकि चीनी यात्री पुराने राजगृह या कुशागारपुर में भी गया था और उसकी दूरी इसमें नहीं जोड़ी गई है।

ऊपर लिखी हुई दूरिओं को जांचने से मेरे बिचार में केवल यही परिणाम निकल सकता है कि यह मील युअनच्वांग के अनुसार $\frac{७५}{१२}$ या ६·२५ ली के बराबर है। पवित्र योजनों में से एक (कदाचित वही एक जिसका वर्णन युअनच्वांग ने किया है) प्रचलित १०० ली के तुल्य था।

राजगृह से यष्टी वन को दो रास्ते गए हैं एक तो चकरा घाट से और दूसरा कुशागारपुर से। दूसरा मार्ग सीधा गया है परन्तु बहुत कठिन है। इस प्रकार से १६ ली वाले योजन के ये तीन अर्थ हो सकते हैं अथवा १६ ली वाले योजन से यह तीन मतलब निकलते हैं।

(१) किसी योजन का $\frac{१६}{४०}$ वा $\frac{२}{५}$।

(२) किसी योजन का $\frac{१००}{४०}$ वा २½ गुणा।

(३) अथवा यह कि बुध ने अपने योजनों को १६ भाग में बिभक्त किया है।

परन्तु इन तीनों अर्थों में से कौन सा सत्य है यह विचारणीय है।

सरल रेखा का माप जो कि गौतम को उसके लड़कपन में सिखलाया गया था उसमें और युअनच्वांग के योजन में कुछ भी अन्तर नहीं है, यदि दोनो का अंगुल बराबर है । एक योजन ४ कोसों में विभक्त है, न कि ८ में, जैसा कि चीनी यात्री की साक्षी में दिया है । इस योजन का चतुर्थांश अर्थात् २ कोस मगध देश के १ कोस के बराबर है, यदि हम यह मान लेवें कि मगध देश में ऐसे ऐसे आठ कोस का एक योजन होता है क्योंकि हिन्दुओं की पुस्तकों में एक योजन आठ कोसों में विभक्त है । यष्टी वन से नया राजगृह मगध देश के ६ कोस वा एक योजन के $\frac{3}{4}$ भाग अथवा १२ "मील" की दूरी पर है । क्योंकि ये कोस दूने हैं इस लिये दूसरी जगह मगध देश का ६ कोस $1\frac{1}{2}$ योजन वा ६० ली के बराबर है । इस ६ ली में यदि इसी की एक तिहाई और जोड़ देवें तो राजगृह से यष्टी वन ८ ली हो जावेगा ।

यह संभव है कि गौतम को जो माप सिखलाया गया था वह प्राचीन योजन के अनुसार था जिसके विषय में हम ऊपर लिख आए हैं और युअनच्वांग का योजन इस योजन का $\frac{3}{4}$ भाग है ।

यह विचारना चाहिए कि सरकूप जो कपिलवस्तु (के राज्य) में है उतनीही दूरी पर नहीं है जितनी दूरी पर चीनी यात्री ने लिखा है किन्तु यह लिखा है कि १० कोस उससे अधिक दूरी पर है। मैं यह विचारता हूं कि कदाचित ललित विस्तर के टीकाकार ने जिसका नाम नहीं मालूम है और जिसके कोस के वर्णन से यह ज्ञात होता है कि कदाचित वह मगधदेशी है, बिना समझे १० कोस लिख दिया है जैसा कि उसने उस पुस्तक में पाया जिसमें से उसने नकल किया था । इसी लेख के देखने से हम यह विचार करते हैं कि सरकूप जो कि १० कोस की दूरी पर है वह मगध देश के कोस के हिसाब से नहीं है । इस हिसाब से ३० ली की दूरी से कई गुणा अधिक है, न कि केवल ३० ली है जैसा कि फाहियान और युअन च्वाङ्ग ने लिखा है । आगे मैं प्रमाण देकर

यह सिद्ध करूंगा कि कपिलवस्तु के समीप स्थानीय कोस अंग्रेजी मील का ६·६१ वां गुणा था। १० स्थानीय कोस ६· ६१ अंग्रेजी मील के बराबर थे।

युअनच्वाङ्ग का सवा योजन या १० कोस बराबर था ६· ६१ मील के। इन लेखों के देखने से यह ज्ञात होता है कि सर-कूप प्रचलित हिसाब के अनुसार कपिलवस्तु नगर से ५० ली की दूरी पर था और पुराने माप के अनुसार ३७· ५ ली की दूरी पर था। इसके अनन्तर मैं ३० ली की सत्यता के विषय पर जैसा कि युअ-नच्वाङ्ग ने लिखा है विवाद करूंगा, जब मैं फाहियान के योजन के विषय में लिखूंगा।

यह न समझ लेना चाहिए कि जितने योजन बुध की पवित्र पुस्तकों में लिखे हैं वे सब पवित्र योजन या पुराने योजनों के बराबर या प्रचलित दूरी के बराबर अथवा १०० ली के बराबर हैं जो कि इस समय का माप है। यह बात प्रोफ़सर राइज़ डेविड्स की उस फ़िहरिस्त के देखने से ज्ञात होती है जिसमें कुछ स्थानों की दूरी योजनों में लिखी हुई है। उनकी दूरी जातक आदि से ली गई है।

मैं ने अभी वर्णन किया है कि राजगृह श्रावस्ती नगर से ४५ योजन की दूरी पर है। इस दूरी की पुष्टि जातक, बिगनडेट और हारडी में दी हुई सारणी से होती है।

इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि कपिलवस्तु का नगर श्रावस्ती नगर से दक्षिण पूर्व (अग्नि कोण) की तरफ़ बहुत दूरी पर था। इस पर जातक और हारडी के अनुसार राजगृह से कपिलवस्तु ६० योजन की दूरी पर है परन्तु राकहिल ने जो बुध की जीवनी लिखी है उसमें यही दूरी केवल ६० ली लिखी हुई है।

यह संभव है कि बुध ने अपनी पुस्तकों में कई प्रकार के योजन लिखे हों। वे योजन कितने बड़े थे इसका पता लगाना अभी बाकी है।

मैं बिचारता हूं कि उन पुस्तकों को जिनमें से प्रोफ़ेसर साहब ने अपने दूरी के टेबुल लिखे हैं, फिर से भली भांति इस दृष्टि से देखना उचित है, कि उनमें दूरी से क्या तात्पर्य है, देश की दूरी से है अथवा राजधानी की दूरी से। इसके विषय में हमने इस लेख में भी लिखा है।

जब कि राजगृह का व्यापारी श्रावस्ती जाता था या अनाथपिंडिका राजगृह को जाता था जैसा कि प्रायः हुआ करता था तो वे एक दूसरे को १६ "मील" अथवा हर एक के नगर से एक योजन की दूरी पर मिलते थे। इसी भांति जब बुध अपनी जगत विख्यात यात्रा में कपिलवस्तु गया तो वहां पर उसका पिता राजा शुद्धोधन नगर के बाहर ४० ली की दूरी पर अपना रथ लेकर उसकी अगवानी के हेतु खड़ा रहा।

युअन च्वाङ्ग यहां पर उस रीति को लिख रहा है जिसके अनुसार किसी प्रसिद्ध पुरुष को लेने के लिये लोग नगर के बाहर कुछ दूर तक जाते हैं। यह रीति भारतवर्ष में अब तक प्रचलित है। इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि उसने एक योजन की दूरी ४० ली से जनाई है।

तिब्बत वालों ने वैद्यक और गणित चीनवालों से सीखा है। सन् ६३९ और ६४१ ईसवी के बीच में टांग वंशी बौद्धमतावलंबी राजकुमारी वेनचंग का पाणिग्रहण महाराज श्रोन-टन-गंपू से हुआ और इसी विवाह का यह परिणाम हुआ कि ये शास्त्र तिब्बत में प्रचलित हुए। उनके वर्णन के अनुसार कपिलवस्तु नगर से अनोमा नदी १२ योजन की दूरी पर थी। चीन के हिसाब के अनुसार यदि समीकरण की दोनों तरफ की संख्या तुल्य है जैसा हमारे कहने से मालूम होता है तो यह दूरी ४८० ली है। इससे यह ज्ञात होता है कि योजन में ४० ली होते थे। युअनच्वाङ्ग के योजन के हिसाब लगाने के पूर्व हमको यह जानना अति आवश्यक है कि उसके माप के अनुसार एक क्यूबिट (हाथ) कितने के बराबर है।

सब सरलरेखा के मापों की जड़ हाथ है जो कि अंगुली से ले

कर टेहुंनी तक होता है और जो अंग्रेज़ी १८·२५ इंचों के बराबर होता है। यहूदी लोगों का हाथ ५ हथेली अथवा २० अंगुल के बराबर था। इस स्वाभाविक क्यूबिट अथवा हाथ में एक हथेली अथवा ४ अंगुल और जोड़ने से रायल ब्याबिलन वा यहूदियों का पवित्र अथवा म्यासिडोनियन लोगों का क्यूबिट अथवा हाथ होता था जो २४ अंगुल अथवा ६ हथेलियों के बराबर था और अंग्रेज़ी २१·९ इंचो के बराबर होता था। २१·९ इंच के ब्याबिलोनियन क्यूबिट से जिसमें से $\frac{२४}{२७}$ निकाल लिया गया, आम ब्याबिलोनियन, अरेबियन, परशियन, और हिन्दुस्तानी क्यूबिट निकले जो २४ अंगुल वा १९·५ इंचो के बराबर होते हैं। १९·५ इंच के क्यूबिट में से उसीका $\frac{२४}{२७}$ लेलिया तो वही रोमन माप की जड़ हुई जो अंग्रेजी १७·४ इंचों के बराबर है।

युअनच्वाङ्ग के प्रचलित योजन का हिसाब यदि २१·९ इंच वाले क्यूबिट से लगाया जावे तो वह बराबर होगा २१·९ इंच×४×५००×८ अथवा ५·५३०+१९६० गज का अंग्रेज़ी मील, और १९·५ अंग्रेज़ी इंचों के क्यूबिट के हिसाब से बराबर होगा ४·९२३८× अंग्रेज़ी मील के।

कदाचित् १९·५ इंचों का क्यूबिट चीन में यात्री के बहुत दिन बाद प्रचलित हुआ।

रत्ती, मासा, तोला, अंगुल, बित्ता, हाथ, गिरह, गज आदि तथा माप संबन्धी ऐसे अन्य परिमाण गढ़े गए हैं जिनकी दर कुछ नियमित न थी, केवल राजा की आज्ञा पर वह निर्भर थी। इसका अच्छा उदाहरण ली है।

सन् १८१० ई० में नोइल साहब ने एक प्रसिद्ध चीनी कोश के आधार पर यह लिखा है कि प्राचीन ली ३६० कदमों के प्रचलित ली के ३०० कदमों के बराबर था और उसी कोश में यह भी लिखा है कि १२५ प्राचीन ली हाल के १०० ली के बराबर थे और कुछ लोगों ने यह भी लिखा है कि प्राचीन ली ३६० कदम का था।

यहां पर ली की लंबाई में अंतर देख पड़ता है। सन् १८०१ ई० में ३६० कदमों का ली हुआ। जैसा कि लिखा है प्राचीन १२५ ली हाल के १०० ली के बराबर है। इससे यह तात्पर्य है कि

३६० कदम वाले ली के पूर्व किसी समय २८८ कदमों का ली था क्योंकि २८८×१२५=३६०×१००' कदम ।

इसको छोड़कर कहीं कहीं यह भी पाया गया है कि प्राचीन ली ३६० कदमों में विभक्त था । इससे यह अनुमान किया जाता है कि २४० और २५० कदमों के ली को बढ़ा बढ़ा कर २८८ और ३०० कदमों का ली बनाया गया है ।

३६० कदमों का ली या चीन का मील लंबाई में अंग्रेज़ो ११५८ से १८८४ अंग्रेजो फुट होता था ।

यदि हम इनमें से सब से छोटी संख्या को लेवें तो ११५८ फ़ीट, २४० कदम या $\frac{२}{३}$, ५·८५+ अंग्रेज़ी मील; २५० कदम या $\frac{२५}{३६}$, ६·०९२+मील; २८८ कदम या $\frac{४}{५}$ ७·०१८२+मील या ३०० कदम या $\frac{५}{६}$, ७·३१०,+ मील के बराबर होगा ।

डी लाकूपेरी साहब प्राचीन चीनी सिक्के की माप से लिखते हैं कि सिक्के सम्बन्धी शास्त्र, पुरातत्व शास्त्र और दूसरे प्राचीन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि चीन में लंबाई के माप का परिमाण बित्ता वा चीह था जो १०·६३ इंचों के बराबर था—इसके भिन्न अर्थात् $\frac{३}{४}$ और $\frac{२}{३}$ या पूरी संख्या में ७ और ८ इंच टशु वंश के अन्तिम समय में किसी विशेष कार्य में परिमाण गिने जाते थे । परन्तु सिक्के के प्रमाण से उसके २ भाग, ४ भाग, ५ भाग, ६ भाग और १० भाग होने से यह सिद्ध होता है कि उसका पूरा परिमाण क्या था । वह यह भी कहता है कि चीन में एक चीह था जो २०·६३ इंचों के बराबर था ।

यदि हम और पूर्व की लंबाई के माप को देखें तो ज्ञात होगा कि वहां पर एक बित्ता १२ अंगुल के बराबर होता है और इस लिये वह १ क्यूबिट का आधा है जिसकी लंबाई कितनी ही हो परन्तु वह २४ अंगुलों में विभक्त होता है । इस लिये वह चीह जो १०·६३ इंच के अथवा १२ अंगुल के बराबर है उस क्यूबिट का आधा होगा जो २१·२६ इंचों के बराबर है और २०·६३ इंचों वाला चीह दूने बित्ते या २४ अंगुल वाले क्यूबिट के बराबर होगा ।

यहां पर हमको इस बात का शुद्ध और विश्वास योग्य प्रमाण मिलता है कि युअनच्वांग के भारतयात्रा करने के कुछ पूर्व (५९९-६६४ई०) चीन में २०·६३ और २१·२६ अंग्रेजी इंचों का क्यूबिट प्रचलित था। यदि हम यात्री के योजन की लंबाई इस क्यूबिट के अनुसार निकालें तो यह ज्ञात होता है कि यदि एक क्यूबिट २१·२६ इंचों का होगा तो एक योजन ५·३६८ अंग्रेज़ी मील के बराबर होगा और यदि एक क्यूबिट २०·६३ इंचों के बराबर होगा तो एक योजन बराबर होगा ५·२०९+ "मील" के।

सिक्के के प्रमाण से यह स्पष्ट प्रगट है कि चीन में प्राचीन लंबाई का माप २१·९ इंच के क्यूबिट पर निर्भर था और क्रमशः क्यूबिट छोटा होता गया यहां तक कि एक क्यूबिट २१·२६ और २०·६३ इंचों के बराबर किसी किसी भाग में हो गया।

लंबाई और तौल के जितने माप हैं सब क्रमशः घटते जाते हैं।

सब से पुराने पैट्रिआर्कल क्यूबिट के विषय में जो हम कह आए हैं उससे विदित होता है कि युअनच्वाङ्ग का योजन ५·५३० अंग्रेज़ी मील (क्यूबिट=२१·९ इंच) से अधिक नहीं हो सकता और ४·९२४ अंग्रेज़ी मील [क्यूबिट=१९·५ इंच] से कम भी नहीं हो सकता।

यदि हम युअनच्वाङ्ग के योजन को ५·३६८ और ५·२०९ अंग्रेज़ी मील के बीच की संख्या के बराबर अर्थात ५·२८८ अंग्रेज़ी मील के बराबर मानें तो हम यह बड़ी दृढ़ता के साथ कह सकते हैं कि थोड़ी थोड़ी दूरी नापने में भी बहुत थोड़े गजों की अशुद्धि होगी।

योजन का ली बनाने के लिये यह आवश्यक है कि उसे ४० से भाग देवें।

युअनच्वाङ्ग जिस समय भारतवर्ष में आया उस समय में यहां के भिन्न भिन्न नगरों में जो योजन प्रचलित था उसको यदि हम ५·२८८ अंग्रेज़ी मीलों के बराबर मानें तो उससे यह सिद्ध होता है कि प्राचीन योजन जिसका ⅘ युअनच्वाङ्ग का योजन था लगभग ७·०५० अंग्रेज़ी मीलों के बराबर था।

यदि युअनस्वाङ्ग भिन्न भिन्न मापों को जिसके विषय में उसने अपनी पुस्तक में लिखा है हिन्दुस्तान की जगह चीन के अनुसार लिखे होता तो वे निम्नलिखित टेबल के अनुसार होते।

अंग्रेज़ी माप	अंगुल	हथेली	फुट	क्यूबिट	चंग टचंग	कदम	चम	लीया मील	योजन
इंच ·८७२५२	१								
३·४९००८	४	१							
८·७२५२०	१०		१						
२०·९४०४८	२४			१					
३४·९००८०	४०	१०			१				
५२·३५१२०	६०					१			
६९·८०१६०	८०					१ १/३			
८७·२५२०	१००						१		
मील ·१३२२	९६००	२४००	९६०	४००	२४०	१६०	९६	१	
५·२८८	३८४०००	९६०००	३८४००	१६०००	९६००	६४००	३८४०	४०	१

निम्नलिखित आधार पर ऊपर वाला टेबल बनाया गया है। युअनस्वाङ्ग के फुट, कदम और ली का विचार फ़ाहिआन के माप के साथ किया गया है। युअनस्वाङ्ग कहता है कि उसका योजन ४० ली और ३८४००० अंगुलों में विभक्त था।

लाकूपेरी साहब कहते हैं कि एक टचंग १० टचीह के बराबर होता है। हम टचीह का यथार्थ अर्थ एक हथेली वा ४ अंगुल लेते हैं, न कि एक बित्ता जैसा कि कभी कभी अनुवाद मे आया है क्योंकि "फेमिली सेएंगिस आफ़ कनफ्यूसियस" नामी पुस्तक में (४ शताब्दी ईसा के पूर्व) यह लिखा है कि अपनी एक अंगुली फैलाओ तब तुमको टशू वा इंच मालूम होगा और अपना हाथ फैलाओ तब तुम को एक टचीह वा बित्ता मालूम होगा।

यहां फैलाने का अर्थ निकालना है क्योंकि एक अंगुली फैलाना वा चौड़ाई में बढ़ाना यह असंभव है और दोनी वर्णों के अनु-

सार फैलाना शब्द दोनों दशा में एकही प्रकार का है, इसलिये मैं यह कह सकता हूं कि टचीह का अर्थ यहां पर एक हथेली या ४ अंगुल से है जो एक दूसरी से सटी होवे और एक बित्ता नहीं है। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में चीन में हथेली ४ अंगुल की होती थी और पूर्वी देशों में आज कल भी यही दशा है।

इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि चीनी इतिहास में टचीह माप भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न प्रकार के थे और ये हथेली के गुणय ज्ञात होते हैं। हमने देखा है टचीह कहीं हथेली या ४ अंगुल के बराबर और कहीं ½ क्यूबिट या बित्ता के बराबर माना गया है जो १२ अंगुल का होता है और फिर २४ अंगुल के दूने बित्ते के बराब करा गया है। कन्फ्यूसियस ९ ६ टचीह लंबा था। यहां पर टचीह ठीक ८ अंगुल के बराबर है। युअनच्वाङ्ग के माप के अनुसार कन्फ्यूसियस ५.५८ अंग्रेज़ी फुट लम्बा था। आज कल लंबा से लंबा चीन का मनुष्य ५.९२ फुट होता है।

टचाऊ वंश के राजा जब राज्य करते थे उस समय जो टचीह बर्ता जाता था वह ८ अंगुल का था।

भारतवर्षीय सरल रेखा के माप में ८ यव का १ अंगुल होता है। परन्तु यह स्पष्ट है कि युअनच्वाङ्ग के माप के अनुसार ७ ही यव का एक अंगुल होता है। मैं भी एक समय यह मानने को था (क्योंकि जरविस साहब कहते हैं कि चीन का क्यूबिट १९.५ इंचों का था) कि किसी भांति ७ की संख्या यात्री के क्यूबिट की लंबाई में कुछ फरक डाले और उसको १९.१६२५ इंचों के बराबर या २१.९ इंच के पैट्रिआर्कल क्यूबिट के ⅞ के बराबर बनावे। १९.१६२५ इंच के क्यूबिट के अनुसार युअन च्वाङ्ग का योजन केवल ४.८३९० अंग्रेजी मीलों के बराबर होगा। यह बहुत छोटा है।

जिस भांति जरविस साहब यह नहीं मानते कि हिन्दुस्तानी माप में अंगुल ७ यव का होता है उसी भांति मैं भी यह नहीं मानता। वे कहते हैं कि तीन भिन्न भिन्न प्रकार के जो सरल रेखा के ख्याली माप हैं और जो क्रमशः ६, ७ और ८ यव बिछा कर बनाए गए हैं वे वास्तव में प्रचलित नहीं हैं परन्तु इससे हमें

भारतवर्षीय तथा बाहरी देशों के माप समझने में बड़ी सहायता मिलती है। युअन च्वाङ्ग का चन फाहियान की भांति १०० अंगुलों का मालूम होता है। इस संख्या से युअन च्वाङ्ग के माप की अशुद्धि नहीं मिल सकती।

यह स्मरण रखना अति ही लाभदायक है कि सबसे पुराने पैट्रियार्कल क्यूबिट से बड़ा कोई क्यूबिट अभीतक नहीं मालूम हुआ है और वह २१·८ इंचों के बराबर था। युअन च्वाङ्ग का बड़ा से बड़ा क्यूबिट इस संख्या से अधिक नहीं हो सकता। हम इस संख्या पर आप लोगों का ध्यान इसलिये दिलाते हैं क्योंकि जनरल कनिङ्गहाम ने अपने लेखों में युअन च्वाङ्ग का योजन ६·७५ अंग्रेज़ी मीलों के बराबर बताया है। यह बहुत अधिक है। अंग्रेज़ी मील ६३३६० इंचों के बराबर होता है। और ६·७५ मील में ४२७६८० इंच होवेंगे। युअन च्वाङ्ग का योजन उसीके अनुसार केवल ३८४००० अंगुलों के बराबर होता है। इसलिये उस में १६००० क्यूबिट होंगे क्योंकि वह कहता है और हम सब जानते हैं कि एक क्यूबिट २४ अंगुलों का होता है।

यदि हम ४२७६८० इंचों को जो ६·७५ मीलों के बराबर है वा जो जनरल कनिङ्गहाम के अनुसार युअन च्वाङ्ग के एक योजन के बराबर है १६००० क्यूबिटों से भाग देवें (क्योंकि १६००० क्यूबिटों का युअनच्वाङ्ग का १ योजन होता है) तो इसके उत्तर में यही आवेगा कि १ क्यूबिट २६·७३ अंग्रेज़ी इंचों के बराबर है। और इतना इंचों का क्यूबिट जनरल कनिंगहाम का होवेगा यदि उनका योजन ६·७५ मीलों का सही है। क्योंकि २६·७३ इंचों का क्यूबिट जो २४ अगुलों में विभक्त है वह इस पृथ्वी पर नहीं पाया जाता और न इतना बड़ा क्यूबिट प्राचीन समय में हो था। इस लिये जनरल साहब का योजन जिसको वह ६·७५ मीलों के बराबर बतलाते हैं बहुतही अधिक है।

इस प्रकार से यह हमारे हिसाब के लगभग है जिसके अनुसार युअनचुआङ्ग का २०·९४ इंचों का क्यूबिट मेमफिस के राजकीय क्यूबिट के (जो ब्याबिलन और चाल्डिया में भी पाया जाता है) बराबर है। किसी किसी लेखक ने इसको २०·६० अंग्रेज़ी इंचों के बराबर

भी माना है । जनरल कनिंघहाम ने जो फ़ाहियान और युअन-च्वांग के योजन की लंबाई निकाली है वह दूसरी भांति से भी शंका उत्पन्न करती है । जनरल साहब ने उन लोगों के योजन की लंबाई प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थानों की दूरी के हिसाब से लगाई है । जब आप भली भांति पढ़ेंगे कि इन यात्रियों ने इन दूरियों के विषय में क्या लिखा है तो आपको मालूम होगा कि वह माप एक राजधानी से देश तक की दी हुई है । किसी नगर के वर्णन के अन्त का वाक्य युअनच्वाङ्ग का इस प्रकार का होता है 'इधर से जाकर [दिशा दी हुई है] —ली पर हम—देश में पहुंचें' । जनरल कनिंगहाम और दूसरे लेखकों ने जिन्हों ने इन चीनी यात्रियों की यात्रा के विषय में लिखा है बहुधा आगे वर्णन किए हुए देश की राजधानी तक की दूरी मानी है । हमको इसमें बहुत शंका है कि देश और राजधानी दोनों शब्दों का अर्थ एकही है । मैं यह विश्वास करता हूं कि देश शब्द जो उसने अपने वाक्य के अन्त में प्रयोग किया है उसका अर्थ उस नगर की सीमा है । प्राय: नगरों की राजधानी उस नगर की सीमा से कुछ दूरी पर रहती है परन्तु राजधानी सीमा पर बहुत कम होती है और होती भी है तो तब होती है जब नगर की सीमा कोई नदी हो और राजधानी उसी नदी के तट पर हो ।

मैं यह दृढ़ता पूर्वक कह सकता हूं कि देश और राजधानी का अर्थ एक मान लेना उन कारणों में से है जिनसे हमको पुराने स्थानों की ठीक ठीक स्थिति नहीं ज्ञात होती । इसी कारण से जनरल कनिंगहाम साहब ने यह विचार किया है कि दूरी के माप में योजन सर्वदा घटता बढ़ता रहता है और जनरल साहब को यह भी संदेह हुआ है कि योजन कोश के अनुसार अथवा किसी और माप के अनुसार जो कि किसी किसी देश में था जैसे पिलोशन या कपिथ के राज्य में, घटता बढ़ता रहा है और संभव है कि इसी कारण से यह भी अनुमान किया जाता है कि किसी किसी जगह यात्रियों ने जो दूरी बतलाई है सो ठीक नहीं है ।

जनरल कनिङ्गहाम का यह विचार कि यात्रियों के योजन

का माप मुख्य मुख्य स्थानों की दूरी से निकाला गया है ठीक नहीं है यदि देश का अर्थ देश की सीमा से है ।

वह स्थान जहां तक किसी देश की सीमा फैली रहती है प्रायः लोगों को मालूम रहता है। हम इस विषय की सत्यता को भली भांति नहीं जानते परन्तु केवल इसका अनुमान कर सकते हैं। प्रायः देशों की सीमा बड़ी बड़ी नदियों से जानी जाती है और इस कारण से यह संभव मालूम होता है कि युअनच्वाङ्ग ने जो दूरी लिखी है वह नदी तक की है अथवा उस देश के और स्वाभाविक पदार्थों तक की है और उसका तात्पर्य राजधानी से नहीं है ।

यदि हमारी यह सम्मति कि देश का अर्थ कदाचित सर्वदा देश की सीमा से है, ठीक है तो युअनच्वाङ्ग वा वे लोग जिन्हों ने उसकी जीवनी लिखी है कुछ दशाओं में बतलावेंगे कि देश की सीमा से राजधानी तक क्या दूरी है ।

युअनच्वाङ्ग ने देश और राजधानी इन दोनों शब्दों के प्रयोग में बहुत अन्तर दिखलाया है और देश शब्द से उसका तात्पर्य उस देश की सीमा से है न कि राजधानी से। इसको मैं आगे साबित करता हूं।

देश शब्द का अर्थ देश की सीमा है इसके मानने से मेरा मुख्य आशय यह है कि यदि हम एक राजधानी से दूसरी समीप की राजधानी तक की दूरी नापें तो युअनच्वाङ्ग का योजन बहुत छोटा पड़ जाता है । ये अन्तर जो कि इन नीचे लिखे वाक्यों में लिखे हैं जिनमें पिलोशन राजधानी से पवित्र सीढ़ी कपिलवस्तु राजधानी से २० ली पूर्व कही है तभी ठीक सिद्ध होंगे जब देश शब्द का अर्थ देश की सीमा माना जायगा । वे वाक्य जिनका हमने उल्लेख किया है ये हैं।

"यात्रा—पिलोशन देश की राजधानी के मध्य में एक प्राचीन संघाराम है । इसके समीप वे चिन्ह हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि यहां पर चार प्राचीन बुध बैठे थे और टहले थे ।

यहां से दक्षिण पूर्व की ओर २०० ली के लगभग जाने पर हम कपिथ देश में पहुंचेंगे ।

नगर (कपिथ राजधानी) से पूर्व २० ला के लगभग जाने पर एक बड़ा संघाराम मिलेगा······इस बड़े संघराम के हाते में ३ बहुमूल्य सीढ़ियां हैं।

२ जीवनी-फिर २०० ली के लगभग पूर्व जाने पर (यह दूरी पिलोशन राजधानी से ली गई है) हम कपिथ देश में पहुंचेंगे।

नगर (कपिथ राजधानी) से लगभग २० ली पूर्व एक संघा राम है जिस के आंगन में तीन सीढ़ियां हैं।

२ जीवनी-एक बार फिर वह इस स्वर्गीय सीढ़ी के पवित्र चिन्हों के दर्शन के लिये गया था और वहां से ३ योजन उत्तर पश्चिम बढ़ने पर वह पिलोनन की राजधानी (बीराशन) में पहुंचा।"

पिलोशन और पिलोनन ये दोनों नाम बीराशन ही देश के हैं।

यात्रा और जीवनी में २०० ली और २० ली दोनों दूरी एकही है और बिना सन्देह के इन्हें सही मानना चाहिए।

यदि देश और राजधानी दोनों शब्दों का अर्थ एक ही है तो पिलोशन नगर की राजधानी से कपिथ नगर की सीढ़ी तक की दूर २०० ली वा ५ १/२ योजन होगी। परन्तु जीवनी के दूसरे वाक्य के अनुसार यह दूरी केवल ३ ही योजन है। सम्भव है कि यही दूरी सही हो। यदि यह ठीक नहीं है और ३ योजन किसी और पूर्ण अंक की जगह भूल से लिख गया है तो फिर १/२ योजन क्या हुआ ? यह सम्भव है कि ४ वा ५ योजन की जगह पर भूल से ३ योजन लिख गया हो परन्तु मैं बिचार करता हूं कि ५ १/२ में भूल नहीं हो सकती।

यदि ५ १/२ योजन और ३ योजन इन दोनों दूरियों को सही मान लेवें तो पिलोशन की राजधानी से पवित्र सीढ़ियों तक जो कपिथ नगर के पूर्व हैं दोनों दूरियों को जोड़ने से हमारा तात्पर्य सिद्ध हो जावैगा, इन दोनों का जोड़ ८ योजन होवैगा-यह हिसाब यदि सत्य है तो यही दूरी होवैगी।

(१) पिलोशन देश की राजधानी से कपिथ देश की सीमा तक २०० ली होगा जैसा कि यात्रा में है।

(२) ऊपर लिखे हुए दोनो नगरों की सीमा से कपिथ की राजधानी तक १०० ली होगा।

(३) कपिथ की राजधानी से सीढ़ियों तक २० ली है जैसा कि यात्रा और जीवनी में लिखा है।

ऊपर की १०० ली, और २० ली इन दोनों दूरियों को पूर्ण प्रकार से जोड़ने पर मैं विचारता हूं कि जो ३ योजन लिखा हुआ है वह निकल आवेगा।

जीवनी और यात्रा में जो अन्तर है उसको ठीक करने में जो कुछ हमने लिखा है उससे यह अशुद्धि युयन च्वाङ्ग के जीवनी लिखने वाले की पुस्तक में मिलती है कि उसने ३ योजन की दूरी जो लिखी है वह पिलोशन देश तक नहीं है बल्कि पिलोशन राजधानी तक की है।

जीवनी के संक्षेप (थोड़े) वर्णन में देश और राजधानी में प्रायः अन्तर नहीं माना है।

यात्रा के पाठ को दो भिन्न भिन्न अनुवादों के साथ मिलान करना यह जानने के लिये प्रायः आवश्यक है कि जीवनी में देश शब्द से संपूर्ण देश अथवा केवल राजधानी ही मानी गई है और कहीं कहीं पर न तो देशही शब्द लिखा है और न राजधानी ही लिखी है। कहीं कहीं पुस्तक में यह शब्द छूट गया है और कहीं राजधानी छूट गई है। जीवनी और यात्रा में जो त्रुटि दूरी के विषय में हैं उसमें से कुछ दूर हो सकती है यदि हम देश से उसकी सीमा मानें और इसीसे यह भी स्पष्ट होजाता है कहीं पर यात्रा में कपिथ देश से दक्षिण पूर्व और जीवनी में उसी नगर से पूर्व क्यों लिखा है।

जनरल कनिंगहाम साहब ऊपर लिखी हुई दूरियों को जिनके विषय में हमने इतना विवाद किया है उदाहरण की भांति देते हैं और उन्हीं से वह यह भी समझते हैं कि युयनच्वाङ्ग का योजन स्थानी कोश की लंबाई के अनुसार घटता बढ़ता रहा है और उन्होंने ३ योजन वाला विषय बिल्कुलही उड़ा दिया है।

देश और राजधानी ये दोनों भिन्न भिन्न शब्द हैं इसके सिद्ध करने के लिये उदाहरण की भांति श्रावस्ती से कपिलवस्तु तक की दूरी आगे लिखी जावेगी।

जनरल कनिंगहाम ने जो युअनच्वाङ्ग का योजन बतलाया है उसको हमने दो प्रकार से दिखला दिया कि विश्वास करने योग्य नहीं है। अब जो हमने कहा है कि उसका योजन ५·२८८ मील के बराबर है इसको पुष्ट करने के लिये हमको प्रमाणों का देना अति ही आवश्यक है।

मैं यह साफ़ साफ़ कहता हूं कि इसको करने में हमको कुछ कठिनता पड़ेगी क्योंकि ऐसे बहुत कम अचल स्थान हैं जिनकी दूरी हम युअनच्वाङ्ग के अनुसार निकाल सकते हैं। केवल थोड़ेही से ऐसे स्थान हैं जिनकी दूरी ज्ञात है। परन्तु उनका ठीक ठीक स्थान इतना संदिग्ध है कि हम अपने तात्पर्य को सिद्ध करने के लिये उनको नहीं लिख सकते।

युअनच्वाङ्ग का योजन ५·२८८ अंग्रेज़ी मीलों का था इसको सिद्ध करने के निमित्त हमको नीचे लिखी हुई बात लिखनी पड़ती है।

(१) एक बहुत पुष्ट प्रमाण वह है जो कि मैं विचार करता हूं एक हिन्दुस्तानी समाचार पत्र में दिया हुआ है जिसमें कर्नल डीन साहब ने उदयान देश में जो कुछ देखा था वह सब लिखा है और जिसकी एक सूचना प्रोफ़ेसर बुहलर साहब की लिखी हुई वीना की इम्पीरियल अकेडमी में भेजी गई थी। जैसा कि उस समाचार पत्र में लिखा है ठीक वैसाही हम नीचे लिख देते हैं "चीन का यात्री कहता है कि उसने स्वात नदी के उत्तर लगभग ३० ली की दूरी पर और नाग अपलाल झील के दक्षिण पश्चिम ओर एक बड़ी चट्टान पर बुद्ध के अद्भुद पद के चिन्ह को देखा। वह पत्थर जिस पर बुद्ध के पद के चिन्ह हैं उस मूलमई देवी के टूटे टीले से कुछ गज की दूरी पर है जो तिरह के ऊपर एक पहाड़ी पर है। स्वात नदी जो गांव के दक्षिण ओर बहुत मोड़ के साथ बहती है लगभग ४ मील की दूरी पर होगी।"

ऊपर के वर्णन से ज्ञात होता है कि युअनच्वाङ्ग का योजन ५·३ मील के बराबर था जो कि हमारी संख्या ५·२८८ के लगभग है। हमको यह ठीक ठीक नहीं मालूम है कि पद चिन्ह से स्वात नदी तक की दूरी ठीक ठीक नापी गई थी क्योंकि उसको कर्नल

ष्टीन ने खोज की है। मगध देश के मुख्य मुख्य प्राचीन नगरों के स्थानों के विषय में डाक्टर एम॰ ए॰ स्टीन साहब ने हाल में लिखा है। नीचे जो कुछ हम लिखते हैं वह सब उन्हीं के लेख से लिया गया है और प्रायः जिन शब्दों में डाक्टर साहब ने लिखा है उन्ही शब्दों में हमने लिख दिया है।

(२) जेष्टीवन (जोकि उनके अनुसार उस पहाड़ी के पश्चिम ओर जो हंडिया पहाड़ की अन्तिम शाखा है जेठियन ग्राम से पौन मील पूर्व दिशा में एक स्थली है) से दक्षिण पूर्व की ओर पौन मील की दूरी पर बड़ी पहाड़ी में एक घाटी है जिसका नाम सफी घाट है। जेष्ठीवन से यदि दक्षिण पूर्व की ओर चलें तो सफोघाट के ठीक पश्चिम निकली हुई एक चट्टान दिखाई पड़ेगी जिसपर एक मन्दिर है जिसका नाम सहूद्र स्थान है। इस मन्दिर की स्थिति ठीक उसी स्थान पर है जहां पर वह स्तूप वा खंभा था जो कि यष्टी बन से ६ या ७ ली (लगभग सवा मील) की दूरी पर दक्षिण पूर्व की ओर था।

यदि एक योजन ५·२८८ मील के बराबर मानें तो ६ ली बराबर होगा ·७९३२ मील के और ७ ली ·९२५४ मील के बराबर होगा। यह लगभग पौन मील के है न कि सवा मील के जैसा कि डाक्टर स्टीन ६ या ७ ली को बतलाते हैं। वे कहते हैं कि सहूद्र स्थान उसी खंभ का स्थान है। इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।

(३) युअनच्वांग फिर कहता है कि सहूद्र स्थान स्तूप से उत्तर की ओर ३ या ४ ली की दूरी पर एक निर्जन पहाड़ी है। यहां पर पहिले एकान्त में व्यास ऋषि रहते थे। इस पहाड़ी को डाक्टर स्टीन उसी स्थान पर बतलाते हैं जहां पर भलुआही अब है। उसके दक्षिण की तरफ़वाली पहाड़ी दरारों को जिनमें अनुमान किया जाता है कि ऋषि रहते थे पनशब्द कहते हैं। सफ़ीघाट से उत्तर को तरफ़ आध मील की दूरी पर भलुआही पहाड़ी है जो हुएन तीसियांग के अनुसार उस पहाड़ से जिसके एक ओर सहूद्र स्थान पर वह स्तूप वा खंभ खड़ा है ३ या ४ ली की दूरी पर है।

यदि एक योजन को ५·२८८ मील के बराबर मानें तो ३ ली

·३९९९ मील के और ४ ली ·५२८८ मील के बराबर हैं। इस प्रकार खंभ और व्यास की गुहा के निश्चित स्थान में अब कोई संदेह नहीं है।

(४) निर्जन पहाड़ी से उत्तर पूर्व ओर ४ या ५ ली की दूरी पर जहां ऋषि व्यास रहते थे युअनचवांग कहता है कि एक दूसरी छोटी निराली पहाड़ी है। इसमें एक पत्थर की कोठरी इतनी बड़ी है कि उसमें एक सहस्र मनुष्य बैठ सकते हैं।

डाक्टर स्टीन इस गुफा को राजपिंड की गुफा बतलाते हैं जो कि चन्दु पहाड़ी से उत्तर दिशा में है। यह चन्दु पहाड़ी हंडिया पहाड़ में कोरी ग्राम से १½ मील दक्षिण पूर्व में है, और चन्दु पहाड़ी निर्जन पहाड़ी से लगभग १ मील उत्तर पूर्व है जो कि हंडिया पहाड़ का एक छोर है और ठीक सर्फोघाट के सामने है।

यदि हम १ योजन ५·२८८ मील के बराबर मानते हैं तो ४ ली बराबर होगा·५२८८ मील के और ५ ली ·६६१ मील के बराबर होगा। व्यास की निर्जन पहाड़ी से राजपिंड की गुफा लगभग एक मील की दूरी पर है, इस लिये ठीक दूरी से यह ४ या ५ ली कुछ थोड़ी सी कम है जैसा कि डाक्टर स्टीन ने लिखा है। क्या यह संभव है कि जंगली मार्ग जो कि हुएन तीसियांग ने लिखा है सहूद्र स्थान के स्तूप से गुफा तक की दूरी को कुछ घटा देता है।

(५) डाक्टर स्टीन साहब सोबनाथ पहाड़ी को यात्रियों का कुक्कुटपद गिरि बताते हैं। इसका वर्णन उन्होंने भली भांति किया है। हुएन तीसियांग पहाड़ी तक की दूरी को माही नदी के पूर्व से एक बड़े बन में होकर १०० ली के लगभग बतलाता है। डाक्टर स्टीन साहब कहते हैं कि यदि हम नक्शे नापें तो सोबनाथ पहाड़ी से बुधगया के ठीक सामने मोहन नदी के तट तक की दूरी १४ मील है। इस दूरी में यदि एक चौथाई और जोड़ा जाय जो मामूली सड़कों पर एक गांव से दूसरे गांव तक के माप को पूरा करने के लिये आवश्यक है और १ ली को ⅕ मील के लगभग मानें तो चीनी यात्री का १०० ली उतना ही होगा जितना कि हम आशा करते हैं।

यदि एक योजन ५·२८८ मील के बराबर है तो १०० ली

१३·३२ मील के बराबर होगा और नकशे का माप १४ मील के लगभग है।

इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि हमें दूरी थोड़ी अधिक माननी चाहिए क्योंकि यात्री ने "या इस के लगभग" इन शब्दों का प्रयोग किया है।

आरकेलाजिकल सर्वे रिपोर्टस में जो नकशा दिया है उसके देखने से ज्ञात होता है कि माहेर की पहाड़ियों में एक बहुत तंग मार्ग है जिसमें पूर्व जाकर फिर थोड़ासा उत्तर की ओर एक अच्छा मार्ग बन सकता है। इस मार्ग से माही नदी तक नकशे की दूरी के अनुसार १३ ½ मील के लगभग होगा।

(६) जनरल कनिंगहाम ने जो नवीन नगर राजगृह को नापा है सो इस प्रकार है—नगर की भीतरी दीवारों की माप १३००० फुट है और खाइयों के बाहर की माप १४२६० फुट है, इन दोनों का मध्यमान १३६३० फुट है। युअन च्वांग कहता है कि भीतरी दीवार का घेरा २० ली था। यदि हम ५·२८८ मील का योजन मानें तो यात्री का माप १३९६० फुट के बराबर होगा और यदि हम योजन को ६·७५ मील के बराबर मानें तो दीवारों का घेरा १७८२० फुट होगा और यदि ८ मील का योजन मानें तो घेरा २११२० फुट का होगा।

(७) जहां तक हमको मालूम हुआ है भारतवर्ष भर में केवल बहराइच ही ऐसा ज़िला है जहां पर युअनच्वांग के माप के अनुसार का कोश अर्थात् ·६६१ मील का, अब भी प्रचलित है। सन् १८७३ ई० में जो इस ज़िले की सेटिलमेंट रिपोर्ट लिखी गई है उसमें भिन्न भिन्न प्रकार के प्रचलित माप लिखे हुए हैं और उसमें यह भी लिखा है कि पहाड़ियों के नीचे (वह देश जो श्रावस्ती और कपिलवस्तु के बीच में है) दूसरे प्रकार का कोश प्रचलित था, जो कि एक मील के दो तिहाई से अधिक नहीं था। यदि हम योजन बनाने के लिये ⅔ को ८ से गुणें तो यह ज्ञात होगा कि एक योजन ५·३ मील के बराबर है।

अब हम फाहियान के माप का पता लगाना प्रारंभ करते हैं।

अंग्रेजी माप	अंगुल	हथेली	फुट	क्यूबिट	चंग	शिन	कदम	टचङ्ग चन	ली या मील	[illegible]
इंच ८७२५२	१									
३·४६००८	४	१								
८·७२५२०	१०		१							
२०·६४०४८	२४	६		१						
३४ ६००८०	४०	१०			१					
५२·३५१२०	६०	१५				१				
६६ ८०१६०	८०	२०					१			
८७ ३५२०	१००	२५						१		
मील ·१३२२	९६००	२४००	९६०	४००	२४०	१६०	१२०	९६	३/४	
·१७६२६	१२८००	३२००	१२८०	५३३⅓	३२०	२१३⅓	१६०	१२८	१	
७ ०५०६	५१२०००	१२८०००	५१२००	२१३३३⅓	१२८००	८५३३⅓	६४००	५१२०	४०	१

इस टेवल में फाहिस्रान का चीनी माप, युअनच्वांग का योजन और पुराना योजन दिया हुआ है। आगे चल कर हमको ज्ञात होगा कि प्राचीन योजन जो दिया हुआ है यही फाहिस्रान का योजन है।

प्राचीन योजन ५१२००० अंगुल का होता है और उसकी एक ली १२८०० अगुलों के बराबर है। सामान्य प्रचलित योजन की एक ली अथवा युअनच्वांग के योजन की एक ली इस ली का ¾ है या ९६०० अंगुलों के बराबर है।

वेल्स विलियम्स साहब ने अपने चीनी भाषा के कोश में लिखा है कि चीन में भिन्न भिन्न वंशों के समय में फुट ८, ९ या १० चू या अंगुल (अंगुल) के बराबर था, आजकल १६ अंगुलों के बराबर है।

युअनच्वांग के एक फुट की और फाहिस्रान के एक क्यूबिट की लम्बाई अशोक के उस खंभ के वर्णन से जो कपिथ राजधानी के निकट स्वर्ग की सीढ़ी की समीप है निकल सकती है।

फ़ाहियान के द्वारा हमको यह ज्ञात होता है कि संकाश्य देश में पवित्र सीढ़ी के ऊपर अशोक ने एक विहार बनवाया था और इसी विहार के पीछे महाराज अशोक ही ने ३० क्यूबिट ऊंचा एक पत्थर का खंभ भी बनवाया था।

युअनच्वांग का वर्णन इससे कुछ भिन्न है। फ़ाहियान के पश्चात और युअनच्वांग के भारतवर्ष में आने के पूर्व यह सीढ़ी और विहार की मरम्मत सामीपवर्ती राजाओं ने कराई परन्तु अशोक का खंभ वैसेही खड़ा था और उसको यात्री ७० फुट ऊंचा बतलाता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि युअनच्वांग जिसको कपित्थ देश कहता है उसीको फ़ाहियान संकाश्य देश कहता है। युअनच्वाङ्ग और फ़ाहियान दोनों का खंभ एक ही है।

यात्रियों की ऊपर लिखी हुई वार्ता से यह ज्ञात होता है कि फ़ाहियान का ३० क्यूबिट युअनच्वाङ्ग के ७० फुट के लगभग है।

हमको ज्ञात हो चुका है कि युअनच्वाङ्ग का एक क्यूबिट २०·९४०४८ इंचों के बराबर है। यह विश्वास करने में कि फ़ाहियान के क्यूबिट की लम्बाई ठीक ठीक या लगभग दूसरे यात्री के क्यूबिट की लम्बाई के है हमें बहुत कम संकोच है क्योंकि १ क्यूबिट २४ अंगुलों के बराबर है। फाहियान का ३० क्यूबिट जैसा कि वह खंभे की ऊंचाई बतलाता है ७२० अंगुल के बराबर होगा। युअनच्वाङ्ग के अनुसार वह ऊंचाई ७० फुट है और प्रत्येक फुट बराबर है १० अंगुल के। इस प्रकार खंभे की ऊंचाई लग भग ७०० अंगुल के है। इन दोनों को मिलान करने से यह सिद्ध होता है कि युअनच्वाङ्ग का फुटमाप १० अंगुल था जैसा चीनी पुस्तकों में लिखा है और फाहियान का क्यूबिट २४ अंगुल का था जो कि युअनच्वाङ्ग के अंगुल के बराबर है।

फाहियान के अनुसार वह खंभ ६२८·२१४४ इंच ऊंचा है परन्तु युअनच्वाङ्ग के अनुसार ५९०·७६४ ही इंच है।

बुध का दंड (स्टाफ) एक चंग और $\frac{६}{१०}$ या $\frac{७}{१०}$ या १६ वा १७ फुट लम्बा था।

युअनच्वाङ्ग के माप के वर्णन में यह कहा गया है कि १ चंग

और १७ वीं दोनों बराबर हैं। इसलिये ४०+२४ या ४०+२८ अंगुल अर्थात् ६४ या ६८ अंगुल एक अंग और $\frac{६}{१०}$ या $\frac{८}{१०}$ के बराबर है। यदि प्रत्येक फुट को ४ अंगुल से गुणा किया जाय तो वही १६ या १७ फुट होगा। यदि फुट को ४ अंगुल के बराबर मानते हैं तो बुध का दंड ५५·८४१२८ या ५९·३३१३६ अंग्रेज़ी इंचों के बराबर होगा।

वर्तमान समय में भारतवर्ष में साधुओं का सँड़सा (चिमटा) ३४ इंच के लगभग लम्बा होता है और कुछ साधु कोसियर या कुबड़ी लेते हैं जिसकी लम्बाई लगभग ५४ इंच के होती है।

सँड़सा एक लोहे का दंड होता है जो थोड़ी दूर पर चिरा होता है और नीचे की तरफ इस तरह बना होता है कि जिससे जलते हुए कोयले के अंगारे उठाये जा सकें। चिरे हुए दोनों भाग आग की तरफ़ दबाने से जुट जाते हैं। सँड़से के ऊपर ३ या ४ इंच के व्यास का एक कड़ा लगा होता है जो चिमटे के छेद में जिसका व्यास कड़े की मोटाई से अधिक होता है पहिनाया रहता है। इस प्रकार वह कड़ा चिमटे के छेद में सहज से घूम सकता है। यह कड़ा ५ या ६ दो दो इंच व्यासवाली कड़ियों में होकर गुजरता है। साधु लोग सँड़से को बीच में पकड़ते हैं और जब वे जिथातों में घूमते हैं जहां पर यह संभव है कि जंगली पशु उन पर झपटें तो वे इन कड़ियों को खड़ खड़ाते हैं अथवा इसके एक छोर को पृथ्वी पर पटक कर शब्द पैदा करते हैं।

बुध का खखरम कदाचित चिमटे ही के ढंग का था, इसको हिलाने से भी शब्द होता था।

कोसियर (कुबड़ी) $\frac{१}{२}$ इंच मोटे लोहे की बनी होती है और नीचे की ओर कुछ उभड़ी हुई होती है। मुड़ी हुई छोर की ओर एक या एक से अधिक कड़िया सँड़से की नाई होती हैं। जहां पर साधु ठहरते हैं वहां पर वह अपनी कोसियर (कुबड़ी) अपने सामने थोड़ी दूर पर पृथ्वी में गाड़ देते हैं।

बुध का दंड उतनाही लम्बा था जितनी लम्बी कोसियर या कुबड़ी भारतवर्ष में २० शताब्दी में होती है। वाटर्सिंग भी इसकी पुष्टि करता है जहां पर वह अपनी आंख की देखी हुई बात लिखता

है कि धातु का दंड संस्कृत में खक्खर कहाता है जिसमें से (जब दंड को लेकर कोई चलता है) शब्द निकलता है। छड़ी लकड़ी की होती है चाहे चिकनी हो चाहे खुड़खुड़ी और ऊंचाई में आदमी की भौंह तक होती है।

मेरी समझ में इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि फाहियान ने जो बुद्ध के पवित्र दंड के माप में चंग शब्द का प्रयोग किया है वह चंग १० ची के बराबर है और प्रत्येक ची ४ अंगुल के बराबर है। वह माप जो १६ या १७ फुट की दी हुई है भूल है। उसको १६ या १७ ची या हथेली लिखना चाहिए जिसकी जगह पर १६ या १७ ची या फुट लिख गया है। फाहियान का फुट केवल ४ अंगुल का है यह उस पुरानी चीनी माप के बिलकुल प्रतिकूल है जो हम जानते हैं और जिसके अनुसार एक फुट ८, ९ या १० अंगुलों के बराबर था।

यह चंग जिसके विषय में हमने अभी लिखा है फाहियान के चंग से अवश्य भिन्न समझा जाना चाहिए। वह कहता है कि कनिष्क स्तूप जो पेशावर में है ४० चंग ऊंचा है और युवनच्वांग कहता है कि वही स्तूप ४०० फुट ऊंचा है जैसा कि अब हमको मालूम है कि ह्यूनश्यांग का फुट १० अंगुल के बराबर है। इसके अनुसार उस स्तूप की ऊंचाई ४००० अंगुल होगी। इसका हिसाब अब यह हुआ कि ४० चंग ४००० अंगुल के बराबर है। इसलिये १ चंग १०० अंगुल के बराबर है। यह चंग ठीक २½ गुणा बड़ा है उस चंग से जो १० ची का है। यह हिसाब ठीक है क्योंकि एक लेखक ने लिखा है कि चंग १०० अंगुल का होता है। यह ज्ञात होता है कि यह चंग सर्वदा १०० अंगुल का रहा।

युवनच्वांग का फुट कितने के बराबर है यह हिसाब बड़ा मनोहर है जैसा कि हम सिद्ध कर चुके हैं कि उसका एक फुट १० अंगुल के बराबर है।

हम यह देख चुके हैं कि पेशावर में जो कनिष्क का स्तूप है वह फ़ाहियान के ४० चंग या ४०० फुट के बराबर है और युवनच्वांग के ४००० अंगुल या २९०.८४ अंग्रेज़ी फुट के बराबर है।

फ़ाहियान ने यह भी लिखा है कि भारतवर्ष भर में उसके समय में उससे बड़ा कोई स्तूप नहीं था। युवनच्वाङ्ग के अनुसार इसकी नींवें का घेरा (वृत्त) १½ ली या ·१९८३ अंग्रेज़ी मील अथवा ३५० गज़ के लगभग था जब कि एक योजन ५·२८८ मील के बराबर माना जाय।

वह विहार जो कि फ़ाहियान के अनुसार श्रावस्ती से दक्षिण जेतवन के पूर्व फाटक से ७० कदम उत्तर की ओर है और जहां पर बुध ने धर्म विमुख लोगों से शास्त्रार्थ किया था, ६ चंग (७० फुट) से कुछ अधिक ऊंचा है। युवनच्वाङ्ग इसी विहार की ऊंचाई लगभग ६० फुट के बतलाता है।

यहां पर भी चंग १०० अंगुल का और फुट १० अंगुल का है।

फ़ाहियान का फुट १० अंगुल के बराबर मालूम होता है और ठीक उतनाही बड़ा है जितना कि दूसरे यात्री का है।

यह जो ऊपर लिखा गया है उस वर्णन से विदित होता है जो अशोक के उस स्तंभ का किया गया है जो कि फ़ाहियान के माप के अनुसार प्राचीन नगर पाटलीपुत्र से तीन ली दक्षिण तरफ़ है। हम फ़ाहियान (१,२) और युवनच्वाङ्ग के ३ वर्णन नीचे लिखते हैं। (१) गुंबज के दक्षिण ओर एक पत्थर का स्तंभ है जिसका घेरा डेढ़ चंग और जिसकी ऊंचाई ३ चंग है और उस स्तंभ के ऊपर यह लिखा हुआ है। राजा अशोक ने संपूर्ण जम्बूद्वीप को ब्राह्मणों को दे दिया और फिर उसने उनको धन देकर ले लिया। ऐसाही उसने तीन बेर किया। (२) मंदिर के दक्षिण ओर एक पत्थर का खंभा है जिसका वृत्त (घेरा) १४ या १५ फुट है और ऊंचाई ३० फुट के करीब है। (३) विहार के बगल में जिसमें बुध के चिन्ह हैं और उसके समीपही पत्थर का एक बड़ा खंभ है जो कि ३० फुट ऊंचा है और जिस पर कुछ लिखा हुआ है जो कुछ कुछ मिट गया है। (उसमें भी वही लिखा है जो कि हम (१) में कह आए हैं)।

यहां पर युवनच्वांग के वर्णन में जो ३० फुट के लगभग ऊंचा लिखा है वह फ़ाहियान के अनुसार ३० फुट या ३ चंग हुआ—क्योंकि युवनच्वांग का एक फुट १० अंगुल के बराबर है और ३० फुट में ३०० अंगुल हुए। हमने ऊपर लिखा है कि ३ चंग में ३०० अंगुल

होते हैं क्योंकि एक चंग १०० अंगुल का होता है। नम्बर २ के प्यारा में जो ३० फुट लिखा हुआ है यह ३ चंग का अनुवाद नहीं है परन्तु ठीक वही शब्द है जो कि उस पुस्तक में लिखा है, जिससे यह लिया गया है। इससे साफ़ मालूम होता है कि फ़ाहियान का एक फुट १० अंगुल के बराबर है। उस खंभ की ऊंचाई २१·८१३ अंग्रेज़ी फुट थी। छिन या फैदम कितने के बराबर है इस विषय में हम को बहुत कम कहना है। जहां तक हम को मालूम है यात्रियों ने अपनी पुस्तकों में इस माप के विषय में कुछ नहीं कहा है।

ऐसा मालूम होता है कि चीन में एक फैदम ६ फुट के बराबर सर्वदा रहा है। वर्तमान समय में एक फैदम ९६ अंगुलों का होता है क्योंकि एक फुट १६ अंगुल का होता है परन्तु प्राचीन काल में १ फुट ८, ९, या १० अंगुल का होता था। इस हिसाब से भिन्न भिन्न समयों में फैदम ४८, ५४, और ६० अंगुल का अवश्य होता होगा।

युयनच्वांग और फ़ाहियान का फैदम ६० अंगुल का था क्योंकि इन यात्रियों का फुट १० अंगुल या ५२·३५१२ अंग्रेज़ी इञ्च के बराबर था। इन सब बातों से यह परिणाम निकला कि दूरी नापने में फ़ाहियान ने प्राचीन योजन का प्रयोग किया है। इसका सिद्ध करना सहज नहीं है परन्तु इसके सिद्ध करने की मैं कोशिश करूंगा।

फ़ाहियान का योजन कितना बड़ा था इसका पता लगाने के लिये यात्रियों ने जो दूरी श्रावस्ती नगर से कपिलवस्तु नगर तक लिखी है उसकी जांच करूंगा।

युयनच्वांग की "जीवनी" और "यात्रा" में उस नगर से जो श्रावस्ती के उत्तर-पश्चिम या पश्चिम है और जिसमें काश्यप बुध पैदा हुआ था कपिलवस्तु तक की दूरी नापी गई है। फ़ाहियान इस नगर को तोवई कहता है और उसने श्रावस्ती से और न कि तोवई से कपिलवस्तु तक की दूरी नापी है।

यात्रा में यह लिखा है कि श्रावस्ती से तोवई तक की दूरी "१६ ली या इसके लग भग" है। जीवनी में यह लिखा है कि "६० ली या इस के लगभग" है परन्तु फ़ाहियान के अनुसार केवल ५० ली है।

ये सब माप आपस में नहीं मिलते। कदाचित १६ ली भूल से

६० ली की जगह पर लिख गया है परन्तु इधर देखिये तो बुध का योजन १६ ली में विभक्त है और इससे यह संभव है कि युअनच्वांग ने अपने पहिले लेख में लिखा था कि श्रावस्ती नगर से तोवई १६ ली या एक प्राचीन योजन की दूरी पर है और भूल से १६ ली जैसा का तैसा रह गया और प्रचलित माप को ली में नहीं बदला गया।

"१६ ली या इसके लगभग" यदि इससे यही तात्पर्य है तो यह दूरी प्रचलित ५३⅓ ली के बराबर है क्योंकि १६ ली का एक प्राचीन योजन होता था।

इस लिये मैं विश्वास करता हूं कि जीवनी में जो ६० ली की दूरी दी हुई है वही सही है।

यदि यह माना जाय कि पुराने माप में फ़ाहियान ने ५० ली लिखा है तो यह माप प्रचलित ६६·६ ली के बराबर होगी और इसी माप का प्रयोग युअनच्वांग ने किया है।

अब मैं युअनच्वांग की और उसके जीवनी लिखने वालों की लिखी हुई दूरी के विषय में विचार करूंगा।

"जीवनी" से यह ज्ञात होता है कि तोवई से यदि हम दक्षिण पूर्व की तरफ़ लगभग ८०० ली जावें तो हमको कपिल-वस्तु का राज्य मिलेगा।

यहां पर भी उसी प्रकार की भूल है जैसी कि "जीवनी" में थी और जिसको हमने पिलोशन और कपिथ की दूरियों के विषय में बतलाया था अर्थात् नगर की जगह हमको राजधानी पढ़ना चाहिए क्योंकि यात्रा में तोवई से कपिलवस्तु के राज्य तक "५०० ली या इसके लगभग" दूरी है।

इससे मैं यही परिणाम निकालूंगा कि युअनच्वांग के अनुसार प्रचलित माप में तोवई से कपिलवस्तु नगर तक ये दूरियां थीं।

(१) तोवई से श्रावस्ती नगर तक ६० ली या इसके लगभग।

(२) श्रावस्ती नगर से कपिलराज्य की सीमा पर्यंत ५०० ली या इसके लगभग।

(३) कपिल की सीमा से कपिलवस्तु नगर तक २४० ली के लगभग।

यह देखा जायगा कि मैंने जो राज्य (राजधानी) की जगह नगर मान कर तोवई से कपिलवस्तु तक की दूरी ८०० ली लिखी है उसीको मैं सही स्वीकार करता हूं।

मिस्टर विन्सेण्ट स्मिथ और जनरल कनिंगहाम इन दोनों महाशयों ने श्रावस्ती से लेकर कपिलवस्तु तक की दूरी के विषय में जो विवाद किया है उसमें ८०० ली को भुला दिया है।

क्योंकि यह मालूम हो गया है कि श्रावस्ती से तोवई ६० ली की दूरी पर है तो "जीवनी" के अनुसार कपिलवस्तु से श्रावस्ती तक की दूरी ८००-६० ली अर्थात् ७४० ली है। प्रचलित हिसाब के अनुसार यह १८·५ योजन हुआ। इस दूरी को यदि हम प्राचीन माप में बदल देवें तो १८·५ योजन १३·८७५ योजनों के बराबर होगा। यदि हम इसमें से १·८७५ योजन घटा देवें तो हमें १२ योजन बचते हैं जो कि फ़ाहियन के अनुसार श्रावस्ती से नापिक तक की दूरी है और १·८७५ योजन जो बचता है वही पुराने माप के अनुसार नापिक से कपिलवस्तु तक की दूरी है, यदि प्राचीन योजन और फ़ाहिश्रान का योजन दोनों एकही हैं।

यदि मामूली योजन ५·२८८ मील का है तो दोनों राजधानियों के बीच की दूरी जो कि ७४० ली है वह ९७·८२८ अंग्रेज़ी मील के बराबर होगी।

इस लिये यह बिलकुल असंभव है कि सहेतमहेत श्रावस्ती है क्योंकि न तो वह दिशा में और न दूरी में कपिलवस्तु से मिलता है, जिसकी ठीक ठीक स्थिति आज कल के उद्यमी ढूंढने वालों ने मालूम की है।

यद्यपि यह पता लग चुका है कि श्रावस्ती कपिलवस्तु से ९८ मील की दूरी पर है और यह भी मालूम हो चुका है कि वह अचिरावती (रापती) पर बसी है तो श्रावस्ती नगर से कपिलवस्तु दक्षिण पूर्व की तरफ़ हुआ परन्तु सहेतमहेत कपिलवस्तु के खंडहर से ५० वा ६० मील की दूरी पर पश्चिम की ओर जाकर कुछ दक्षिण पर है।

मिस्टर विन्सेण्ट स्मिथ ने श्रावस्ती कहां पर है इस विषय पर

दो लेख लिखे हैं और उनमें यह परिणाम निकाला है कि श्रावस्ती और सहेतमहेत दोनों एकही नहीं है जैसा कि जनरल कनिङ्गहाम और कई एक लेखकों ने विचार किया है ।

इसको छोड़ कर मैं विचार करता हूं कि मिस्टर स्मिथ ने दो जगह भूल की है (१) कपिलवस्तु और श्रावस्ती के बीच में ५०० ली की दूरी मानी है (२) उन्होंने राजधानी और देश इन दोनों शब्दों का अर्थ एकही माना है और यद्यपि मैं इससे भी संतुष्ट नहा हूं कि उन्होंने चीनी यात्रियों के योजन का जो परिमाण इस उदाहरण में या बुध के और स्थानों के पता लगाने में माना है वह सही है परन्तु मेरे अनुसाधानों का भी यही फल निकला है कि मेरा और उनका मार्ग और दिशा श्रावस्ती नगर से कपिलवस्तु नगर तक एकही है और दूरी भी लगभग बराबरही है। उनके अनुसार दूरी ८३½ से ९० मील तक है या हाल में उन्होंने लिखा है कि ९० मील से ले कर १०० मील के भीतर है और मेरे अनुसार ९८ मील है। मैं विचार करता हूं कि उन्होंने श्रावस्ती नगर की स्थिति बहुत ठीक मानी है । यह विश्वास योग्य नहीं है कि राजा प्रसेनजित और उसकी रानी जब श्रावस्ती नगर से भागे तो सहेतमहेत से कपिलवस्तु नगर तक जाने में ७ दिन और ७ रात लगे और दूत को ३ दिन लगे ।

श्रावस्ती नगर को छोड़ कर यदि हम दक्षिण पूर्व की ओर १२ योजन जावें तो फाहिआन कहता है कि हम नापिक या नापिका नगर में पहुंचेंगे जहां पर क्रकुचंद बुध पैदा हुआ था । फ़ाहिआन कहता है कि नापिक से यदि हम उत्तर दिशा को चलें तो १ योजन से कमही पर हमको एक स्थान मिलेगा जहां पर कनकमुनि बुध पैदा हुए थे । वहां से पूर्व को ओर एक योजन से कमही दूरी पर कपिलवस्तु नगर है ।

युअनच्वांग कहता है कि क्रकुचंद्र का नगर कपिलवस्तु से दक्षिण की ओर ५० ली की दूरी पर है । कनकमुनि का नगर क्रकुचंद्र के नगर (नापिक) से उत्तर पूर्व की ओर ३० ली की दूरी पर है । उसके अनुसार कनक मुनि के नगर का मार्ग कपिलवस्तु के दक्षिण पूर्व है ।

इस प्रकार से हम दोनों पथिकों के अनुसार कपिलवस्तु से कनकमुनि के नगर का स्थान भिन्न भिन्न है।

यह विचार में आता है कि यात्रियों की पुस्तकों में कपिलवस्तु से नापिक का मार्ग और कनकमुनि का नगर इन दोनों विषयों में कुछ गड़बड़ है।

यह बहुत असंभव है कि कोई पथिक श्रावस्ती नगर से सीधा कपिलवस्तु की राजधानी तक जावे जैसा कि ज्ञात होता है कि फ़ाहियान ने किया है तो नगर में पहुंचने के पूर्व कपिलवस्तु के दक्षिण पूर्व एक जगह जाना पड़ेगा जहां कि युअनच्वांग के अनुसार कनक मुनि के नगर की स्थिति है। और यह ज्ञात होता है कि इसकी पुष्टि फाहियान ने की है। वह कहता है कि कनक मुनि के स्थान से कपिलवस्तु पूर्व है। और यदि हम नापिक के छोड़ने के उपरान्त दोनों यात्रियों के मार्ग का मिलान करें तो यह और भी अधिक पुष्ट होता है, यदि उन नगरों से जिनके साथ इनका वर्णन हुआ है इनका पृथक विचार करें। फ़ाहियान जो कहता है कि कनकमुनि से कपिलवस्तु पूर्व है वह ठीक वही है जो युअनच्वांग कहता है कि नापिक से कनक मुनि उत्तर-पूर्व है। फाहियान जो कहता है कि नापिक से कनकमुनि उत्तर है वह ठीक वैसेही है जैसे युअनच्वांग कहता है कि कपिल-वस्तु से नापिक दक्षिण है।

युअनच्वांग के अनुसार कपिलवस्तु और नापिक के बीच में कनक मुनि है। एक नगर दूसरे से उत्तर है। इस लिये यह ठीक है कि कनकमुनि नापिक से उत्तर है। इस प्रकार फाहियान के अनुसार कनकमुनि से अन्तिम मार्ग पूर्व की ओर हुआ और युअनच्वांग के अनुसार उत्तर-पूर्व हुआ।

इस विवाद से यह परिणाम निकलता है कि दोनों कनकमुनि और नापिक कपिलवस्तु से पश्चिम दिशा में हैं। और कपिलवस्तु पहुंचने के पूर्व इनमें से होकर जाना पड़ेगा। और फ़ाहियान का मार्ग सही है यदि हम उसके लेख में पूर्व के बदले उत्तर-पूर्व पढ़ें।

युअनच्वांग कहता है कि नापिक से कनकमुनि का नगर ३० ली की दूरी पर है और कपिलवस्तु से नापिक तक ५० ली है।

कदाचित् हम यह समझेंगे कि यह ५० ली कनकमुनि से कपिलवस्तु तक की माप है। उसके यह कहने से ठीक मालूम होता है कि नगर के उत्तर पूर्व ४० ली की दूरी पर एक स्तूप है जहां पर एक हल का मेला लगा था। इस वर्णन के पश्चात कनकमुनि के नगर के विषय में जो कुछ लिखा है उससे यह ज्ञात होता है कि ४० ली की दूरी इसी नगर से ली गई है।

फ़ाहियान कहता है कि कपिलवस्तु से कुछ ही ली की दूरी पर उत्तर-पूर्व की तरफ़ हल का मेला लगा था।

दूसरे प्रमाणों से ५० ली और ३० ली की दूरियों का जोड़ अर्थात कपिलवस्तु से नापिक तक और नापिक से कनकमुनि तक की दूरी ८० ली या दो योजन है और फ़ाहियान के अनुसार भी वह इतनी ही है क्योंकि वह कहता है कि संपूर्ण यात्रा दो योजन से कुछ कम थी। फ़ाहियान के "दो योजन से कम" इस पद का तात्पर्य यह मालूम होता है कि तीनो नगरों की दूरी बराबर थी और वे एक दूसरे से पूरे एक योजन की दूरी पर थे। यह संभव है कि युअनच्वांग का ३० ली वही दूसरी दूरी ५० ली है। इस दशा में प्रचलित माप के अनुसार नापिक से कपिलवस्तु १०० ली की दूरी पर होगा।

हम अब इस दशा में पहुंच गए हैं कि दोनों यात्रियों की दूरी के विषय में जो लिखा गया है उसका थोड़ा थोड़ा करके मिलान कर सकते हैं।

इस लिये हम पहिले श्रावस्ती से तोवई तक की दूरी लेवें जो कि ६० ली है क्योंकि यह उन दोनों दूरियों के मध्य में है जिनको हमने बतलाया है। और यही दूरी "जीवनी" में भी लिखी है।

यदि हम ६० ली को जो तोवई से श्रावस्ती तक की दूरी है ८०० ली में से घटा देवें और ८० ली और घटा देवें जो कि नापिक से कपिलवस्तु तक की दूरी है (यह सब युअनच्वांग की "जीवनी" और यात्रा में दिया हुआ है) तो प्रचलित माप के अनुसार श्रावस्ती से नापिक तक की दूरी ६६० ली होगी परन्तु फ़ाहियान के अनुसार यही १२ योजन या ४८० ली है। यदि यह माना जाय कि फ़ाहियान

का ली एक तीसरा भाग युअनच्वांग के ली से अधिक है तो फ़ाहिआन का १२ योजन या ४८० ली प्रचलित ली के अनुसार ६४० ली होगा और यह युअनच्वांग की दूरी से २० ली कम होता है। युअनच्वांग ने श्रावस्ती से नापिक तक की दूरी में जो २० ली अधिक किया है वह यह समझने से ठीक हो जाता है कि नापिक से कनकमुनि तक की दूरी ठीक २० ली कम समझी गई है।

युअनच्वांग दूरी और दिशा बतलाने में फ़ाहिआन से बहुत चतुर है। इस लिये यह संभव है कि उसका ५० ली और ३० ली का हिसाब ठीक है, यद्यपि कपिलवस्तु से कनकमुनि तक का मार्ग ठीक नहीं है। यह मान करके कि ५० ली और ३० ली ठीक है यह संभव है कि तोवई से कपिलवस्तु तक की दूरी प्रत्येक यात्री की मिल जावे। हम यह पहिले बतला चुके हैं कि फाहिआन कहता है कि नापिक से कपिलवस्तु प्राचीन माप के अनुसार १·८७५ योजन की दूरी पर है। १·८७५ योजन ७५ ली के बराबर है। इसको यदि प्रचलित माप में लावें तो १०० ली के बराबर होता है। यदि युअन च्वांग का ५० ली और ३० ली प्राचीन माप के अनुसार समझा जावे तो यह ८० ली प्रचलित माप के अनुसार १०६·६ ली के बराबर होगा। ६·६ ली का जो अन्तर है यही इन दोनों यात्रियों के लिखी हुई दूरी में श्रावस्ती से तोवई तक में अधिक होता है। (फ़ाहियान का ५० ली प्रचलित ६६·६ ली के बराबर है।) फाहिआन के अनुसार दूरी ५० ली है परन्तु युअनच्वांग के अनुसार ६० ली है।

ये सब दूरियां इस सारणी के देखनेही से मालूम हो जावेंगी।

	फ़ाहिआन			युअनच्वांग	
	प्राचीन योजन	ली (पुरानी माप)	ली नवीन माप	ली पु· मा·	ली न· मा·
तोवई से श्रावस्ती	..	५०	६६·६	..	६०
श्रावस्ती से नापिक	१२	४८०	६४०.०	..	६३३·४
नापिक से कपिलवस्तु	१·८७५	७५	१००.०	३०+५०	१०६·६
जोड़	..	..	८०६·६	..	८००.०

हमने जो दूरियों के विषय में लिखा है उसमें यह शंका हो सकती है कि हमने जो यह माना है कि युअनच्वांग ने कभी प्रचलित प्रणाली को छोड़ दिया है इसको मान लेने के लिये हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है।

मैं विचारता हूं कि कदाचित कोई प्रमाण मिल जावे। उसने और फ़ाहियान दोनों ने लिखा है कि सरकूप कपिलवस्तु से दक्षिण पूर्व की ओर ३० ली की दूरी पर है। यदि फाहियान का योजन युअनच्वांग के योजन से बड़ा है जैसा कि मैं विचारता हूं कि सब मानते हैं और दोनों के योजन ४० ली में विभक्त हैं तो युअनच्वांग यहां पर फाहियान के माप में लिखता है न कि प्रचलित माप में। मैं मानता हूं कि सरकूप तक की ३० ली की दूरी हमारी उस सम्मति को जो हमने सारणी में दी है पुष्ट करती है कि युअनच्वांग की कपिलवस्तु के आस पास की दूरी प्राचीन माप के अनुसार माननी चाहिए अर्थात् ३० ली और ५० ली प्राचीन माप के अनुसार है।

यदि यह ऐसा है तो युअनच्वांग ने नाविक से कपिलवस्तु तक की दूरी दो प्राचीन योजन लिखी है। और फाहियान के अनुसार इन दोनों नगरों की दूरी दो योजन से कुछ कम अर्थात् १.८७८ योजन है। फाहियान के अनुसार इन दोनों नगरों में युअनच्वांग ने प्रचलित माप से ६.६ ली अधिक लिखा है। यही यदि श्रावस्ती से नाविक तक की दूरी में जो कि ६३३.४ ली है जोड़ दिया जावे तो प्रत्येक यात्री की दूरी इतनी यात्रा में ठीक ठीक बराबर होवेगी।

फ़ाहियान और युअनच्वांग ने जो तोवई से कपिलवस्तु नगर तक की दूरी लिखी है उसके देखने से यह स्पष्ट विदित होता है कि

(१) प्रचलित माप के अनुसार श्रावस्ती नगर से तोवई ६० ली की दूरी पर थी।

(२) प्रचलित माप के अनुसार श्रावस्ती नगर से नाविक ६४० ली की दूरी पर था।

(३) युअनच्वांग की ५० ली और ३० ली की दोनों संख्याएं जो कि दो योजन के बराबर है ठीक हैं। ये यदि ठीक हैं तो प्राचीन माप के अनुसार हैं और प्रचलित माप के अनुसार उनमें से हर एक ६६.६

और ४० ली के बराबर है। इन दोनों के जोड़ में अर्थात् ८० ली या प्रचलित माप के अनुसार १०६·६ ली में अवश्य प्रचलित माप के अनुसार ६·६ ली अधिक है, यदि फ़ाहियान के लेख पर ध्यान दिया जावे जो कि कहता है कि यह दूरी दो योजन से कम है।

(४) यह बहुत ही संभव है कि प्रचलित माप के अनुसार नाविक से कनकमुनि ५० ली पर था और कनकमुनि से कपिलवस्तु भी ५० ली पर थी और प्रचलित माप के अनुसार तोवई से कपिलवस्तु तक की दूरी में जो ६·६ ली का अंतर है। वह यों है कि फ़ाहियान ने उतनीही ली तोवई और श्रावस्ती नगर की दूरी में अधिक कर दी है।

मैं विश्वास करता हूं कि फ़ाहियान के अनुसार ५० ली और युअनच्वांग के अनुसार ६० ली जो श्रावस्ती से तोवई तक की दूरी है ये १० के गुणनफल के करीब करीब पूर्णांक है। पता लगाने से कदाचित यह मालूम होगा कि श्रावस्ती से तोवई तक की पूरी दूरी प्रचलित माप के अनुसार ६३ या ६४ ली के लग भग है। इस विचार से युअनच्वांग ने इसी दूरी को "६० ली या इसके लगभग" लिखा है। ६३ या ६४ ली का तीन चतुर्थांश पुराने माप के अनुसार ४७·२५ या ४८ ली होगा जिसको फ़ाहियान ने ५० ली लिखा है।

इन दूरियों का इस प्रकार मिलान करने पर जैसा हमने किया है हम विश्वास करते हैं कि हमने सिद्ध कर दिया कि युअनच्वांग का योजन $\frac{3}{4}$ उस योजन का था जिसको फ़ाहियान ने वर्ता है अथवा फ़ाहियन ने उस प्राचीन माप को वर्ता है जिसका वर्णन (या जिसके विषय में) युअनच्वांग ने कहा है।

प्रत्येक यात्री का योजन ४० ली में विभक्त हो सकता था और प्रचलित माप का योजन पुराने योजन का $\frac{3}{4}$ था। इसलिये यह सिद्ध होता है कि प्रचलित ली पुराने ली का $\frac{3}{4}$ है।

यदि युअनच्वांग ने कुछ जगहों की दूरी प्राचीन माप के अनुसार दी है तो उसका निर्णय बहुत कठिन होगा। यह हो सकता है कि जब वह भारतवर्ष में घूम रहा था तब कपिलवस्तु के इधर उधर की कुछ जगहों या उन कुछ जगहों के विषय में जो बुध के इतिहास में प्रख्यात हैं केवल कथामात्र ही रह गई हो और

दीवार आदि सब नष्ट हो गई हो। इसलिये उन मार्ग और स्थानों की स्थिति जो उसने लिखी है उन इतिहासों से जो उसे प्राप्य थे अथवा स्थानीय खोज से उसने ली हो।

हम को कोई उदाहरण ऐसा नहीं उपस्थित है जिससे यह सिद्ध हो जावे कि फाहियान ने अपने वर्णन में प्रचलित माप के योजन का प्रयोग किया है परन्तु यह संभव है कि उसके लेख में ऐसे उदाहरण होवें।

अब केवल यह पता लगाना रह गया कि कदम (पाद) कितने के बराबर है।

नगर (श्रावस्ती) के दक्षिण द्वार से १२०० कदम की दूरी पर पश्चिम ओर वह स्थान है जहां पर सुदत्त ने एक विहार बनवाया था।

नगर (श्रावस्ती) से दक्षिण ओर ५ या ६ ली की दूरी पर जेतवन है। यह वही स्थान है जहां पर अनाथ पिंडद (किकुतो) (दूसरा नाम) सुदत्त प्रसेनजित राजा के प्रधान मंत्री ने बुध के लिये एक विहार बनवाया था।

यह मालूम होता है कि युअनच्वांग ने श्रावस्ती नगर से जेतवन की उत्तरी सीमा तक की दूरी लिखी है परन्तु फाहियान ने सुदत्त के विहार तक की दूरी लिखी है जो कि वह कहता है कि जेतवन के हाते के बीचो बीच में है। इसलिये इन दोनों की माप एक ही जगह तक की नहीं है।

युअनच्वांग की ली ९६०० अंगुल की थी (टेबल देखो) इसलिये प्रचलित माप के अनुसार ५ ली ४८००० अंगुल के बराबर और ६ ली ५७६०० अंगुल के बराबर है। यदि यह विचार कर लिया जावे कि फाहियान और युअनच्वांग की दूरियां एक ही जगहों से नापी गई हैं और यदि हम ४८००० और ५७६०० इन दोनों संख्याओं को १२०० कदमों से भाग देवें तो ४० या ४८ अंगुल एक कदम की लंबाई निकलती है।

यदि हम यह विचार करें कि प्राचीन चीन का फुट ८, ९ या १० अंगुलों का था तो यह संभव मालूम होगा कि किसी समय में फुट और कदम के लंबाई में कोई नियत संबन्ध (प्रपोरशन) था

जैसा कि जब फुट ८ अंगुल का था तब कदम ४८ का था और जब फुट ९ अंगुल का था तब कदम ५४ अंगुल का, जब फुट १० अंगुल का था तब कदम ६० अंगुल का था। इस का तात्पर्य यह है कि उस माप से जो उस समय बर्ती जाती थी एक कदम ६ फुट का था।

जरविस ने प्राचीन चीन के सरल रेखा के माप का एक टेबुल बहुत ठीक प्रकार से लिखा है जिसमें १ फुट १० अंगुल का है और कदम ठीक ६० अंगुल का।

इन प्रमाणों से जो ऊपर दिए हुए हैं यह संभव है कि हम लोग यह परिणाम निकालें लेवें कि दोनों यात्रियों का कदम बराबर था क्योंकि दोनों के फुट १० अंगुल के थे।

यह भी ध्यान रखना चाहिए कि प्रचलित माप के अनुसार एक ली और एक योजन में जितने अंगुल होते हैं उनकी संख्या को यदि हम पृथक पृथक ६० से भाग देवें तो वे पूरे पूरे कट जाते हैं और शेष कुछ भी नहीं रहता परन्तु प्राचीन योजन की अंगुल संख्या को यदि हम ६ से भाग देवें तो वह पूरी पूरी नहीं कटती और कुछ शेष रह जाता है। इससे यह संभव है कि युअनच्वांग का कदम ६० अंगुल का था और फाहिआन का ८० का था और पहिले यात्री के कदम भी ली और योजन की नांई युअनच्वांग के उन्हीं मापों से एक तिहाई बड़े होते थे।

यदि हम कदम को ६० अंगुल का मान लेवें तो फाहिआन का माप नगर के दक्षिण द्वार से जेतवन के बीचों बीच तक प्रचलित माप के अनुसार ठीक ७·५ ली था। यदि युअनच्वांग की औसत संख्या ५·५ ली श्रवस्ती से उद्यान की उत्तर सीमा तक दूरी मान लें तो हम जेतवन का क्षेत्रफल करीब करीब निकाल सकते हैं। प्रचलित माप के अनुसार उसकी लंबान ४ ली है क्योंकि जेतवन विहार बीचों बीच में है।

इसकी चौड़ाई ६० या ७० कदम की दूनी होगी। ७० कदम का दूना ८४०० अंगुल या $\frac{7}{8}$ ली है। एक ली अंग्रेज़ी मील का ·१३२२ होता है (योजन=५·२८८ मील) अर्थात २३२·६७२ गज़ जिसका $\frac{7}{8}$

वां भाग २०३·५८८ गज़ के बराबर है। यही उस वाटिका की चौड़ाई है। ४ ली ५२८८ मील के या ९३०·६४८ अंग्रेजी गज़ों के बराबर है। इस भांति उस का क्षेत्रफल ९३०·६४८ गज़ लंबाई में और २०३·५८८ गज चौड़ाई में निकल आवेगा।

जेतवन की चौड़ाई उस संघाराम की स्थिति से पाई गई है जिसमें यात्रियों ने सुना था कि बुध ने विरुद्ध पाठशाला वालों से विवाद किया था और जहां पर उन लोगों ने बुध की एक बैठी हुई मूर्ति भी देखी थी। जेतवन हाते के पूर्व फाटक से उत्तर की ओर उस सड़क के पश्चिम तरफ जो कि उस आराम की एक सीमा है ७० कदम की दूरी पर संघाराम है। पिछले यात्री के अनुसार यह ६० या ७० कदम जेतवन विहार के पूर्व था, यद्यपि जेतवन विहार उस हाते के ठीक बीच में था इसलिये इस पुष्प वाटिका की चौड़ाई ६० या ७० कदम की दूनी थी।

यदि फाहियान का कदम ८० अंगुल का था तो जेतवन विहार प्रचलित माप के अनुसार १० ली की दूरी पर होगा और इसमें से यदि हम ५·५ ली जो कि नगर से वाटिका की उत्तर सीमा तक की दूरी है घटा देवें तो प्रचलित माप के अनुसार ४·५ ली शेष रहेगा और यह उत्तर दक्षिण माप का आधार है और चौड़ाई मामूली ली का $\frac{2}{6}$ वां भाग होगी।

यह संभव है कि ६० या ७० कदम जो कि उस हाते के पूर्व पश्चिम माप का आधा है प्राचीन माप के अनुसार लिखा होवे।

यह भी लिखा है कि जेतवन की चौड़ाई में १$\frac{1}{6}$ ली है जिसका क्षेत्रफल वर्ग में ५७६०००००००० अंगुल होगा जो कि प्रचलित माप के अनुसार ५$\frac{1}{8}$ ली की लगभग लंबाई को १$\frac{1}{6}$ ली की चौड़ाई से गुणा करने से अथवा ७ ली की लंबाई को $\frac{6}{6}$ ली की चौड़ाई से गुणा करने से निकलेगा।

शाक्यमुनि गौतम बुद्ध ।

[पण्डित रामगरीब चौबे लिखित ।]

अध्याय १ ।

भारत और बौद्ध धर्म्म ।

बौद्ध धर्म्म का इतिहास भिक्षुओं के एक दल से प्रारम्भ होता है जो गङ्गा के तटस्थ देशों में ख्रीष्टीय शताब्दी के ५०० वर्ष पूर्व गौतम बुद्ध की सेवा में एकत्रित हुआ था। उनमें परस्पर एकता और उनके विचारों की सुन्दरता का मूल मन्त्र यह था कि उनके हृदयस्थल में यह बात भली भांति जम गई थी और उसी को वे स्पष्टतया एवम् दृढ़ता से प्रगट भी करते थे कि सांसारिक जीवन दुःखमय है और उससे छुटकारा पाने का मूल उपाय एक यह है कि मनुष्य संसार के सुखों का परित्याग करे।

बुद्ध देव और उनके अनुयायी भारत के बीच में घूम घूम कर ठीक उसी प्रकार घोषणा करने लगे जैसे कि पिछले वर्षों में वह दल जो ईसू सुसमाचार की घोषणा करता था कि "स्वर्गीय साम्राज्य आ गया," गैलिली देश में घूमा कि "ऐ संसार के जन अपने कानों को खोलो, त्राण का मार्ग मिल गया और ऐसा करते हुए वे स्वयम् उदासीन और मृत्यु के भय से भयभीत रहते थे।

संसार के इतिहास पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो देखते हैं कि जिस समय बुद्ध देव का आविर्भाव हुआ वह समय ऐसा था कि उसके पूर्व और उत्तर कोई ऐसी घटना घटित न हुई कि जिसका इतिहासों से कुछ पता लग सके।

प्रकृति की उन्हीं अलौकिक घटनाओं ने जिनके कारण भारत पाश्चिमात्य एवम् उत्तरीय शीतप्रधान देशों से आकाशवेर्ती पार्वतीय दीवारों द्वारा विलग किया गया है, उन लोगों को भी जिन्होंने इस अत्यन्त प्रकृति प्यारी भूमि में पहिले पहल पांव रक्खा अन्य देशों·

के लोगों से अनैक्य भी सिखाया। भारतीय लोगों ने जो एक प्रकार से संसार की सारी सभ्य जातियों में अद्वितीय हैं अपनी उन्नति आप ही आप अपने ही नियमों द्वारा की है और वे पश्चिम की सारी जातियों से, चाहे वे अपने सम्बन्ध की हों या असम्बन्ध की और जिन्होंने आपस में एक दूसरे से सम्बन्ध रखने के कारण उन सारे ऐतिहासिक नाट्यों को किया, जिन्हें कि संयोग ने उनसे कराया, बहुत ही अलग रहे। भारत ने इस कार्य्य में भाग न लिया। भारतीय जातियों में, जिनके मध्य बुद्ध देव ने अपनी शिक्षाओं की घोषणा की, भारत के बाहर और कोई भूमि है इस बात का विचार उतना ही स्वल्प था जितना कि उन पिछड़ों अर्थात् भूमियों के विषय में वे रखते थे जो कि असीम आकाश के बीच अन्य अन्य सूर्य्यों, अन्य अन्य चन्द्रों और अन्य अन्य स्वर्ग और नर्कों से मिल कर एक विलग ही संसार बनाती हैं।

अभी वह दिन आनेवाला ही था, जब कि एक सर्वदमन बाहु भारत और पश्चिमी देशों के बीच की सीमा भङ्ग कर देवे—अर्थात् बड़े सिकन्दर का बाहु। किन्तु भारत और यूनान के बीच मेल होने का समय उस समय से बहुत पीछे का समय है जब कि बौद्ध धर्म्म का जन्म हुआ। बुद्ध देव के स्वर्गारोहण और सिकन्दर (अलक्षेन्द्र) के भारतीय हल्लों के बीच कदाच् १६० वर्ष का अन्तर है। कौन सोच सकता है कि क्या होता यदि कुछ और पहिले भारतीय लोगों का जातीय जीवन विदेशी जीवन से मिल गया होता और तब ऐसी घटनाएं, जैसी कि मैसिडोनिया के वीर लोगों का भारत में आना और यूनानी सभ्यता का यहां पर प्रचार होना, घटित होतीं? भारत के पक्ष में अलक्षेन्द्र का आगमन बहुत देर में हुआ। जब भारत के आकाश में अलक्षेन्द्र का प्रादुर्भाव हुआ तब भारतीय लोग बहुत पहिले से घनिष्ट विलगता के कारण, अन्य जातियों के बीच अकेला रहना सीख गए थे और उनका शासन जीवन की ऐसी प्रणाली और सोचने के स्वभाव से होने लगा था जो भारत के बाहर की सारी जातियों से सम्पूर्णतः भिन्न था। गत काल का कोई सोच न होने से और न वर्तमान काल का ही जिसे कि

वे प्रेम या घृणा में व्यवहार कर सकें और न उन्हें भविष्य की हो कुछ चिन्ता होने से कि जिसके निमित्त मनुष्य आशा कर के कार्य करते हैं, वे बैठे बैठे उदासीन और सगर्व उन बातों को जो सर्वकाल से परे हैं और उस अद्भुत शासन को जो इन सर्वकालीन देशों में प्रचलित है, सोचा करते थे। भारत के अत्यन्त ही प्रचुर शिक्षित समाज कृत किसी वस्तु में भारत के इस अद्भुत स्वभाव का लक्षण इस प्रकार लक्षित नहीं मिलता जैसा कि बौद्ध मत पर होता है।

किन्तु जितनी ही पूर्णरीति से ये बाहरी बन्धन इन दूरवर्ती देशों और संसार के बीच जहां लों कि हम लोग उससे परिचित हैं बिलग हुए हमलोगों को ज्ञात होता है—(जहाँ तक कि वह जातियों के परस्पर आवागमन और मस्तिष्क-सम्बन्धी धन के अदल बदल से सम्बन्ध रखता है) उतना ही और स्पष्टतया हम-लोग अन्य बन्धन को, जो उन वस्तुओं को जो बाह्य रीति से अलग अलग हुई हैं, आभ्यन्तरिक रीति से संगठित करते हैं, अर्थात् उन घटनाओं की ऐतिहासिक समानता· जो भिन्न भिन्न स्थानों में एक ही नियम द्वारा घटित होती हैं, देखने लगते हैं।

सर्वदा जब कभी कोई जाति बहुत काल तक मस्तिष्क जीवन की उन्नति पवित्रता और शान्ति के साथ करने के योग्य होती है तब वह घटना घटित होती है जो प्राय: आत्मिक जीवन के साम्राज्य में ही दर्शित होने के योग्य होती है और जिसे हमलोग सारे सर्वोन्नत मानुषी स्वार्थों की गुरुता के केन्द्र का बाहर से भीतर की ओर घुसुकना कहने का साहस कर सकते हैं। कोई प्राचीनतम् धर्म्म जो मनुष्य जाति को परमेश्वर के साथ आक्रमक एवम् रक्षक मैत्री करके येन केन प्रकारेण बल, समृद्धि, विजय और शत्रु के पराजय की आशा दिलाता था, कभी तो आदर्शनीय अंशों में और कभी बड़े बड़े उत्पातों के कारण एक नवीन प्रकार के विचारों से, जिसका सङ्केतवाक्य कुशल, विजय, राज्य, न रह के शान्ति, सुख, त्राण होगा, स्थान पाता है। तब बलिदान के जीव के रक्त से मनुष्य की पापी आत्मा को जो भय हो रहा हो, शान्ति नहीं मिलती है। तब नए नए मार्ग इस अभिप्राय के सिद्धार्थ

अध्याय २।

पश्चिमीय और पूर्वीय भारत।

वह रङ्गभूमि जहां पर पूर्वापर बौद्ध धर्म की ऐतिहासिक घटनाएं हुईं वह गङ्गा की वादी है जो मुख्य भारतवर्ष है। उस समय जिसका वर्णन हम लोगों को करना है, गङ्गा की वादी ही में सारी आर्य्यजनों की राज्यप्रणालियां और सभ्यता आ गई थीं। इस देश के प्राकृतिक विभाग जो भारत के कुल-सम्बन्धी अल्हों (stock) के विभाग की अवस्थाओं से एवम् प्राचीन भारत की शिक्षा के विस्तार की अवस्थाओं से मिलते हैं, उन अवस्थाओं से भी मिलते हैं जो इस धर्म्म ने अपनी उन्नति के समय प्राप्त कीं।

सब से पूर्व हम लोगों का ध्यान गङ्गा की वादी के उत्तर पूर्वीय अर्द्ध भाग पर पड़ता है अर्थात् उन देशों पर जहां पर कि गङ्गा के निकटस्थ देश सिन्ध के निकटस्थ देशों से मिलते हैं और उन देशों पर भी जिनमें से होकर वे दोनों नदियां, जिन्हें गङ्गा और यमुना कहते हैं बहती हैं। यहीं पर, और बहुत काल तक यहीं पर ब्राह्मणों में जो शिक्षित थे बसते थे और यहीं पर बुद्ध के समय से सैंकड़ों वर्ष पहिले ब्राह्मण दार्शनिक लोगों की मण्डली में, यज्ञशाला में, तपोवन के एकान्त में वे गूढ़ विषय सोचे और कहे गए जिनमें वेद की प्राचीन प्राकृतिक वस्तुओं की पूजा के धर्म्म का आत्मा की शिक्षा में पलटना प्रारम्भ हुआ और अन्त में उसने उन्नति प्राप्त की।

यह शिक्षा उत्तर-पश्चिम में बढ़ी और उसके साथ ही ये विचार गङ्गा के मार्ग को पकड़े पकड़े दक्षिण-पूर्व की ओर उन नसों में से होकर फैलते चले गए जिनमें भारत का जीवनस्वांस अत्यन्त दृढ़ता से चलता था। नए नए लोगों में जाके इस का आकार नया नया होता गया और जब अन्त में बुद्ध देव स्वयम् प्रगट हुए तब दो सब से बड़े साम्राज्य गङ्गा की वादी के दक्षिण-पूर्वीय आधे भाग में अर्थात् कोशलराज्य (अवध) और मगध (बिहार) उनकी शिक्षा और परिश्रम के मुख्य रङ्गस्थल बने। इस प्रकार उन देश-भागों के बीच जिनमें

बुद्ध के बहुत पहिले, बौद्ध मत अपनी उन्नति की राह बना रहा था विस्तृत भूमिभाग पड़े हैं और वे भूमिभाग भी हैं जिनमें बुद्ध ने स्वयम् अपने पहिले अनुगामी एकत्र किए और इस रङ्गस्थल और नाट्यकारों के परिवर्तन ने अनेक प्रकार से नाटक की गति पर बड़ा प्रभाव डाला।

अब इस के उपरान्त हम लोग उन जातियों पर एक बार दृष्टि पात करना चाहते हैं जिनको हम लोग क्रम से कभी तो इस मत के उत्पादक और कभी उन्नति-कारक की नाईं पाते हैं।

भारत की आर्य्य जाति भारत के प्रायद्वीप में, जैसा कि सब लोग जानते हैं, उत्तर-पश्चिम से आई। इन देशों में आर्य्य जाति भारत की सब से प्राचीन स्मारक धर्म्म-सम्बन्धी कविताओं (रामायण और महाभारत) के निर्म्माण के बहुत पहिले आई। भारतीय जनों ने इन्हें इतना पूर्णतया भुला दिया था जितना कि उनके समान ही घटनाओं को यूनानी और इतालियन लोगों ने भुला दिया था। गौर वर्ण आर्य्य आगे बढ़े और उन्होंने अनार्य्य निवासियों के दुर्गों को, जो "काले" "नियम रहित" और "ईश्वर-हीन" थे तोड़ डाला। शत्रुदल हटाए जाते थे, नाश किए जाते थे, वा आधीन कर लिए जाते थे। जब वेद के भजनों का निर्म्माण हुआ तब आर्य्य जातियां कदाच केवल धन और राज्य की खोज में और अकेले अग्रगामी की नाईं वहां तक पश्चिम में जहां पर कि सिन्धु और सम्भवत: पूर्व में वहां तक जहां पर कि गङ्गा समुद्र में अपने अथाह जल को शेष करती हैं पहुंच गई थीं। ये दोनों प्रान्त अकूत धनशाली थे, जिनमें आर्य्य जन अपने पशुवृन्द चराते थे और अपने देवताओं की पूजा, प्रार्थना करते और उन्हें बलिदान चढ़ाते थे।

ऐसा अनुमान होता है कि पहिले आनेवाली और अतएव सब से आगे के पूर्ववाली-(किम्वा आपस में एका किए हुए वा पृथक पृथक यह हम लोगों को ज्ञात नहीं है-) वे जातियां हैं जो आगे चल कर हम लोगों को गङ्गा और यमुना के सङ्गम के पूर्व गङ्गा के दोनों किनारों पर अङ्ग और मगध में, विदेह, काशी और कोशल में बसी हुई मिलती हैं।

देश के भीतर आनेवालों की बड़ी बाढ़ की दूसरी लहर में आर्य्यों के नए नए झुण्ड आए जिनमें बहुत सी जातियां ऐसी थीं जो आपस में बहुत घनिष्ट सम्बन्ध रखती थीं और जिन्होंने अपने भाइयों से मस्तिष्क शक्ति में बढ़ जाने के कारण सब से प्राचीन भारतीय मस्तिष्क-सम्बन्धी बड़े स्मारक का, जो हम लोगों तक पहुंचा है अर्थात् वेदों का प्रादुर्भाव किया। हम लोग इन जातियों को, उस समय जिसका चित्र ऋग्वेद के भजन हम लोगों को देते हैं-दक्षिण के फाटक पर (भारतीय अन्तरीप) सिन्धु के मुहाने पर और पञ्जाब में पाते हैं। पीछे से वे दक्षिण- पूर्व की ओर हटा दी गईं और उन्होंने गङ्गा और यमुना की उपरी धाराओं के किनारे उन राज्यों को स्थापित किया, जो मनु के स्मृति में ब्रह्मर्षिदेश कहलाते हैं और जो पवित्रता और सभ्यता के मानो घर ही हैं। मनुस्मृति में लिखा है कि "जो ब्राह्मण इस देश में उत्पन्न हुआ हो उससे संसार के सारे मनुष्य अपने जीवन का सद्व्यवहार सीखें"। भारत जाति, में कुरु और पाञ्चाल जातियों के नाम वैदिक शिक्षा की इस प्राचीन भूमि के लोगों में जो हम लोगों के नेत्रों के आगे स्पष्ट रीति से उन्नत मस्तिष्क सम्बन्धी सृष्टि में धनवान दीखती हैं अधिकतर प्रगट हैं। और साथ ही अन्य जातियां जो उनसे और पहिले देश में आईं थीं उस समय तक अन्धकार में रहीं जब तक कि उनसे अपने सहयोगी जातियों की शिक्षा से भेट न हुई।

एक वैदिक-ग्रन्थ में जिसका नाम "शत-पथ ब्राह्मण" है एक अत्यन्त ही उपयोगी आख्यायिका है जिस में स्पष्ट रूप से यह दिखाया है कि वेद की शिक्षा और धर्म्म का प्रस्तार किस मार्ग से बढ़ा। अर्थात् उसमें लिखा है कि "प्रज्वलित अग्नि वैश्वानर जो यज्ञ की अग्नि है सरस्वती नदी से पूर्व की ओर जाती है जो वैदिक यज्ञ के प्राचीन पवित्र जन्मस्थान से परे है। उसके मार्ग में नदियां पड़ती हैं किन्तु अग्नि सब नदियों के पार भी जलती है और उसके पीछे पीछे राजा माथव और ब्राह्मण गौतम चलते हैं। इस प्रकार वे सदानीर नामक नदी के तट पर आए, जो उत्तर के हिममय पर्वतों से निकलती है। अग्नि इसके पार नहीं गई। ब्राह्मण इसके पार पहिले

समय में नहीं गए क्योंकि अग्नि वैश्वानर उसके पार नहीं जली थी। किन्तु अब बहुत से ब्राह्मण पूर्व में उसके पार बसते हैं। पूर्व में यह स्थल बड़ा ही बुरा था और यह दलदली भूमि थी, क्योंकि अग्नि वैश्वानर ने इसे निवास-योग्य नहीं बनाया था। किन्तु अब ब्राह्मणों ने इसे बहुत अच्छी भूमि बना दिया, क्योंकि उन्होंने उसे अपने प्रसाद से आनन्द योग्य बना दिया"। भारत में बुरी भूमि संसार के और देशों की नाईं खेतिहरों द्वारा, जो खोदते और हल चलाते हैं अच्छी भूमि नहीं बनाई जाती है, किन्तु यज्ञकारी ब्राह्मणों द्वारा। राजा माथ। सदानीर के पूर्व में ठहरे, जो बुरी भूमि थी, जिसे कि अग्नि ने जाने के योग्य नहीं बनाया था। उसी के सन्तान विदेह के शासन-कर्ता हुए। पूर्वीय जातियों को पश्चिमीय जातियां जिनके बीच कि अग्नि वैश्वानर प्राचीन काल से ही वर्तमान थी, जैसा विलग समझती थीं वह इस आख्यायिका से स्पष्ट है। बौद्ध धर्म्म के प्रस्तार के प्रारम्भ में जो कोई अन्वेषण करने लगेगा उसको स्मरण रखना होगा कि सब से प्राचीन बौद्ध समाज का घर उस भूमि भाग में वा उस भूमि भाग की सीमा के निकट था, जिसमें अग्नि वैश्वानर अपने ज्वलन्त मार्ग में पूर्व जाती बेर नहीं गई थी।

हम लोगों की शक्ति के बाहर यह बात है कि हम लोग किसी एक क्रम से-तिथि चाहे वर्ष के हिसाब से वा शताब्दियों के हिसाब से-इस विजयी युद्ध-यात्रा को दे सकें जिसमें आर्य्य और वेद की शिक्षा ने गङ्गा की वादी भर में हल्ला मचा दिया। किन्तु हम लोग इससे अधिक उपयोगी बात कर सकते हैं। वह यह है कि हम लोग वैदिक साहित्य की तहों से-जो एक दूसरे के ऊपर पड़ी हैं इस बात का कुछ ध्यान बांध सकते हैं कि किस प्रकार एक नए निवास-स्थान अर्थात् भारतीय प्रकृति और भारतीय जलवायु के प्रभाव से आर्य्य लोगों के जीवन में भेद पड़ गया-अर्थात् उन लोगों में जो वैदिक लोगों में सब से अग्रगण्य थे अर्थात् उत्तर-पश्चिम के आर्य्य लोग-और इस बात का भी कि कैसे सर्व साधारण के मस्तिष्क ने इस उदासीनता और रोग का छाप ग्रहण कर लिया जो भाग्य के

अनेक परिवर्तन होने पर भी बना रहा और उस समय तक बना रहेगा जब तक कि हिन्दुस्तान में कोई जाति रहेगी।

अत्यन्त ही ग्रीष्मप्रधान जलार्द्र गंगा की वादी में जिसमें प्रकृति ने अपनी सारी उदारता दिखाई है वे लोग जो अपने यौवन में मद-मस्त थे वहां उत्तर से आने पर युवा और बलवान न रह सके। ग्रीष्म-प्रधान देशों के उद्भिद की नाईं मनुष्य और जाति दोनों वहां पर शीघ्र ही परिपक्वता को पहुंच जाते हैं और फिर उनको शरीर से और मस्तिष्क से नाश हो जाते देर नहीं लगती। समुद्र की बल-कारक वायु और परिष्कृत जातीय बल भारतीय जनों के जीवन में फलीभूत नहीं होता। और लोगों से अधिक भारतीय जन, यौव-नावस्था ही में उससे अलग हो जाते हैं जो मुख्यतः एक जाति को युवा और बलवान रखता है अर्थात् जन्मभूमि और उसके राज नियम और गृहों की रक्षा के लिये युद्ध और श्रम से, भारत में स्वत-न्त्रता का विचार अपने सारे चैतन्यकारी एवम् अचैतन्यकारी अनु-यायी शक्तियों के साथ अज्ञात और अज्ञेय रहा है। मनुष्य की स्वतन्त्र बुद्धि ब्रह्मा की प्रणाली का अर्थात् जाति के प्राकृतिक नियम का जिनने कि प्रजावर्ग को राजा के आधीन और राजा को पुरो-हित की आधीनी में दे दिया है विरोध नहीं कर सकती है। यूनानी लोग यह देख कर भले ही आश्चर्य्य करें कि भारत में खेति-हर दो परस्पर लड़ती हुई सेनाओं के बीच अपना खेत जोतने को बिना किसी चिन्ता के चला जाता है। "वह पवित्र और अनुल्लङ्घ-नीय है, क्योंकि वह शत्रु और मित्र दोनों का समान रूप से शुभ-कारी है"। किन्तु उस बात में जिसको यूनानी भारतीय जातीय जीवन का सुन्दर और विचारसिद्ध आकार बताते हैं उसमें केवल कोमल धीरता और सहनशीलता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। जब हैनिबल रोम में आया, तब रोम के किसानों ने अपना खेत बोना छोड़ दिया। भारतीय जन सब से उन्नत स्वार्थों और लक्षों से, जिन पर सारे पुष्ट जातीय जीवन का आधार होता है सर्वथा छिन्नुय होते हैं। उनकी इच्छा और उनके कार्य्य विचारों के नीचे दब जाते हैं। किन्तु जब एक बार आभ्यन्तरिक समता में

विभेद पड़ जाता है, और आत्मा और भौतिक पदार्थ से सम्बन्ध टूट जाता है तब विचार को यह सामर्थ्य नहीं रह जाती है कि वह जो वस्तु गुणदायक है उसका गुणकारी रीति से व्यवहार कर सके।

प्रत्येक वास्तविक वस्तु का वास्तविक आकार भारतवासियों को उसके किनारे के प्रकाश के आगे जो उस के ध्यान में भर उठता है तुच्छ जँचता है। और उसके विचार के आकार पूर्वीय देशों के बढ़ाव अनुसार बढ़ते जाते हैं और भयङ्कर एवम् कुरूप होते जाते हैं और अन्त में भयावह शक्ति से अपने बनाने वाले के विरुद्ध फिरते हैं। उसके लिये वास्तविक संसार उसके मिथ्या विचारों की मूर्तियों से छिपा हुआ अज्ञात बना रहता है और वह न उस पर विश्वास करने के योग्य होता है और न उस पर उसका कुछ वश ही होता है। जीवन और उसके सुख इस संसार में अत्यन्त ही अधिक परलोक की चिन्ता के भार के नीचे टूट जाते हैं।

परलोक का प्रगट आकार इस लोक के बीच ब्राह्मणों की जाति है, जिन को ज्ञान और बल है जो मनुष्य के लिये देवताओं के पास जाने के मार्ग को खोल और बन्द कर सकते हैं और परलोक में उसके लिये शत्रु और मित्र बना सकते हैं। उन शक्तियों ने जो राजकीय जीवन में उन्नति पाने से विलग रक्खी गईं अकेले ब्राह्मणों की दशा में सृष्टिकारी अवसर पाया—किन्तु किसके लिये सृष्टि करने को? लीकरगस या थेमिस्टोक्लीज़ के स्थान पर जिनको भाग्य ने भारतवासियों को देने से नाहीं किया, उनको आरुनीस और याज्ञवल्क्य मिले, जो यह जानते थे कि किस प्रकार वीरता से अग्नि-यज्ञ और सोम-यज्ञ की सूक्ष्मता को चलाना और उन दावों को फैलाना चाहिये जो उन जातियों के विरुद्ध वे लोग चलाते हैं जो परलोक के साम्राज्य के अगुआ हैं।

कोई मनुष्य उस मार्ग को, जो भारतीय विचार ने लिया बिना उन दार्शनिकों के दल के चित्र को, जिन्हें यूनानी ब्राह्मण कहते हैं उसके दोष और गुण के साथ ध्यान में रक्खे, समझ नहीं सकता और सब से अधिक इस बात को स्मरण रखना चाहिए कि न्यून से न्यून उस समय में वह वस्तु, जिसने पिछले समय के एवम्

बौद्ध मत के मस्तिष्क–सम्बन्धी पक्ष के निर्णय–कारी मुख्य विचारों को आकार दिया वह पुरोहितों की जाति थी और यह जाति अहङ्कारी और लोभी जाति ही न थी, किन्तु कुछ और भी थी–अर्थात् इसी आकार में भारतीय लोगों की दुर्बुद्धि ने आवश्यकता वश प्रागल्भ्य पाया।

ब्राह्मणों के दिन शान्तिमय साधारण रीति से बीतते थे। प्रत्येक पद पर, वे उन सङ्कीर्ण, बाधक सीमाओं से परिबद्ध किए जाते थे, जिनके लिये उनका वह पवित्र पद जिसका वह प्रतिनिधन करते थे, उनके आन्तरिक और बाह्य जीवन को बाध्य था। वे अपना यौवन काल पवित्र ग्रन्थों के सुनने और पढ़ने में बिताते थे, क्योंकि वास्तविक ब्राह्मण वही हैं जो श्रुत हैं। और यदि उसको श्रुत होने की ख्याति प्राप्त हो गई, तो वह अपनी यौवनावस्था गांव में वा पवित्र मण्डल के किसी तपोवन के एकान्त में, जो केवल शिक्षा प्रदान के निमित्त अनुकूल स्थान समझा जाता था गुप्त शिष्य को पढ़ाने में बिताता था। किम्वा, वह यज्ञशाला में अपने लिये और अन्यों के लिये यज्ञ करता जिसमें अनगिनत सूक्ष्म विधान होने के कारण अत्यन्त ही ध्यान रखना होता था और बड़ा परिश्रम करना पड़ता था। और नहीं तो वह ब्रह्मयज्ञ करता अर्थात् वेद से ईश्वर की स्तुति नित्य प्रति करता, यज्ञ करने के बदले राजा बाबू उस पर धन की वर्षा चाहे भले ही करें, किन्तु वह अपना जीवन बड़ी योग्यता से खेतों में से बाली बटोर कर वा बिना मांगे पाई भिक्षा से वा ऐसे दान से, जो किसी ने कृपा पूर्वक दे दिया हो बिताता था। तो भी, चाहे वह भिक्षा मांग ही कर खावे वह अपने को सांसारिक शासकों और प्रवर्गों से ऊपर उन लोगों से भिन्न वस्तु से बना समझता था। ब्राह्मण लोग अपने को देवता पुकारते थे और आकाश के देवताओं के साथ सन्धि होने से ये संसार के देवता (अर्थात् भूदेव) को देवताओं के अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित मानते थे अर्थात् आत्मिक शक्ति से, जिसके आगे सारे सांसारिक अस्त्र शस्त्र भग्न हो जाते हैं। वेद की एक ऋचा में लिखा है, "ब्राह्मणों के पास तीक्ष्ण बाण होते हैं जिनके चलाने में वे कभी

असफलीभूत नहीं होते"। "वे अपने शत्रुओं पर अपने पवित्र उत्साह और क्रोध से आक्रमण करते हैं। वे उन को दूर ही से बेध देते हैं सम्राट, जिस का अभिषेक वे अपनी प्रजाओं पर शासन करने के लिये करते हैं उनका सम्राट नहीं होता। पुरोहित राजगद्दी के समय जब शासक को उसकी प्रजाओं के आगे पेश करता है तो कहता है "हे प्रजागण यही तुम्हारा सम्राट है। किन्तु हम ब्राह्मणों का नृपति सोमदेव है।" ब्राह्मण लोग राज्य नियमों के बाहर खड़े होकर एक प्रकार के बड़े ऐक्य के बन्धन में अपने को बांधते हैं और इस ऐक्य का वृत्त उन सब लोगों को अपने अन्तर्गत कर लेता है जो वेदों की शिक्षाओं को मानते हैं। इस ऐक्य के सभ्य लोग ही उन बालकों के शिक्षक होते हैं जो अब सयाने होकर यौवनावस्था में पहुंचनेवाले हैं। किसी आर्य्यवंश का भारतीय बालक यदि समुचित वय में किसी ब्राह्मण शिक्षक के पास लाकर उससे यज्ञोपवीत धारण न कराया जावे जो कि आत्मा–सम्बन्धी द्विजन्म का एक मात्र चिन्ह है एवम् जिससे मनुष्य वेदाध्ययन का अधिकारी होता है तो वह कुजाति और वर्णसङ्कर के समान समझा जाता है। उपनयन संस्कार करते समय गुरुदेव कहते हैं कि हे पुत्र "मैं तेरे हृदय को अपने आधीन करता हूं अपने विचारों के अनुसार होने दे और अपनी सारी अन्तरात्मा से मेरे वचनों को सुन के आनन्दित हो।" बहुत वर्षों तक, जब तक कि वह गुरुजी के घर पर रह के शिक्षा पाता है वह उनसे डर कर उनकी आज्ञा मानता हुआ चलता है। ब्राह्मण गुरु का घर वर्तमान राज्य-नियम में जैसे सेना होती है एक बड़ी पाठशाला है जिसमें प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन का एक भाग बिताता है कि वह उससे उस समय निकले जब कि हृदय में यह बात अमिट अक्षरों में खचित हो जावे कि उसका धर्म्म कुछ ब्राह्मण की ओर भी है।

इस प्रकार के दार्शनिकों के जीवन के आकार के बलवान और निर्बल होने पर ही उनके विचारों के बली और निर्बल होने का मानों अङ्कुर निर्भर है। मानों वे स्वकृत संसार में, वास्तविक जीवन के मनोविनोदकारी वायु–मण्डल से विलग कर दिए गए थे जहां

पर उनके असीम आत्म-पौरुष एवम् आत्म-सर्वज्ञता के विश्वास को न्यून करने के लिये कोई वस्तु समर्थ न थी और जिसके सामने अन्यों का जीवन एवम् जीवनव्यवहार तुच्छ और घृणित अवश्य लगता रहा होगा। और इसीसे उनके विचारों में भी संसार परित्याग की घोर घोषणा प्रगट होती है और ऐसे लोगों ने जो उन वस्तुओं से परे, जो दिखाई देती हैं, शून्य और अनन्त देशों तक चढ़ते हैं कि जिसमें निराधार बातों को बिना प्रयोजन निर्णय करें-जो बातें कि उन लोगों के अतिरिक्त जो कि स्थूल पदार्थों से तनिक भी स्वाद नहीं ले सकते कोई भी नहीं सोच सकता, विचार की एक ऐसी प्रणाली निकाली है जिसमें बड़ी और गूढ़ बातों के साथ साथ बालकों सी व्यर्थ बातें ऐसे आश्चर्य्य रूप से मिल गई हैं कि उसका जोड़ा मनुष्य मात्र के आत्मा और संसार के समझने के यत्न के इतिहास में मिल नहीं सकता।

अध्याय ३।

वैराग्य-विरागियों के पंथ।

पाठक! आप लोगों ने बुद्ध देव के पूर्व भारत की दशा कैसी थी यह देखा-ब्राह्मणों का जीवन एवम् उनका अधिकार प्रजावर्ग पर कैसा था यह आप इस अध्याय के पूर्व के अध्याय में पढ़ चुके-रही एक बात सो आप लोगों ने अब तक नहीं जानी-वह यह है कि भारत की प्रजाओं में बुद्ध देव के पूर्व मत किस प्रकार का हो गया था कि जिसके कारण बौद्ध धर्म के फैलने में देर न लगी। उसके जताने के निमित्त हम को अभी इस अध्याय के पूर्व दो एक अध्याय और देने होते, पर ऐसा करने से ग्रन्थ का आकार बहुत बढ़ जाता, जिससे पढ़नेवाले एवम् मुद्रण-करने हारे दोनों ही उकता जाते। अतएव उन दो अध्यायों की बातें संक्षेप में इसी अध्याय में दे दी हैं। सुचतुर पाठकों को इसी को विचार से पढ़ने से बौद्ध धर्म्म के आने के लिये पथ बनाने हारे उसके पूर्व के मतों का एवम् यहां वालों के जीवन का विधिवत् पता लग जायगा।

उन्हीं विचारों ने जिनके अनुसार आत्मन् के सामने भौतिक संसार अनस्थायी और व्यर्थ ठहरा एक ही चोट में सारे जीवन के उन व्यवहारों को, जो साधारण मनुष्य को साधारण दृष्टि में उपयोगी जान पड़ते हैं, व्यर्थ कर दिया। लोगों ने जान लिया कि यज्ञ और बाहरी आचार आत्मा को परमात्मा तक नहीं पहुंचा सकते और न उसको संसार-व्यापी आत्मा से मिला सकते हैं। इनके लिये मनुष्य को सारी सांसारिक वस्तुओं से दूर रहना होगा, प्रीति और घृणा, आशा और भय से भागना होगा, मनुष्य को ऐसा जीवन व्यतीत करना होगा कि मानों वह शरीर धारण ही नहीं किए था। ऐसा कहा जाता है कि "ब्राह्मण लोग, बुद्धि को खोजते हैं सांसारिक ऐश्वर्य्य को नहीं, वे कहते हैं कि हम लोगों को, जिन की आत्मा परमात्मा में विहार करती है, सन्तान ले के क्या करना है? वे बाल बच्चों की इच्छा छोड़ देते हैं, धन के लिये परिश्रम नहीं करते, सांसारिक प्रभुता नहीं मांगते और भिक्षुक की नाईं जीवन व्यतीत करते हैं"।

बहुतेरे इससे न्यून ही आत्मस्वार्थ का परित्याग करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वे अपने घर को छोड़ देते हैं, और अपना सारा माल मता और अपने नियमित जीवन की प्रणाली के सुख और चैन को तिलाञ्जलि दे देते हैं तौभी वे गृहविहीन होकर संसार में परिभ्रमण नहीं करते हैं। वे अपने निमित्त जङ्गल में अर्द्ध-परिवेष्टित झोपड़े बना कर उसी में अकेले वा सस्त्रीक अरण्य के कन्द मूलों को खाकर जीवन व्यतीत करते हैं। वहां ही पर उनकी पवित्र अग्नि भी रहती है और वे, यदि सब नहीं, तो कुछ अंश अपने वैदिक यज्ञ धर्म्म का परिपालन करते ही रहते हैं।

ऐसा सम्भव है कि आदिम काल से कुछ लोग ऐसे थे-विशेष कर ब्राह्मण ही लोग-जो भिक्षुक वा अरण्यवासी तपस्वी होकर सांसारिक चिन्ताओं से दूर रहकर अपना त्राण चाहते थे। किन्तु प्रारम्भिक काल में केवल ब्राह्मणों ही का स्वत्व उन आत्मिक धनों के लिये, जिनके निमित्त मनुष्य अपने सारे सांसारिक धनों का परित्याग कर देते थे, नहीं माना जाता था। इस बात का पता नहीं

लगता कि बुद्ध के समय के पूर्व वा ख़ास बुद्ध के समय में ही ब्राह्मणों ने कभी इस बात का दावा किया हो वा उन्हें इस बात की आवश्यकता पड़ी हो कि राजा वा प्रजा को वा ब्राह्मण को स्त्री और बालकों के छोड़ने के लिये धन धान्य का परित्याग इस निमित्त करने के लिये कि उसके द्वारा भिक्षुक यती होकर अकिञ्चनता और पवित्रता के जीवन में आत्मा का परित्राण खोजे, अस्त्र शस्त्रों द्वारा किसी पर विजय प्राप्त करनी पड़े। ब्राह्मणों के साथ साथ जो प्राचीन दर्शन-सम्बन्धी प्रश्नोत्तरों में परमात्मा के गूढ़ तत्वों के विषय मिलते हैं, अनेक स्थानों में हम लोगों को राजा लोग भी मिलते हैं, यहां लों कि ब्रह्मज्ञानी स्त्रियों की भी उन लोगों की मण्डली में कमी नहीं है। मनुष्य लोग क्यों उन लोगों को रोकने की इच्छा करेंगे, जिनके वार्तालाप त्राण के विषय में वे ध्यान से सुनते और अनुमोदन करते थे।

इस वैदिक वैराग्य का यह अत्यन्त ही प्रगट चिन्ह जान पड़ता है कि इसमें लोग बड़ी दृढ़ता से केवल उन्हीं लोगों को जाने देते थे, जो इस के अधिकारी होते थे। लोग समझते थे कि इस वैराग्य का ज्ञान ऐसा है कि जिसको केवल थोड़े से चुने लोगों ही को जानना चाहिए सारी जाति के मध्य इस का प्रचार वाञ्छनीय नहीं है। मानों यह ज्ञान एक प्रकार का सब ज्ञानों में से चुना हुआ ज्ञान होता था, जो केवल चुने हुए लोगों ही के योग्य होता था। पिता इसे अपने पुत्र को सिखा देता था और गुरु अपने शिष्य को, किन्तु आत्मन में विश्वास करने वालों के मध्य में वह उत्साह तनिक भी नहीं था, जिसके अनुसार लोग ब्रह्मज्ञान के, जो स्वयम् प्राप्त है सारे संसार में प्रचार करने की इच्छा करते हैं।

जिन द्वारों से हम लोगों को इन बातों का पता मिलता है वे इतने अपरिपूर्ण हैं कि हम लोग जब कि अन्य-स्थल में उल्लिखित घटनाओं की निर्विवाद बातों पर आधार रखते हैं इस बात के योग्य नहीं हो सकते कि भारतीय वैराग्य की और उन्नति के चिन्हों की प्रसिद्ध प्रसिद्ध अवस्थाओं का भी पता लगा सकें। यहां पर बस अनुमान की सहायता हम लोगों को लेनी पड़ती है, जो वहां पर भी

आवश्यक है जहां पर कि वह लग भग पूर्ण सचाई के साथ उन विषयों को बतलाता है, जो अवश्य घटित हुए होंगे। वह उन स्थलों पर तनिक भी काम नहीं देता जहां पर कि हम लोग इस वैराग्य के निकलने के उस चिन्ह को खोजने लगते हैं जिससे कि इसमें बल प्रगट होवे।

दो बातों ने जो प्रगट रीति से परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध रखती हैं इस वैराग्य के आरम्भ से उस दशा तक जिसमें कि बुद्ध देव ने इसे पाया इसकी उन्नति में बड़ा भाग अवश्य लिया होगा, एक तो यह कि सन्यासियों अर्थात् संसार में रह कर वैराग्य ग्रहण करने वाले और दूसरे अरण्यवासी यतियों का मिलकर एक प्रकार की सुसज्जित मण्डली बनाना और उसके साथ ही उनमें से, बहुतों का वा उनमें से प्रधान अधिकार रखने वालों का वेद के अधिकार से युक्त हो जाना।

ऐसा जान पड़ता है कि इन दोनों बड़ी घटनाओं पर भौगोलिक स्थान परिवर्तन का बड़ा प्रभाव पड़ा होगा। हम लोगों ने इस ग्रन्थ के आदि में गङ्गा की घाटी के पश्चिमीय और पूर्वीय भागों में शिक्षा के भेद के विषय में उल्लेख किया है। वेद की पवित्र भूमि जहां पर वैदिक काव्य और वैदिक विचार की उन्नति हुई पश्चिम में पड़ी हुई है, पूर्वीय भाग ने मस्तिष्क की अधिकतर उन्नति-प्राप्त पश्चिमीय भाग से वेद और ब्राह्मणप्रणाली सीखी। किन्तु यह पश्चिमीय वस्तु पूर्ण रीति से पूर्वीय लोगों में मिल न सकी। पूर्व की वायु ही विलग है, वहां की भाषा की नाईं जिसमें पश्चिम के कर्ण-कटु "र" की अपेक्षा कर्ण-प्रिय 'ल' का व्यवहार बहुत होता है। इन देशों में ब्राह्मण न्यून और राजा और साधारण प्रजा अधिक माननीय होते हैं। वह उद्योग वा कारवाई जो पश्चिम में प्रारम्भ हुई यहां आकर उस विचार-सिद्ध गूढ़ विषय से बहुत कुछ रहित हो गई जो पश्चिम में उसमें था, सम्भवतः उसमें से कुछ वह दृढ़ विस्तार और स्पष्ट विचारों का क्रम भी जाता रहा। वे प्रश्न, जो पश्चिम में उन्हीं लोगों के मस्तिष्क में मनन किए जाते थे, जो मस्तिष्क-सम्बन्धी साम्राज्य के प्रधान पुरुष थे पूर्व में आकर साधारण लोगों के विचार करने के प्रश्न हो गए। पूर्व में ब्राह्मणों के विचार-सिद्ध

सर्वव्यापी गुप्त परमात्मा के विषय में लोग अत्यन्त ही स्वल्प विचार करने लगे और इसी कारण से प्रत्येक योनी के दुःख का, आत्मीय पाप पुण्य के पलटे का आत्मा की शुद्धता का और त्राण का विचार स्पष्ट रूप से आगे की ओर बढ़ा।

इस बात का ठीक पता नहीं लगता कि प्रजावर्ग के मस्तिष्क को विशेष उत्साह और बल के साथ ऐसे प्रश्नों की ओर फेरने के लिये कोई राजकीय उत्पात वा सामाजिक हेर फेर भी उस समय कार्य्य में परिणत हुआ था या नहीं। खीष्टीय धर्म्म ने अपना साम्राज्य अत्यन्त ही कठिन दुःख के समय में और संसार के नष्ट होने के बीच में स्थापित किया। यदि *पूर्वीय लोगों का दुःख उनके सूक्ष्म सूक्ष्म राज्यों का विलग विलग नृपति-अधिकारी शासन था, तो यहां वाले किसी दूसरे प्रकार की राज्य-प्रणाली को जानते ही न थे और न इसकी उन्हें कुछ चिन्ता ही थी। दरिद्रता (दरिद्र लोग) और धन (धनिक लोग) के बीच, वीर (राजा के सहकारी कुलोत्पन्न योद्धा) और खेतिहर के बीच बड़ा अन्तर था और प्राकृतिक आवश्यकता के कारण इस देश में ऐसा ही सदा से चला आता है और तिसपर भी धनहीन और दुखी लोगों ही ने केवल वा विशेष करके संसार के बोझे से सन्त का अंचला गले में डाल के त्राण नहीं खोजा।

ऐसी रीति है कि कभी कभी युग की अधोगति के विरुद्ध मनुष्य के असीम असन्तोष के विरुद्ध प्रजावर्ग ऐसी बड़ी चिल्लाहट मचाते हैं कि उससे छुटकारा केवल मृत्यु ही देती है, जब कि धनी और दरिद्र दोनों बराबर हो जाते हैं। बौद्धों के एक सूत्र में लिखा है कि "मैं देखता हूं कि धनी लोग उस धन में से जो वे प्राप्त करते हैं किसी को देते नहीं। वे बड़े उत्साह से धन एकत्रित करते जाते हैं और आनन्द और सुख मचाते हैं। सम्राट् चाहे वह संसार भर का राज्य जीते हो और चाहे वह समुद्र तक शासन करता हो तौभी वह उन देशों के राज्य की लालच, जो समुद्र के पार हैं असन्तोष से करता है। सम्राट् और बहुत से अन्य दूसरे लोग अपनी इच्छाओं के बिना पूर्ण हुए मृत्यु के कवर हो जाते हैं। न तो सम्बन्धी,

* इस ग्रन्थ में पूर्वीय देशों से अर्थ भारतवर्ष का है।

न तो मित्र, और न जान पहिचान वाले मरते हुए मनुष्य को बचा सकते हैं। उत्तराधिकारी लोग उसका माल मता ले लेते हैं। किन्तु उसी को अपने कर्म्मों का फल मिलता है। उसके साथ कोई धन नहीं जाता है; न स्त्री, न पुत्र, न रुपया, न पैसा और न साम्राज्य साथ जाता है।" और दूसरे सूत्र में यह लिखा है कि "वे सम्राट् लोग जो देशों को शासन करते हैं रुपए पैसे में धनी होने पर भी आपस में एक दूसरे के साथ ईर्षा करते हैं और कञ्चन और कामिनी के भोग विलास से उनको कभी सन्तोष नहीं होता। यदि ये लोग इस प्रकार अशान्त रीति से व्यवहार करते हैं और अल्पकालिक भव धारा में लोभ लालच और इन्द्रियों के सुख विलास की इच्छा से बहे चले जाते हैं तो कौन संसार में शान्ति से चल सकता है?"

ऐसे ऐसे पदसमूहों से जो कि सर्वदा सब देशों में सद्व्यवहार सिखाने वालों के बीच प्रचलित रहते हैं हम लोग यह भावार्थ नहीं निकाल सकते हैं कि उस समय ऐसी दशा प्रचलित थी, जैसी कि रोम में साम्राज्य के प्रारम्भिक दिनों के कठोर समय में थी। भारतीय लोगों के लिये, जीवन के उस चित्र पर, जो उसके चारों ओर था भयभीत होने के लिये, एवम् उस चित्र में मृत्यु के लक्षणों पर ध्यान दिलाने के लिये ऐसे समय की आवश्यकता न थी। जीवन की ऐसी दशा के व्यर्थ होने के कारण, जिनको वे परिश्रम और यत्न के योग्य अभिप्रायों के परिश्रम और यत्न से चिरस्थायिता नहीं दे सकते थे, मनुष्य संसार के परित्याग में आत्मा की शान्ति खोजने के लिये भागते हैं। धनवान और उत्तम-कुलोद्भव जन (सम्मानित पद पात्र) दीन और लघुपद-परम जनों से अधिकतर युवक जन जीवन से उसके सांसारिक व्यवहार के प्रारम्भ होने के पूर्व थकित होकर वृद्ध जनों से अधिकतर, क्योंकि उनको जीवन से लाभ प्राप्त करने की ओर आशा शेष ही नहीं रह जाती, स्त्रीजन और युवतीजन अपनी गृहस्थी त्याग कर संत और संतिनी का अंचला गले में डाल लेते हैं। सर्वत्र हम लोग उस झगड़े के चित्र को देखते हैं, जो नित्य प्रति उस समय में जो ऐसा करना चाहते थे और उनके पिता माता स्त्री और लड़कों के बीच उन लोगों को संसार परित्याग से

रोकने के लिये होता है। उन लोगों के अजेय संकल्प के कार्य्यों की कहानियां, जो सारे विरोध के रहते भी, उस बन्धन को तोड़ने में समर्थ हुए हैं जो उन्हें गृहस्थी में बांधता था, वर्णित हुई हैं।

शीघ्र ही ऐसे शिक्षक प्रगट हो गए जो अनेक स्थानों में वेद बिना ही एक नया पंथ त्राण का, जो सर्वतोभाव सत्य था जान लेने में सफलीभूत हुए थे और ऐसे शिक्षकों के समीप ऐसे सीखने वाले आने लगे जो उनके साथ संसार में परिभ्रमण करते समय भी योग देते थे। हृदय के विचारों की सर्वतोभाव पूर्ण स्वतन्त्रता की रक्षा में, जो भारत में सदैव से वर्तमान है, नए नए धर्म्म पन्थ बढ़ते ही चले गए जैसे निगन्थ, अर्थात् जो बन्धन से मुक्त है * और अश्लेष अर्थात् निद्वन्द्व लोग और ऐसे ही अनेक नामों के सन्त और सन्तनियों के पंथ खड़े हो गए थे, जिसके मध्य में बौद्ध धर्म्म अपने जीवन के आरम्भ में खड़ा हुआ।

वह नाम जो सर्व साधारण ने इन लोगों को दिया जो स्वकृत धर्म्म सम्बन्धी प्रतिष्ठा के थे। ब्राह्मणों के विरुद्ध जिनकी मर्यादा उनके जन्म (कुल) पर निर्भर थी, श्रामण वा यती था। अतएव बुद्ध को लोग **श्रामण गोतम** पुकारते थे—सर्व साधारण उसके अनुयायियों को "श्रामण, जो शाक्य कुलोद्भव पुत्र के पीछे चलते हैं" पुकारते थे। यह सम्भव है कि एक के उपरान्त दूसरे प्राचीन श्रामण पंथ ने अपने शिक्षक को धर्म्म-सम्बन्धी अधिकार रखने वालों के गुण वाचक नाम भी दिए हों—ठीक उसी के अनुसार जैसा कि बौद्धों ने अपने धर्म्म के चलाने वाले के सम्बन्ध में पीछे से व्यवहार किया। शाक्य जाति का मनुष्य ही अकेला और कदाचित् पहिला मनुष्य ऐसा नहीं है जो भारत में "बुद्ध" वा "जिन" के नाम की प्रतिष्टा प्राप्त कर चुका है। वह केवल संसार के अनेक त्राण देने वाले और देवताओं

* यह पंथ, जिसका प्रवर्तक बुद्ध के समकालीन लोगों में से एक था, जैन के नाम से अबलों वर्तमान है—विशेष करके भारत के दक्षिणीय और पश्चिमीय भागों में। उस का वह चित्र, जिसको हम लोग उसके अन्य प्रकार नवीन, धर्म्म सम्बन्धी साहित्य में देखते हैं अपनी अनेक मुख्य बातों में बौद्ध-धर्म्म के समान ही है। एक अन्तर दोनों में यह है कि निगन्थ लोगों ने तपस्या को बड़ी मर्यादा दी है।

और मनुष्यों के शिक्षकों में से एक था, जो उस समय में देश के भीतर सन्तों का अँचला गले में डाले चारों ओर घूम घूम कर आधि की वक्तृता करते थे।

आधा के मार्ग जिससे ये आचार्य्य लोग अपने विश्वासियों को मुक्ति की खोज में चलाते थे सहस्रों थे। हम लोगों को जिनके पास इस विषय पर बौद्धों और जैनों के पक्षपात से रहित और कठिनता से प्रस्तुत हैं, यह अवश्य कहना होगा कि उनके गूढ़ विचार घनी रीति से मूर्खतामय एवम् कठोर अहङ्कार से परिवेष्टित हैं। हम लोगों की जान में वे ऐसे यती थे जो अपनी आत्मा को दुःख देते थे, बहुत दिन तक भोजन नहीं करते थे, स्नान नहीं करते थे, बैठते नहीं थे, लोहे की कीलें गाड़ कर उस पर सोते थे। इस धर्म्म के ऐसे अनुयायी भी थे, जो जल से आत्मा की शुद्धता पर विश्वास करते थे, जिनका ध्यान इसी पर रहता था कि उनके शरीर में जितना पाप लगा है सो सारा तीर्थ में कुछ काल लों नित्य स्नान करने से धुल उठेगा, फिर ऐसे लोग भी थे जो समझते थे कि परमात्मा का कोई रूप नहीं है, और जब कि वे अपने को बाहरी वास्तविक अर्थात् स्थूल पदार्थों से विलग रखते थे अपने में यह भावना लाना चाहते थे कि आकाश निरन्तर है, ज्ञान सर्वकालीन है और इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस दशा में यह सरलता से समझा जा सकता है कि पवित्र लोगों की इस बहुतायत में स्वेच्छाचारी लोग भी आ गए थे। इसी प्रकार बौद्धों के ग्रन्थों में उस समय के पवित्र लोगों की अर्थात् मतप्रवर्तकों की बड़ी सूची दी है जिनमें से कठिनता से कोई अपनी पवित्रता को हास्यास्पद वा उस से भी अधिक भयावह बातों से बचा सके।

अध्याय ४।

मिथ्या शिक्षक।

इन यतियों और दार्शनिकों की मण्डली के धूम धड़क्के में, जो कतिपय घटनाएं हुईं उनको एक प्रकार का भारतीय मिथ्या-

शिक्षकों का उत्पात कह सकते हैं–जहां कहीं साक्रेटीज़ (सुक़रात) सरीखे जन प्रगट होते हैं वहां मिथ्या-धर्म्म शिक्षक अवश्य ही साथ साथ खड़े हो जाते हैं। वे दशाएं जिनसे ये मिथ्या शिक्षक उत्पन्न हुए वास्तव में उन्हीं दशाओं के समान हैं जिनसे कि यूनानी इनके समान हुए। उन्हीं मनुष्यों के पगचिन्ह को पकड़े, जैसे इटली के रहने वाले वे लोग जो मानते थे कि मुख्य वा अचूक विज्ञान वह है जो इन्द्रियों से कोई सम्बन्ध नहीं रखता है किन्तु बुद्धि ही से सम्बन्ध रखता है, और श्लेष कहने वाले एशिया-माइनर-अन्तर्गत आयोना देश के एफिसस नगर वालों की नाईं जिन्होंने विचार के मार्ग अपने सरल और बड़े विचारों के साथ खोल दिए, गार्जियस और प्रोटोगोरस से एक दल का दल विलक्षण बुद्धि वाले चमत्कार और कुछ कुछ हास्यजनक लेखकों का ऐसा उत्पन्न हुआ जो लेख की प्रणाली की सुन्दरता पर अधिक ध्यान देता था-न कि धार्म्मिक शिक्षा की सत्यता पर और जो एक प्रकार का भाषा और साहित्य के रोज़-गारियों का दल था। उसी प्रकार से भारत भूमि में ब्राह्मणों के पुदर्षीय, प्रथम वर्ग की उत्तमता के ब्रह्मज्ञान के उत्साही वास्तविक दार्शनिकों के उपरान्त भाषा जानने वाले वक्तृता करनेवालों का समय आया जिनके विचारों में नास्तिकता प्रधान अङ्ग थी और जो अपने बड़े पूर्वगामियों के विचारों को सब प्रकार से प्रगट करने में और उससे उन्हें बदल कर उनका उलटा सत्य सिद्ध करने में दक्ष और परम योग्य थे। एक प्रणाली के उपरान्त दूसरी प्रणाली सम्बन्धतः सूक्ष्म मसाले के साथ बनाई गई। हम लोगों को युद्ध घोषणा की बहुतायत के अतिरिक्त और कुछ ज्ञान नहीं है। संसार की नित्यता वा क्षणभङ्गुरता और आत्मा के विषय में, वा इन दोनों से विरुद्ध बातों में मेल करने में अर्थात् एक की नित्यता और दूसरी की अनित्यता के विषय में वा संसार के असीम वा सीमाबद्ध होने के विषय में विवाद उठाए गए थे। उसके उपरान्त न्यायानुसार अविश्वासकता प्रारम्भ हुई अर्थात् ये दो शिक्षाएं जिनकी मूल परिभाषा यह है कि "सब वस्तुएं मुझ को सच्ची जान पड़ती हैं" और "सब वस्तुएं मुझ को असत्य जान पड़ती हैं" प्रारम्भ हुईं। और इस स्थल पर स्पष्ट रीति

से विवादकारी जो प्रत्येक वस्तु को असत्य मानता है इस प्रश्न का सामना करता है कि वह अपने इस विचार को कि सब वस्तुएं असत्य हैं उसी प्रकार असत्य मानता है या नहीं। मनुष्य परलोक के विषय में, मृत्यु के उपरान्त के जीवन के विषय में, मनुष्य की इच्छा के स्वतन्त्र और आत्मा का पाप पुण्य पलटा मिलने के विषय में विवाद करते हैं। यकुखाली गोसाल ने जिसको बुद्ध देव ने अशुद्ध शिक्षा देने वालों में से सब से बुरा बतलाया है स्वतन्त्र बुद्धि से नाहीं करता है। "बल (कर्म्म का) नहीं है योग्यता नहीं है, मनुष्य को कुछ भी बल नहीं है। मनुष्य बेबस है। सारी सृष्टि, जितनी वस्तुओं में स्वास चलता है, जो कुछ वर्त्तमान है, सब वस्तुएं जिन में जीवन है बेबश हैं, न उनमें बल है न योग्यता है कि अपने कर्म्मों को अपने अधिकार में रक्खें-वे शीघ्र शीघ्र भाग्य वा प्रकृति द्वारा अपने अन्तिम जाने की जगह पहुंच जाती हैं। प्रत्येक जीवधारी बहुत सी योनी में भरमता है उसके उपरान्त चाहे मूर्ख हो चाहे विद्वान दुःख से मुक्त हो जाता है।" ईश्वरीय शासन से भी नाहीं की जाती है। कश्यप पुराण सिखलाता है, "यदि कोई मनुष्य गङ्गा के दक्षिणीय तट पर धावा मारै, स्वयम् मनुष्य वध करै और औरों से करावै, देश को उजाड़ करै वा करावै, घर जलावै वा जलवावै तो उसके जान में कोई दण्ड नहीं होता है। यदि कोई मनुष्य गङ्गा के उत्तरीय तट पर लांघ कर जावै, दान करै वा दान करवावै, यज्ञ करै वा करवावै तो यह कोई अच्छा काम नहीं है। उसे अच्छे कामों का कुछ भी फल नहीं मिलता।" ऐसी शिक्षाओं के अन्य वाक्य ये हैं "बुद्धिमान और मूर्ख, जब शरीर नष्ट हो जाता है तो वे भी नाश हो जाते हैं। वे भी मृत्यु के परे नहीं है। अपने अनुयायियों, विरोधियों और मनुष्यों के बड़े समाज के साथ विवाद करने में ये लोग जिनका काम ही विवाद करना और बात का बतक्कड़ बढ़ाना था अपने विचारों को प्रकाश करते थे। अपने यूनानी जोड़ों के समान यद्यपि उनसे कठोर से कठोर ये लोग थे, अपने को विवाद में अजेय बतलाते थे। सञ्चाका कहाता है, "मुझे ऐसा श्रामण ऐसा ब्राह्मण, ऐसा आचार्य, ऐसा पाठशाला का मुखिया ज्ञात नहीं है, चाहे वह अपने को सर्व प्रधान

पूज्य, बुद्ध कहता हो जो यदि हम से विवाद करे तो वह हिल न जाय, उसको कँपकपी न पड़ जाय, और जूड़ी न आजाय और जिसको पसीना न छूटने लगे। और यदि हम किसी निर्जीव खम्भे से भी विवाद करने लगें तो वह भी ऐसा ही करेगा—इस दशा में साधारण मनुष्य की क्या दशा होगी" सम्भव है कि बौद्ध लोगों ने, जिनके लिखे समाचार पर ही हम लोग इस विषय में निर्भर हैं ऐसे विवादियों से शत्रुता होने के कारण उनका अनुचित रीति से ऐसा बुरा चित्र खींचा है। ऐसे मिथ्या शिक्षकों का चित्र वास्तव में सर्वथा जालसाज़ी ही नहीं है।

घनिष्ट और अनेक पहलू वाले मस्तिष्क सम्बन्धी नए मतों के समय में, जो ब्राह्मण दार्शनिकों से लेकर प्रजावर्ग के बीच तक फैल गया था जब कि स्वेच्छा से धर्म्म-सम्बन्धी नित्यकर्म का सीखना गत काल के कठिन यत्न से उसके सरल गूढ़ विचारों को दबा कर उत्पन्न हो गया था और जब कि मन सम्बन्धी अविश्वासकता न्याय और धर्म्म-सङ्गत विचारों पर आक्रमण करने लगी उसी समय में जब कि जीवन के बोझ से मुक्ति पाने की दुखद इच्छा का उत्तर धर्म्म की ग्लानि के प्राथमिक लक्षणों से मिल रहा था गौतम बुद्ध रङ्गशाला में उपस्थित हुआ

अध्याय ५।

बुद्ध की जीवनी

के विषय लोगों के विचार।

बौद्ध लोग अपने धर्म्म के नेता के विषय में जो कहावतें कहते हैं वे थोड़ी नहीं हैं। पर क्या उनसे बुद्ध देव के जीवन का कुछ पता लग सकता है? कतिपय आधुनिक विद्वान तो यहां तक कहते हैं कि क्या वास्तव में बुद्ध देव कोई मनुष्य थे; अर्थात् उनके अवतार ग्रहण करने के विषय में सन्देह करते हैं। वा यदि बौद्ध धर्म्म है तो उसका प्रवर्तक अवश्य कोई होगा सो वह बुद्ध जिसका इन कहानियों में अलौकिक आकार और आश्चर्य्य मय घटनों के साथ होना लिखा है वास्तव में संसार में उत्पन्न हुआ था।

भारत की प्राचीन बातों के वे बुद्धिमान खोजी श्रीमान् परम सुजान सेनार्ट साहब कहते हैं कि बुद्ध वास्तव में कोई मनुष्य न था। कोई बुद्ध किसी समय में कहीं रहा होगा किन्तु वह बुद्ध जिसके विषय में बौद्ध धर्म्म की कहावतें प्रचलित हैं वास्तव में कभी नहीं रहा। वह बुद्ध मनुष्य नहीं था, उसका जन्म, उसके यत्न और उद्योग और उसकी मृत्यु मनुष्य की नहीं है।

और यह बुद्ध कौन था? आरम्भिक समय से, भारतियों की रूपक-सम्बन्धी कविता, यूनानियों और जर्मन लोगों के सदृश सूर्य सम्बन्धी घटनाओं के विषय में होती चली आती हैं। अर्थात् उसके प्रातःकाल के बादलों से जन्म के विषय की, जोकि ज्योंही वह निकल चुकता है, अपने प्रकाश करने वाले लड़के के आगे अवश्य ही स्वयम् नाश हो जाता है; बादलों के बीच के कृष्ण-काय प्रेत के साथ उसके युद्ध और विजय के विषय में, फिर इस विषय की कि वह किस प्रकार विजय-पूर्वक आकाश के बीच यात्रा करता है और अन्त में दिन झुकता है और प्रकाशक वीर अन्धकार में लिप्त हो जाता है।

सेनार्ट बुद्ध अर्थात् सूर्य्य के जीवन के इतिहास का पद पद पर पता लगाते हैं। वह सूर्य्य की नाईं रात के बादलों से माया के अन्धकारमय पेट से निकलता है और जब वह उत्पन्न हो जाता है तब एक प्रकार का प्रकाश सारे संसार को वेध देता है। माया प्रातःकाल के बादलों की नाईं, जो कि सूर्य्य की किरणों के आगे उड़ जाता है मर जाती है। सूर्य्य के समान, जो गर्जते काले प्रेत को जीतता है, बुद्ध मार अर्थात् बदी के लिये लोभ दिखाने वाले प्रेत को घोर युद्ध में पवित्र वृक्ष के नीचे जीतता है। यह वृक्ष आकाश का कृष्णवर्ण बादलों का वृक्ष है जिसके चारों ओर आंधी का युद्ध हुआ करता है। जब विजय प्राप्त हो जाती है, तब बुद्ध सारे संसार में अपना धर्म्म फैलाने निकलता है अर्थात् "नियम के पहिये को चलाने" निकलता है। इसका अर्थ यह है कि सूर्य्य अपने प्रकाश करने वाले पहिये को आकाश में एक ओर से दूसरी ओर चलाता है। अन्ततः बुद्ध के जीवन की समाप्ति हो जाती है। वह अपने सारे कुल अर्थात् शाक्य जाति का, जो कि

अपने शत्रुओं द्वारा नाश की जाती है, भयावह रीति से नाश होना देखता है जैसा कि सन्ध्या के समय प्रकाश के विरुद्ध सन्ध्या के बादलों के रक्त-वर्ण में नाश हो जाते हैं। जब उसका अन्त आता है तब उसकी चिता की अग्नि आकाश की मूसल धार वर्षा से बुझाई जाती है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि सूर्य्य अग्निधारा में जो उसी की किरणों की होती है डूब जाता है और उसकी ईश्वरीय चिता की अन्तिम ज्वाला क्षितिज में सन्ध्या के कुहरे की आर्द्रता में नष्ट हो जाती हैं।

सेनार्ट की सम्मति में वास्तविक बुद्ध था, वे कहते हैं कि उसकी वास्तविकता न्यायसङ्गत आवश्यकता है, क्योंकि हमलोग उसीका चलाया पन्थ देख रहे हैं; किन्तु इस रूखी वास्तविकता के अतिरिक्त कोई सारता नहीं दीखती। उसके अनुयायियों के ध्यान में उसके शरीर में वे गुण थे, जो सूर्य्यदेव में, मनुष्य का आकार ग्रहण करने पर, रूपक-सम्बन्धी गीतों में गाए हुए हैं और वे मनुष्य बुद्ध अर्थात् बुद्ध देव मनुष्य की दशा में जैसे थे उसको लोग भूल गए।

कोई मनुष्य सेनार्ट के उस लेख का जिसे उसने अपने सूर्य्य-सम्बन्धी सूर्य्य को सिद्ध करने लिये लिखा है विना प्रशंसा किए नहीं पढ़ सकता है। उसने वेद को, भारतीय प्राचीन युद्ध-सम्बन्धी कविता को, यूनानियों के एवम् नवीन काल की जातियों के साहित्य को ढूंढ कर अपना अर्थ सिद्ध करने में बड़ी चतुरता की है। किन्तु आश्चर्य्य इस बात का है कि बुद्ध के विषय की कहावतों को लिखते समय साहित्य के ऐसे बहुत पढ़ने वाले ने एक साहित्य से, जो होमर के भजनों और एड्डा से कम ब्योरा नहीं दे सकता काम नहीं लिया अर्थात् बौद्ध धर्म्म के सब से प्राचीन प्राप्तसाहित्य से जो कि बुद्ध के चेलों के दल का उनके प्रभु के विषय में सब से प्राचीन साक्षी है काम नहीं लिया है। सेनार्ट अपनी आलोचना का आधार कहावत-मय जीवनी "ललित विस्तर" को बताते हैं, जो कि उत्तरीय बौद्धों के बीच तिब्बत चीन और नैपाल में प्रचलित है। पर क्या किसी मनुष्य के लिये, जो ईसूमसीह की जीवनी की आलोचना लिखने बैठे नए सुसमाचार को अलग रखकर सन्दिग्ध ग्रन्थों से—चाहे वे कोई हों पर मध्य-

काल के लिखे हों सहायता लेनी उचित समझी जायगी? वा क्या आलोचना का नियम, जो कहावतों को उनके प्राचीन रूप तक खोजना अपनी कोई सम्मति निश्चय करने के पूर्व आवश्यकीय करता है बुद्ध देव के धर्म्म के सम्बन्ध में उतना ही माननीय नहीं है जितना कि वह खीष्टीय धर्म्म के विषय में है?

बौद्ध धर्म्म की सब से प्राचीन कहावतें वे हैं जो सीलोन वा लङ्का में पाई जाती हैं और जिनको वहां के उस धर्म्म के साधु अद्यापि पढ़ते पढ़ाते हैं।

जब कि भारत के बौद्ध मूल ग्रन्थों का भाग्य प्रत्येक शताब्दी में पलटा खाता था और जब कि मुख्य धर्म्म की क्रिया पिछले काल की कविता और उपन्यासों के आगे नष्ट होती चली जाती थी तब सीलोन वा लङ्का में बौद्ध धर्म्म वाले अपने साधारण "प्राचीनों के महा वाक्य" को ही मानते रहे। वह भाषा भी जिसमें वह लिखा है उसको भ्रष्ट होने से बचाने में सहाय हुई अर्थात् पूर्वीय भारत के देशों की बोलियों ने, जहां के धर्म्म मानने वालों और धर्म्म प्रचारकों ही ने यदि सीलोन में धर्म्म फैलाने का काम प्रारम्भ नहीं किया तो वहां वालों को बौद्ध धर्म्म में लाने में बड़ा भाग लिया *। मूल ग्रन्थों की यह भाषा (पाली) पूर्वीय भारत से वहां जाकर उन लोगों की पवित्र भाषा बन गई और वहां वालों का विश्वास है कि बुद्ध देव स्वयम् और उनके पूर्व के सब काल के लोग उसी पाली भाषा को बोलते थे। चाहे कहावतें और विचार जो नवीन काल के रहे हों सिलोन के धर्म्म विषयक साहित्य में वहां वालों की बोली में लिखे जाने के कारण मिल गए हों पर पवित्र पाली में लिखे मूल ग्रन्थों पर इनका कुछ भी प्रभाव न पड़ा।

हम लोगों को अन्य द्वारों को छोड़ कर पाली कहावतों ही का सहारा लेना चाहिए यदि हम लोग यह जानना चाहते हैं कि उनसे बुद्ध और उसके जीवन के विषय में कोई समाचार मिल सकता है वा नहीं।

---

* 'भाषा विज्ञानाङ्कुर' में अशोक के पुत्र का सिलोन में जाना पढ़ो।

उन्हीं में हम लोग सब से पहिले प्रारम्भ ही से (यहां तक कि जहां तक कि बौद्ध की धर्म्म-सम्बन्धी चैतन्यता के सब से आरम्भिक वाक्यों को हम लोगों ने देखा है) यह दृढ़ विश्वास देखा है कि त्राण का ज्ञान और पवित्र जीवन का मूल एक शिक्षक और धर्म्म-मण्डली का नेता है जिसको वह भगवा (महोदय) और चैतन्य कहते हैं। जो कोई आत्मा-सम्बन्धी मण्डली में जाना चाहता है इस मन्त्र को तीन बार कहता है, "मैं बुध की शरण लेता हूं। मैं शिक्षा की शरण लेता हूं। और मैं धर्म्म के दल की शरण लेता हूं"। अर्द्ध मासिक पाप के स्वीकार के समय जिसकी रस्म बौद्धों की धर्म्म-सम्बन्धी जीवन के स्मारकों में से सब से पुराना स्मारक है साधु जो पाप का स्वीकार कराता है, अपने सहगामियों से जो प्रस्तुत होते हैं कहता है कि किसी अपराध को, जो आप लोगों ने किया हो चुप रह कर न छिपावें; क्योंकि मौन एक प्रकार का झूठ बोलना है और "अभिप्रायसिद्ध असत्य भाषण से, हे भाइयो, नाश होता है, इसी प्रकार से उक्त प्रभु ने कहा है।" और वहीं दोष स्वीकार करने की रस्में सन्तों को, जो अन्य मत स्वीकार करते हैं, उनसे यह कहवा कर वर्णन करता है, "मैं इस प्रकार उस शिक्षा को समझता हूं, जिसे महोदय ने दीक्षित किया है" इत्यादि। चारों ओर यह पुरुष रहित धर्म्म का तत्व प्रगट है और न यह एक मनुष्य का निजी का विचार है, किन्तु यह बुद्ध देव महोदय का शरीर है, प्रभु का वाक्य है जो सचाई और पवित्र जीवन का द्वार है।"

और यह प्रभु अन्धकारमय गतकाल का बुद्धिमान मनुष्य ही नहीं माना जाता है किन्तु लोग उसको ऐसा मनुष्य सोचते हैं जो बहुत काल पूर्व गत काल में नहीं हुआ था। ऐसा कहा जाता है कि विशाली में सात सौ धर्म्म के आचार्यों की सभा उसकी मृत्यु के सौ वर्ष पीछे हुई (ख्रीष्ट प्रभु के ३८० वर्ष पूर्व) और इस बात को पूर्ण-तया सत्य मानना चाहिए कि पवित्र धर्म्म ग्रन्थों के मूल सार के सार जिनमें आदि से अन्त लों उनकी ही (बुद्ध देव की ही) शरीर और शिक्षा केन्द्र के तुल्य है जिनमें उनकी जीवनी और मृत्यु उल्लिखित हैं, धर्म्म-मण्डली की इस विशाल सभा के होने के पूर्व लिखे जा चुके

से। इन मूल धर्म्म-ग्रन्थों के सब से पुराने भाग जैसे अपराधों के स्वीकार करने की रस्म, जिसका उल्लेख हम अभी पीछे कर आये हैं, पूर्णतया सम्भव है कि बुद्ध देव की मृत्यु के इस १०० वर्ष पीछे के आदि में-न कि अन्त में बने थे। अतएव वह समय जो साक्षी देने वाले साक्षियों को उस घटना से जिसकी वह साक्षी देते हैं अत्यन्त ही स्वल्प है। यह उस समय से बहुत ही अधिक नहीं है, सम्भवतः तनिक भी अधिक नहीं है, जो खीष्ट की मृत्यु और खीष्टीय सुसमाचार के बनने के बीच बीता। क्या यह विश्वास किया जा सकता है कि बुद्ध के धर्म्म के इतने समय के बीतने के बीच उसकी जीवनी का सारा विश्वसनीय स्मरण सूर्य्य-देव के गीतों के कारण विस्मृत हो गया और उसी में बदल गया? और क्या यतियों की बिरादरी में, जिनके विचारों के वृत्त के अन्तर्गत, उस साहित्य की साक्षी के अनुसार जिसको पैतृक-वृत्ति हम लोगों को दे दे गए हैं प्रत्येक वस्तु इन प्राकृतिक गीतों से अधिक मूल्यवान थी बुद्ध देव कुचल उठे?

अध्याय ५।

बुद्ध देव की जीवनी।

शाक्य मुनि गौतम बुद्ध के जन्म ग्रहण करने की ठीक ठीक तिथि और वर्ष अब निश्चित नहीं हो सकता। वे आख्यायिकाएं जिनसे उनके स्वर्गारोहण का वर्ष ५४३ खीष्ट के पूर्व माना जाता था अब तत्ववेत्ताओं की दृष्टि में अप्रमाणित और असङ्गत जंचने लगीं। और नवीन काल में जो अन्वेषण इन गूढ़ विषयों में किया गया है उसका प्रतिफल उनकी जन्म तिथि का पहिले की अपेक्षा १०० वर्ष पीछे होना भी ठीक और अशुद्धता रहित नहीं माना जा सकता। तथापि हम लोग सत्य से बहुत ही अन्तर पर न होगे यदि हम लोग उनके जन्म का वर्ष खीष्ट प्रभु से ५०० वर्ष पूर्व मान लेवें। आपका जन्म कपिलवस्तु नामक एक नगर में, जिसे अब भुइला पुकारते हैं और जो कोशल (वर्तमान अवध) राज्यान्तर्गत बस्ती और अयोध्या के मध्य में अपनी राजधानी श्रावस्ती से, जहां पर शाक्य मुनि प्रायः रहा करते थे

६० अंगरेज़ी मील पर और बनारस से १०० मील उत्तर और पश्चिम के कोने पर मगधराज्य की सीमा पर स्थित है खीष्ट प्रभु से ५०० वर्ष पूर्व हुआ था।

उनके पितृदेव महाराज सुद्दोदन, शाक्य जाति के एक भूमि स्वामि थे। "शाक्य" शब्द शक् धातु से बना है, जिसका भावार्थ "बलशाली होना" है। इनकी जमींदारी गोरखपुर प्रदेश में, नीचे की नैपाली पर्वत श्रेणियों से ले के अवध देशान्तर्गत रापती नाम्नी नदी के तट लों फैली हुई थी। लोगों ने विचार दौड़ाया है कि शाक्य जाति प्रथमतः एक अनार्य्य जाति थी, जिसका सम्बन्ध तिब्बत वा उत्तरीय एशिया से आए कतिपय पशु-पालक जातियों से था, जो भारत में भिन्न भिन्न काल में आई थीं; किन्तु यह विचार मान लेने पर भी यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि शाक्य लोग आर्य्यों में से थे। इनमें से मुख्य मुख्य कुल अपने को राजपूत और सूर्य्यवंश के प्रथम पुरुष इक्ष्वाकु के वंशधर बताने लग गए थे। ऐसा जान पड़ता है कि ये लोग यद्यपि अपने को क्षत्री बतलाते थे तो भी अपना जीवन निर्वाह मुख्यतः कृषि द्वारा करते थे और तिसमें भी धान बोना उनकी मुख्य तम जीविका थी। यह भी कहा जाता है कि शाक्य कुल वाले प्रायः अपना नाम उस ब्राह्मण कुल के नाम से लेते थे, जो उनके गुरु थे और जो उनके लिये धर्म्म-सम्बन्धी पूजा आर्चा किया करते थे और इसी से सुद्दोदन का घराना गौतम वंशी अर्थात् गौतम ऋषि की सन्तान कहलाता था। किन्तु गौतम नाम की व्याख्या इस प्रकार करनी आवश्यक नहीं जान पड़ती। सत्य बात यह है कि गौतम नाम शुभमय है और प्राचीन काल में यह नाम प्रत्येक बड़े भूमि-स्वामी के लड़के को उसकी धर्म्म में निष्ठा दिखाने को एवम् ब्राह्मणों को प्रसन्न कर उनका आशीर्वाद प्राप्त करने को दिया जाता था।

बौद्ध धर्म्म के प्रवर्त्तक के पिता केवल शाक्य जाति के प्रधान पुरुष थे—निस्सन्देह आजकल के व्यवहारानुसार राजराजेश्वर नहीं किन्तु एक बड़े भूमि स्वामी थे। उनके नाम सुद्दोदन "शुद्धतन्दुल"

से यह ध्वनि निकलती थी कि उनकी जाति एवम् प्रजा तन्दुल उपजानेहारी और उसी पर जीवन निर्वाह करने हारी थी।

गौतम (पाली 'गोतम') नाम व्यक्तिवाची ठीक वैसा ही है जैसा आज दिन प्रत्येक हिन्दू बालक को उसके नामकरण के समय दिया जाता है। उन्होंने 'बुद्ध' की उपाधि उस समय लों ग्रहण न की, जब लों उन्होंने पूर्ण प्रतिभा और ज्ञान प्राप्त न कर लिया। किन्तु उस काल से आगे उनकी यही उपाधि सर्वमाननीय हो गई। बुद्धदेव के अन्य सारे नाम उपाधि मात्र हैं। जैसे 'शाक्य मुनि,' शाक्य जाति के ऋषि; 'शाक्यसिंह,' शाक्य जाति के सिंह वा शार्दूल; श्रमण (समनो) यती, भिक्षुक; 'सिद्धार्थ' जिसके जीवन का मुख्य अभिप्राय सिद्ध हो गया है; 'सुगत,' अर्थात् जिसका प्रादुर्भाव शुभ है; 'तथा गत,' जो अपने अग्रजों की नाईं आता जाता है; 'भगवान,' (भगवा); धन्य, प्रभु; 'सास्ता', (सत्था) गुरु; 'अशरण-शरण,' बिना आश्रय वालों का आश्रय; 'आदित्य-बन्धु,' सूर्य्य भगवान का सम्बन्धी; 'जिन,' जेता; 'महावीर,' बड़ा बलवान; 'महा-पुरुष,' 'चक्रवर्ती;' और भक्त बौद्ध उन्हें 'संसार के अधीश,' 'अधीश;' 'संसार में माननीय' 'व्यवस्था के नृपति' और 'रत्न' आदि नामों से पुकारते हैं। ये लोग शाक्य-मुनि की उपाधि ही लेना उचित समझते हैं; मुख्य नाम लेना अनुचित मानते हैं। ठीक भी है बड़ों और प्यारों का नाम बार बार लेना हिन्दू शास्त्रों में भी बुरा कहा है।

बुद्ध देव के आश्चर्य्य-मय जन्म के विषय में भी बड़ी बड़ी कहानियां हैं। पर उनका उल्लेख यहां पर करना न्याय-सङ्गत नहीं है। किन्तु बौद्धों के बीच धवलहस्ती एक पवित्र वस्तु माना जाता है और उसकी बड़ी महिमा है अतएव इसके सम्बन्ध की एक किम्वदन्ती यहां पर लिख देते हैं। जब बोधि-सत्व (बुद्ध देव) के तुशित स्वर्ग के छोड़ने और गौतम बुद्ध की नाईं पृथ्वी पर जन्म ग्रहण करने का समय आया तो वे अपनी माता के उदर में धवल हस्ती के आकार में आए। वे एक शाल वृक्ष के नीचे उत्पन्न हुए और ब्रह्मदेव ने उनको उनकी माता के पार्श्वभाग से उठाया। उनकी माता माया सात दिन के अनन्तर मर गई और यह बालक अपनी मासी महा-प्रजापती की रक्षा में, जो शुद्धोदन की दूसरी पत्नी थी, पला।

१ गौतम के विषय में यह आख्यायिका नहीं है कि उनको कुछ धर्म विषयक शिक्षा भी दी गई हो। यद्यपि क्षत्रिय होने के कारण उनको वेद के कतिपय अंशों के पढ़ने का पूर्ण अधिकार था।

और न यही वर्णित है कि क्षत्री होने के कारण उनको योद्धा की शिक्षा ही सिखाई गई हो। यह अधिकतर सम्भव है कि उनको समाधि लगाने की प्रकृति बालकपन हीं से पड़ गई हो और इस बात के सिद्धार्थ उनको घर से बाहर रहने का अवसर भी दिया गया हो।

एक कहानी प्रसिद्ध है कि एक बार बुद्धदेव के पिता के समीप उनके सम्बन्धी लोग एकत्रित होकर आए और कहने लगे कि यह आश्चर्य्य की बात है कि इस बालक को शस्त्रविद्या और व्यायाम आदि नहीं सिखाया जाता है कि जिसके कारण युवा होने पर जब उसको अपनी जाति की रक्षा के लिये शत्रुओं से युद्ध करना पड़ेगा तो वह उसमें असमर्थ होगा। इतनी बात ऐतिहासिक ही माननीय होती यदि इसमें यह न मिला दिया होता कि जब इस बालक की शस्त्रविद्या और व्यायाम आदि में निपुणता देखने के लिये एक दिन नियत किया गया तो वह बिना किसी पूर्व अभ्यास के वाण-विद्या और 'बारह कलाओं' में सब से अधिक निपुण सिद्ध हुआ।

एक बात और है जो बिना किसी सन्देह के माननीय है। वह यह है कि गौतम बुद्ध का ब्याह शीघ्र हो गया। उनकी स्त्री का नाम यशोदा था और उससे एक पुत्र, जिसका नाम राहुल था उत्पन्न हुआ। ऐसा कहा जाता है कि राहुल का जन्म बुद्ध के २९ वर्ष के होने के पूर्व न हुआ, अर्थात् उस समय के पूर्व जब तक कि उसके पिता के मस्तिष्क में सारे मानुषी अभिप्रायों की व्यर्थता, और सारे सांसारिक नातों के छोड़ने का विचार और यती-जीवन के ग्रहण करने की बलवती इच्छा न समाई। चार दृश्य, जिनसे उन्होंने संसार का परित्याग अन्त में किया वाक्बाहुल्य से परिपूर्ण हैं; किन्तु सारे बढ़ावों के होते हुए भी उनका वर्णन ऐसा रोचक और मनो-विनोदकारी है कि बिना उनका उल्लेख किए हम लोग नहीं रह सकते। अतएव मै यहां पर उनका वृत्तान्त बील साहब के अभिनिष्क्रमण सूत्र के अंगरेज़ी अनुवाद से संक्षेप करके लिखता हूं।

"एक दिन राजकुमार गौतम (बुद्ध) ने नगर के निकटवाली अपने पिता की वाटिका के देखने की इच्छा की और उनका विचार था कि वहां चल कर उस वाटिका के सुन्दर वृक्षों और पुष्पों को एक एक करके जाँचें।

मार्ग में दैवसंयोग से उनके आगे एक अङ्ग-भङ्ग दीन बूढ़ा, जिसके देहचर्म चिचुके, सिर के बाल झड़े, दांत सब टूटे और शरीर सारा दुर्बल और आगे की ओर झुका था, आया। अपने लड़खड़ाते शरीर के सम्हालने को एक लकुटी उसके हाथ में थी और वह आन कर उस मार्ग के बीच में खड़ा हुआ, जिससे होकर राजकुमार गौतम का रथ जा रहा था।

उसको देख कर सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) ने सारथी से पूछा "यह किस प्रकार का मानुषी शरीर, ऐसा दुखी और दूसरों को ऐसा दुखी करने हारा है, जिसके समान दूसरा शरीर मैंने कभी पूर्व में नहीं देखा है?"

सारथी ने उत्तर दिया, "महाराज यह वही शरीर है, जिसको लोग बूढ़ा कहते हैं।"

राजकुमार ने पुनः प्रश्न किया, "इस शब्द" बूढ़े "का यथार्थ भावार्थ क्या है?"

सारथी ने उत्तर दिया, "वृद्धावस्था का अर्थ शारीरिक बल की हानि, कार्य्य-कारी इन्द्रियों की दुर्बलता, और स्मरण-शक्ति एवम् मस्तिष्क का क्षय है। यह वृद्ध जन, जो आपके सम्मुख खड़ा है बूढ़ा है और उसका अन्त निकट आरहा है।"

फिर राजकुमार ने पूछा, "क्या यह नियम जगतव्यापी है?"

"हां," उसने कहा, "सारे जीवधारियों का ऐसाही परिणाम होता है। जो जनमा, सो मरा।"

शीघ्र ही दूसरा आश्चर्य्य-जनक दृश्य आगे आया। एक रोगी, रोग और दुःख से दुर्बल पीला और संतापित, कठिनता से श्वांस खींचने में समर्थ, मार्ग में खड़ा खड़ा थरथरा रहा था। तब राजकुमार ने अपने सारथी से पूछा, "यह दुखिया कौन है?"

सारथी ने उत्तर दिया, "यह एक रोगाक्रान्त मनुष्य है; और ऐसा रोग सब किसी को होता है।"

थोड़ी देर के अनन्तर एक मृतक शरीर को लोग टिकठी पर लिए आगे आए।

उसे देख कर राजकुमार ने पूछा, "यह अपने बिछौने पर जो आगे लिया जा रहा है कौन है? उस पर आश्चर्य रङ्ग के वस्त्र पड़े हैं और उसके चारों ओर रोते पीटते और विलाप करते मनुष्य घेरे हुए हैं।"

सारथी ने कहा, "इसी को मृतक वा मुर्दा कहते हैं। उसका जीवन समाप्त हो गया। उसमें अब सौन्दर्य्य का शेष नहीं है; और उसको कोई अभिलाषा नहीं है। उस में और प्रस्तर और काटे हुए वृक्ष में कुछ भी अन्तर नहीं है। वह जानों कोई नष्ट की हुई दीवार है; वा गिरी हुई पत्ती है। उससे अब माता पिता से वा भाई वा बहिन वा अन्य सम्बन्धियों से भेंट न होगी। उसका शरीर मर गया है और आपके शरीर का भी यही परिणाम होगा।"

अन्य दिवस जब राजकुमार दूसरे मार्ग से गया तो उसकी ओर एक मथ-मुड़ा और यती वस्त्राच्छादित जन, सोंच सोंच कर पांव रखता आगे बढ़ता उसकी ओर आता हुआ दीख पड़ा। उसका दक्षिण कन्धा खुला था, दण्ड उसके दक्षिण हाथ में था और वाम हाथ में भिक्षा मांगने का पात्र था।

राजकुमार ने प्रश्न किया, "यह धीमे धीमे और प्रतिष्ठित जनों की नाईं पांव धरता और न इस ओर न उस ओर देखता, विचार में लीन, माथ मुड़ाए और रक्त-वर्ण (पीत) का अंचला गले में डाले कौन आरहा है?"

सारथी ने कहा, "यह मनुष्य अपना काल औदार्य्य में बिताता है, और अपनी क्षुधा और अपनी शारीरिक इच्छाओं को दबाए हुए है। वह किसी को हानि नहीं पहुंचाता है, सब का हित करता है और सब के निमित्त सहानुभूति-परिपूर्ण है।

तब राजकुमार ने उसी मनुष्य से अपना भेद बताने की प्रार्थना की।

उसने तब यों कहना प्रारम्भ किया, "मैं घरविहीन यती हूं। मैंने संसार का परित्याग किया है। सम्बन्धी और मित्र छोड़ दिए हैं। मैं अपना त्राण खोज रहा हूं एवम् सारे जीव मात्र का त्राण चाहता हूं। मैं किसी को हानि नहीं पहुंचाता हूं।"

इन वाक्यों के सुनने पर राजकुमार ने अपने पितृदेव की सेवा में जा के कहा, "हे पिता! मैं परिव्राजक हुआ चाहता हूं और मेरी इच्छा निर्वाण प्राप्त करने की है। संसार की सारी वस्तुएं परिवर्तन-शील और क्षणिक हैं।"

चारों दृश्यों के विषय में, जिनका होना दैवी घटना मानी जाती है यही आख्यायिका संक्षेपतः प्रसिद्ध है। गौतम बुद्ध की शेष जीवनी, जो आख्यायिकाओं से प्राप्त होती है अत्यन्त ही रोचक है और इस में कहीं कहीं ऐतिहासिक सचाई भी पाई जाती है। अतएव हम लोग उसे संक्षेपतः नीचे पाठकों के विनोदार्थ लिखते हैं।

इन दृश्यों के घटित होने के थोड़े ही दिन पीछे बुद्ध देव को अपने पुत्र राहुल के जन्म ग्रहण करने का समाचार मिला। यही उनके जीवन का एक बड़ा उपयोगी और कठिन काल था और गौतम बुद्ध इस समाचार को सुन कर बहुत काल लों बड़े ध्यान में निमग्न होगए। उनको पुत्र का होना सब से कड़ा बन्धन जान पड़ा, कि जिससे वे परिवार और गृहस्थी में बंध जाते। किन्तु उन्होंने अपना दृढ़ संकल्प कर लिया था। "मुझको अवश्य अभी भाग जाना चाहिए। नहीं तो सदा के लिये बन्दी हो जाना पड़ेगा।" उनके चारों ओर उनके पितृदेव के प्रासाद की सुन्दर सुन्दर युवतियां एकत्रित थीं और अपनी बोली ठोली, हाव भाव कटाक्ष से उनको अपने संकल्प से हटाने का उद्योग करने लगीं। किन्तु उनका यत्न सर्वतोभाव नष्ट होगया। पुनः अपनी धर्म्म-पत्नी के प्रासाद में आप गए और उसको अपने नए जन्मे पुत्र के माथे पर हाथ धरे सोया हुआ पाया। उनकी प्रबल कामना हुई कि वे एक बेर पुनः उससे बात करें किन्तु इस भय से कि कहीं उसको सन्देह न हो, वे उलटे पांव बाहर भाग आए। बाह्यप्रान्त में उनका मनोविनोदकारी अश्व खड़ा था कि उसी के सहारे शीघ्र भाग जावें। इन्होंने अपना प्रथम कर्म्म "महा-

भिनिष्क्रमण" अर्थात् "घर से निकल जाने का कर्म्म" सफलता पूर्वक किया किन्तु ऐसा करने में उनको अन्य अन्य अधिकतर कठिनाइयां उठानी पड़ीं। क्योंकि मार (कामदेव) अर्थात् वह देव जो मनुष्यों को इन्द्रियों के सुख विलास की ओर ले जाता है उनके सम्मुख आया और उनको साम्राज्य की प्रतिष्ठा न छोड़ने का परामर्श देने लगा कि जिसमें वे पुनरपि सांसारिक जीवन के मिथ्या सुख की ओर लौट आवें।

अपने सारे जालों को निष्फल देख कर, मार ने अपने आक्रमण का आकार बदल दिया। उसने वायु-मण्डल को मारे गर्जन तर्जन से भर दिया, और उस युवक (गौतम बुद्ध) के मार्ग को बड़ी बड़ी धाराओं, ऊंचे ऊंचे पर्वतीय शृङ्गों और ज्वाला फेंकती हुई अग्निदाह की छाया से आच्छादित कर दिया। किन्तु इनमें से किसी वस्तु से वे भयभीत न हुए और न अपने संकल्प से मुड़े। उन्हों ने उच्च स्वर से कहा, "मेरा एक एक अवयव चाहे टुकड़े टुकड़े चींथ के कर दिया जाय और चाहे मैं चूल्हे में झोंक दिया जाऊं और चाहे पहाड़ में दब के चूर चूर हो जाऊं पर मैं एक क्षण के निमित्त भी अपना संकल्प परित्याग न करूंगा।"

अपने पिता की ज़मीदारी से कुछ दूर आके उन्होंने अपने वस्त्र एक भिखमङ्गे को दे दिए और उसके आप पहन लिए। फिर अपने बालों को तलवार से काटा और इस प्रकार उन्होंने अपना बाहरी आकार एक परिव्राजक का बनाया। उनकी जटा का बाल पृथ्वी पर न गिरा, किन्तु उसे देवता लोग **त्रियस त्रिंशस** स्वर्ग में लेगये और उसकी अर्चना करने लगे।

प्रथम वे राजगृह (राजगिर) में, जो मगध का मुख्य नगर था ठहरे। यही स्थल पीछे से बौद्धमत वालों का पवित्र स्थल हो गया। वहां पर वे दो ब्राह्मणों के, जिनके नाम अलार (संस्कृत आरड़-कालाप वा कालाम उपाधि सहित) और उद्रक (उद्रक वा रुद्रक, जिसे राम-पुत्त भी कहते हैं) थे, शिष्य बने। इन दोनों ब्राह्मणों ने उन्हें अपने दर्शन-शास्त्र का ज्ञान और आत्मा के विषय विचारांश सिखलाए। इस पूर्वोक्त वर्णन की सचाई के विषय में अलम् रीति से प्रमाण प्रस्तुत हैं।

भारतवर्ष भर में जितने बौद्ध धर्म्म के चिन्हावशेष राजगृह में (पटने से ४० मील दक्षिण–पूर्व की ओर) पाए जाते हैं उतने और कहीं नहीं मिलते–जिससे सिद्ध होता है कि यह बौद्धधर्म्म का सबसे बड़ा तीर्थ स्थान था और यहीं पर उसकी अत्यन्त प्रसिद्ध और माननीय घटनाएं उपस्थित हुई थीं। इस स्थान को पाली में राजगृह कहते हैं। यह विचार किया जा सकता है कि बौद्धधर्म्म और ब्राह्मणों के धर्म्म में जो सम्बन्ध पाया जाता है उसका कारण गौतम बुद्ध का इस प्रान्त के ब्राह्मणों के साथ सम्बन्ध रखना है और इन विचारों का उसमें आजाना है, जो उसने यहां पर ब्राह्मणों के बीच रहने के समय में आरम्भ में सीखे।

गौतम को ब्राह्मणों के दर्शनों (शास्त्र) में वह सुख और शांति न मिली, जिसके लिये उसकी आत्मा उसके गृहत्याग के समय प्यासी थी।

तिसपर भी अभी ब्राह्मण लोग एक और मार्ग त्राण का और परमात्मा में मिलने का बतलाते थे। यह तप का मार्ग था।

प्रारम्भिक काल से ही, ब्राह्मणों की एक बड़ी प्रचलित शिक्षा यह होती चली आई है कि शरीर को तपाने से अर्थात् दुःख देने से अन्य वस्तुओं की अपेक्षा अधिकतर पुण्य एकत्रित होता है। इसी तपस्या से अलौकिक शक्ति प्राप्त होती है, और इसीसे जीव शरीर की बन्दी से मुक्त हो कर परमात्मा में लीन हो जाता है।

इस तपस्या के रूप अनेक हैं जिनमें से एक यह है कि तपस्वी अपने चारों ओर पांच अग्नि जलाकर, ठीक ग्रीष्म ऋतु में सारे दिन उन्हीं अग्नियों के बीच एक आसन वा मञ्च पर बैठा रहता है। कभी कभी चारही अग्नि बाली जाती है और पांचवीं के स्थान पर परम प्रज्वलित ज्येष्ठ का आदित्य होता है। ऐसा कहा जाता है कि देवता लोग भी तपस्या इस अभिप्राय से करते हैं कि कहीं मनुष्य लोग इसे करके उनसे बढ़ न जावें। क्योंकि हिन्दू धर्म्म के अनुसार देवता लोग भी अपने पद से च्युत हो कर मनुष्यों को अपना स्थान देने को बाध्य हो जाते हैं, जब कि मनुष्य लोग बहुत काल लों कठिन तपस्या कर के उनसे अधिकतर सामर्थी हो जाते हैं।

अतएव हम लोगों को यह देख कर आश्चर्य्य न करना चाहिए कि जब गौतम बुद्ध को राजगृह के ब्राह्मणों के सिखाए धर्म्म के अनुसार सुख आनन्द और शान्ति मिलनी असम्भव और दुस्तर दीख पड़ी तो उन्होंने इस अपने अभीष्ट के सिद्ध्यर्थ राजगृह परित्याग कर गया की ओर उर्विला (उरुबिला) के अरण्यों में तपस्या करने के निमित्त यात्रा की।

वहां उन्होंने पांच और सन्तों के साथ अपना प्रसिद्ध षट-वर्षी व्रत प्रारम्भ किया। एक चबूतरे पर अपना पांव मोड़े, धूप, वायु, वर्षा, शीत और जाड़े से निडर बैठे उन्होंने अपना भोजन शनैः शनैः इतना सूक्ष्म कर दिया कि अन्त में वे चावल का एकही दाना खाकर रहने लगे। पुनः उन्होंने प्राणायाम करना प्रारम्भ किया पर सब का फल कुछ भी न हुआ। तनिक भी मानसिक शान्ति न मिली, और न दैवी प्रकाश हुआ। तब उनको तपस्या से प्रधान ज्ञान प्राप्त करना एक मूर्खता जान पड़ी और उससे जीवन के दुःखों और बुराइयों से छुटकारा पाना असम्भव जान पड़ा।

जैसे कोई दुःस्वप्न से उठे वैसेही गौतम बुद्ध तपस्या छोड़ कर उठे, उन्होंने भोजन किया और वे शरीर को प्राकृतिक रीति से पाल कर चङ्गा करने लगे। ऐसा करने से उनके पांचों तपसी साथी कुछ दिन को उनसे फिर गए। जब भली भांति बल होगया तो वे उसी प्रान्त के एक दूसरे स्थल में चले गए। वहां पर एक गांव में जिसे पीछे से लोग बुद्धगया पुकारने लगे एक पीपल के वृक्ष के नीचे बैठ कर उन्होंने उच्च प्रकार का ध्यान लगाया। ऐसा करने में उन्होंने ब्राह्मणों के योग का ही साधन प्रारम्भ किया। क्योंकि यद्यपि तब तक योग-शास्त्र भली भांति लेखनी बद्ध नहीं किया था तथापि ब्राह्मणों के बीच उसका प्रचार था। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि गौतम बुद्ध के समय में भी आत्मा-सम्बन्धी पूर्ण प्रकाश और परमात्मा से सम्मिलित करने के हेतु धारणा और ध्यान और योग-मार्ग की समाधि लगाई जाती थी।

किन्तु बुद्ध के ध्यान वा धारणा का फल यह हुआ कि उसको जान पड़ने लगा कि वह अद्यापि अपने संसार त्याग के एक मात्र

अभीष्ट से उतना ही दूर है जितना वह पूर्व में था । उन्होंने सोचा "तब फिर क्यों न सांसारिक ही हो जावें ?" "क्यों न फिर इन्द्रियों का सुख ही भोग करें ?" "क्यों न लौट कर घर चलें और स्त्री और पुत्र से भेंट करें ?" इसी प्रकार के विचार उनके मन में आने लगे । और साथही उनकी सारी प्राचीन प्रीति और सारे भाव दश-गुने बल से जाग उठे । तब एक दिन रात को मार ने जो इन्द्रियों के सुख का रूप और रक्षक है इस अवसर से लाभ उठाना चाहा ।

कुभावना उसके समय को ताक रही थी कि कब अवसर पावे और उस ऋषि पर आक्रमण करे । जब कि गौतम बहुत काल तक तपस्या करने से शरीर से क्षीण होगए थे और दुर्बलता के कारण उन को लालच रोकने का सामर्थ्य शेष न थी तभी इस पिशाच ने अच्छा अवसर पाया ।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि भले और बुरे, सत्य और असत्य, झूठ और सांच, विद्या और अविद्या और प्रकाश और अन्धकार के मध्य महान खींचा खींची सारे धर्म्मों में, चाहे वे कितने ही झूठे हों, मानी जाती है ।

बुद्ध देव की इस प्रकार की खींचा खींची की कहानी एवम् उन पर मार के आक्रमण का तथा उसके सारे अनुगामियों के आक्रमण का वर्णन ऐसा रोचक और अद्भुत है कि इसके अत्यन्त उपयोगी न होने पर भी हम लोग यहां पर उसे देने को बाध्य होते हैं ।

भूत और बेताल उनके चारों ओर झुण्ड के झुण्ड भयानक जीवों, कीड़ों तथा प्रेतों के आकार में अस्त्र शस्त्र से पूर्णरूप से सुसज्जित और सारे हिंसक हथियारों को लिए एकत्रित हुए । उनके लाखों मुंह देख कर डर लगता था, उनके अवयवों पर कोड़ों सांप गेडुरी बांध कर बैठे थे । और उनके शीस से ज्वाला भक भक निकल रही थी । सन्त गौतम को उन्होंने घेर लिया और उनको सहस्रों रीति से सताने लगे । सब प्रकार के फेंक कर मारने के हथियार उन पर फेंकने लगे, विष और अग्नि उन पर बर्साने लगे, किन्तु दुष्टों का विष फूलों में और अग्नि उनके माथे के इर्द गिर्द एक प्रकार के ईश्वरीय तेज में पलट जाती थी ।

हार मानकर मार ने अपनी रङ्गभूमि बदल दी। उसने अपने १६ जादू डालनेवाली कन्याओं को बुला भेजा और उनको कहा कि जाके अपना सौन्दर्य्य युवक सन्त को दिखाओ। किन्तु यह युवक यती उनके कुयत्नों में भूलनेवाला न था। वह शान्त और निर्द्वन्द्व बना रहा। उसने अपने बदन की कड़ाई के साथ उन युवतियों को उनकी ढिठाई पर घुड़का और अपमानित तथा हताश और पराजित होकर चले जाने के लिये बाध्य किया।

अन्य प्रकार की परीक्षाएं इनके उपरान्त आईं और दुर्बल यती बुद्ध का बल उसमें ठहरने के योग्य न होगा ऐसा ज्ञात होने लगा। किन्तु यह भी एक आपत्ति काल ही था, जो शीघ्र बीत जानेवाला था। एक दिन रात को बहुत देरलों समाधि लगाते लगाते और अपनी आत्मा को उठाते उठ ते उन्होंने इन अपने शत्रुओं को विजय कर लिया। विजय प्राप्त हुई और साथ ही सत्य ज्ञान का प्रकाश भी उनके मस्तिष्क में समाया। एक कहानी में लिखा है कि पहिले प्रहर में उन्होंने अपने सारे पूर्वजन्म का ज्ञान प्राप्त किया, दूसरे में वर्तमान सारी योनियों का और तीसरे में कारण और फल की कड़ी को जाना और ऊषा काल तक उनके हृदय में सारा ज्ञान स्पष्ट रीति से आगया।

वह सबेरा जिसमें उनका यह कठिन परिश्रम का काल समाप्त हुआ उनकी जन्म-तिथि का प्रातः था। गौतम की अवस्था उस समय ३५ वर्ष की थी। उसी दिन उनको बोधि-सत्व का पद प्राप्त हुआ और उनको बुद्ध अर्थात् "ज्ञानी" की उपाधि मिली। अतएव कोई आश्चर्य्य की बात नहीं है कि वह पेड़ जिसके तले उन्होंने ज्ञान और प्रकाश प्राप्त किया "ज्ञान और प्रकाश का वृक्ष" प्रसिद्ध हुआ। यह भी जानने योग्य बात है कि वह रात जिसमें बुद्ध ने ज्ञान प्राप्त किया बौद्धों की सब से पवित्र रात है और बोधि वृक्ष (अर्थात् पीपल का वृक्ष) उनका सब से पवित्र चिन्ह वैसाही प्यारा है जैसा खीष्ट-मतावलम्बियों को उनका क्रूश (जिस पर चढ़ खीष्ट ने जगत के हित के निमित्त प्राणविसर्जन किया था) और यह सत्य ज्ञान, जो उस मस्तिष्क से, जो समाधि और धारणा से ऊंचा हो गया था, क्या था?

इस अद्भुत आख्यायिका में यही सब से अद्भुत बात है । यह केवल कुछ आंशिक एक ओर ही की सचाई थी, एकही प्रकार के विचार का फल था, जिस पर बुद्ध ने उदासीनता के साथ प्रत्येक और विचार को छोड़कर ध्यान दिया था । इस जीवन की दुर्गति का ही छाया-चित्र था, इसमें दृढ़ संकल्प किया गया था कि संसार में जो सुख है उस पर ध्यान न दिया जावे । यह इस प्रकार की शिक्षा थी कि यह जीवन केवल मनुष्य के अनगिनत जीवनों की जञ्जीर की एक कड़ी मात्र है, चाहे वह जिस योनि में उत्पन्न हो दुःख ही दुःख भोगता है और इस प्रकार के दुःख से तभी त्राण प्राप्त होगा जब संयम और इन्द्रियों के निग्रह से वह रहे और सारी कामना छोड़ देवे, विशेष कर इस बात की कामना कि पुनः जन्म होवे ।

किन्तु किस प्रकार इस आभ्यन्तरिक स्व-प्राप्त प्रकाश का जो बौद्ध धर्म्म का अन्य धर्म्मों से लक्षित करने का चिन्ह है—पहिले पहिल प्रकाश हुआ । ऐसा कहा जाता है कि उस गम्भीर समय में जब कि सत्य-ज्ञान उनको प्राप्त हुआ तो बुद्ध ने ये वाक्य कहे—

"अगणित जन्मों में मैं अपने इस नश्वर शरीर (गह-कारक) के बनाने वाले को खोजता फिरा, किन्तु वह मिला नहीं—फिर फिर वही जन्म, जीवन और दुःख मेरा होता गया । किन्तु अन्ततः तू मिला—ऐ मांस के इस गृही के निर्म्माण-कर्ता ! अब मेरे लिये तुझे गृही निर्म्माण करनी न होगी । कड़ियां और धरनें चकना चूर हो गईं—और कामना (तृष्णा) के नाश के साथ पुनर्जन्म से अन्त में छुटकारा मिला । (धम्म-पद १५३, १५४, सुमङ्गल ४६)

बुद्ध के प्रथम वाक्य और उनका उत्तर (पीछे का) कथन और कर्म्म अधिकतर प्रशंसनीय है, जैसा कि दक्षिणीय धर्म्म ग्रन्थों में मिलता है ।

महावग्ग में लिखा है कि पूर्णज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त बुद्ध देव सात दिन लों पलथी मार कर पृथ्वी पर बोधी वृक्ष (पीपल के नीचे बैठे रहे और ध्यान लगाकर ज्ञान का आनन्द भोगते रहे) उस समय के पीछे, रात्रि के पहिले तीन पहर के बीच उसने अपना [illegible] जीवन के कारण पर जमाया । तब इस कारण के नियम

को जानकर उसने प्रगट भाव से कहा, "जब जीवन का कारण वास्तविक दार्शनिक पर प्रगट हो जाता है, तो उसके सन्देह दूर हो जाते हैं और सूर्य्य की नाईं वह मार की सेना को भगा देता है।"

फिर उसने अन्य सात दिन लों दूसरे बट वृक्ष के नीचे जिसे अज-पाल अर्थात् बकरियों का वृक्ष कहते हैं धारणा की। इसी स्थल पर एक अभिमानी ब्राह्मण ने यह प्रश्न किया, "वास्तविक ब्राह्मण कौन है ?" और उसको यह उत्तर मिला "बुराई और गर्व से रहित जो है, इन्द्रियों का निग्रह रखने वाला, विद्वान और पवित्र जो है।"

इसके उपरान्त उसने तीसरी बार दूसरे पेड़ के तले सात दिन लों ध्यान किया। वहां पर नाग देवता मुचलिन्द) उनकी देह में लिपट कर बैठे और उन्होंने अपना फन उनके सिर के ऊपर छाते की नाईं फैला लिया कि उन पर आतप वर्षा वात आदि का प्रभाव न पड़े-यह भी उनकी एक प्रकार की परीक्षा थी। जब यह परीक्षा समाप्त हो गई, तब बुद्ध देव ने उच्च स्वर से कहा, "उस सन्तोष प्राप्त मनुष्य का एकान्त निवास सर्वोत्तम है, जिसने "सत्य" सीख लिया और देख लिया है।"

चौथी बार बुद्ध देव ने "राजायतन" नामक वृक्ष के नीचे २८ दिन लों ध्यान लगाया। क्या ये चार बार ध्यान लगाने ध्यान के चार वर्गों के द्योतक नहीं हैं। पिछली आख्यायिकाओं में ४९ दिन कहा है।*

ज्ञान प्राप्त करने के समय से लेकर उस की घोषणा करने के लिये यात्रा करने के समय तक बुद्ध देव ने सदैव व्रत किया-क्योंकि दैवी ज्ञान प्राप्त करने से उनका भाव ऐसा उच्च हो गया था कि भोजन किसी से मांगना वे अपने पद से छोटा कार्य्य समझते थे। केवल एक बार उन्होंने भोजन "त्रपुश" और "भल्लिक" नामक वैश्यों से प्राप्त किया। ये ही दोनों जन बुद्ध देव के पहिले गृहस्थ-चेले हुए और ये ही लोग बुद्ध देव की स्तुति के दोहरे मन्त्र

---

* "ध्यान" लगाना बन में प्रत्येक स्वर्गीय दूत के विषय में लिखा है। मुसल्मानों के पैग़म्बर मुहम्मद और ख्रीष्ट ने भी इसी भांति बन में ध्यान लगाकर ज्ञान प्राप्त किया था।

का जाप और उनकी शिक्षा की स्तुति के दोहरे मन्त्र का जाप सब से पहिले करने लगे। उस समय लों "सङ्घ" स्थापित न हुआ था। एक पीछे के काल की कथा में लिखा है कि उन दोनों ने अपने इस सद्व्यवहार के पलटे में उनके ८ बालों को पाया, जिसे वे उनके स्मारक की भांति सुरक्षित रक्खे रहे। †

४९ दिन लों व्रत करने के सम्बन्ध में सर मोनियर विलियम्स साहब, जो विलायत के एक बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति थे अपनी पोथी में कहते हैं कि उन्होंने बुद्ध गया में एक प्राचीन बुद्ध देव का प्रस्तर पर खुदा हुआ चित्र देखा था, जिसमें बुद्ध देव के एक हाथ में एक पात्र धरा कर ४९ दिन के लिये ४९ भाग खीर का अर्थात् एक दिन के लिये १ भाग बनाया हुआ था।

इस वर्णन के साथ खीष्ट का ४० दिन तक आरण्य में व्रत करने का वृत्तान्त मिलाना चाहिए।

बुद्ध देव का एकान्त से निकल कर संसार में आके अपने सुसमाचार की घोषणा करना सारे बौद्धों की दृष्टि में एक बड़ी प्रसिद्ध घटना है।

इस स्थल पर यह कहना आवश्यक है कि अब जब कि उन्होंने पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया था तो उनको सब प्रकार के कर्म्मों से रहित होकर पूर्ण रीति से बुद्ध देव की शिक्षा के अनुसार चलना चाहिए था क्योंकि क्या उन्होंने अपने हृदय की सब से बड़ी अभिलाषा न पूर्ण कर पाई अर्थात् क्या उनके सारे परिश्रम का फल—उनके सारे यत्नों का सारभूत—जिसे वे अपने सैकड़ों जन्म से करते चले आते थे अब मिल न गया? अतएव अब उनको किसी और जीवन का सुख दुःख भोगना न था, और किसी और सङ्कट में पड़ना न था। संक्षेपतः उन्होंने सारे सच्चे बौद्धों के जन्म का फल पा लिया—अर्थात् उनकी इन्द्रियों के बल की और कामना की अग्नि बुझ गई और उनको अब पूर्ण निर्वाण के सुप्राप्त

---

† शरीर का कोई अंश जो प्रायः बड़े जनों के स्मारक की भांति रक्खा रहता है पूजनीय समझा जाता है। ब्राह्मण लोगों में भी प्रायः नामी लोगों के बाल इत्यादि मरते समय कतर कर बड़ी बुद्धिमत्ता से पवित्र स्थान में रख लिए जाते हैं और उनकी यथोचित प्रतिष्ठा की जाती है।

आनन्द को भोगना ही शेष रह गया था। किन्तु अपने सहयोगी जनों के सच्चे प्रेम ने उनको पुनः निवृत्ति से प्रवृत्ति में डाला। वास्तव में सर्वोच्च बुद्ध का यह लक्षण था कि वह अपने कर्म्मों से स्वयम् दयार्द्र भावों से सर्वतोभाव अनुत्सुकता और बेमन होने को, जिसके निमित्त उसी की शिक्षा उसको बाध्य करती थी, झूठा करदेवे।

किन्तु उन्होंने अपने इस उदार विचार को एक दूसरे प्रकार की परीक्षा बिना कार्य्य में परिणत न कर पाया। उनके हृदय में बुरा विचार आया; और इसका कारण, जैसा कि पिछले समय की कहानियां कहती थीं, पुनः वही पहिला मार था। मार ने कहा, "बड़े कष्ट से, हे धन्य प्रभु, आपने इस धर्म्म को प्राप्त किया। क्यों अब इसकी घोषणा करनी? वे जन, जो कामना और इन्द्रियों के चेरे हैं इसे न समझेंगे। शान्त रहिए। निर्वाण का सुख भोगिए"।

इन बुरे उपदेशों को जानों मिटाने के लिये **ब्रह्मा सम्पत्ति** देव बुद्धदेव के आगे आकर बोले, "हे निर्दोष व्यक्ति, उठ, निर्वाण का फाटक खोल। उठ, संसार की ओर देख, कि वह कैसे दुःख में डूबा है। उठ, घूम घूम कर धर्म्म की घोषणा कर।"

पहिले पहिल बुद्धदेव को अपने दोनों शिक्षागुरु आलार और उद्रक स्मरण आए। किन्तु ज्ञात हुआ कि वे मृत्यु को प्राप्त हो गए हैं। पुनः इनको वे पांचो यती स्मरण हुए, जिनको उन्होंने तपस्या से सत्य ज्ञान प्राप्त करने की रीति को छोड़ कर उदास किया था। वे लोग उस समय काशी के मृगरमने में, जिसे इसी-पत्तन कहते थे अपनी तपस्या कर रहे थे। यह प्राकृतिक बात थी कि बुद्धदेव पहिले पहिल काशी वा बनारस की ओर चलें—चाहे कोई विचार विशेष उन्हें इस ओर न भी खींचे। क्योंकि वह नगर पूर्वीय विचार और जीवन का बड़ा भारी केन्द्र था अर्थात् वह ऐथेन्स की नाईं था जहां पर सारी विशेष शिक्षाओं के सुनने वालों के मिलने की सब से अधिक सम्भावना थी।

वहां जाते समय उपक नामक एक जन, जो निहङ्ग यतियों के आजीवक पंथ का एक सभ्य था मार्ग में मिला और उसने उनसे पूछा, "आप का बदन इतना चमत्कृत (परिशुद्ध) क्यों है?" उन्होंने उत्तर दिया "मैंने सबको जीत लिया है, मैं सर्वज्ञाता हूं; मैं

निर्दोष हूं, मैं सबसे बड़ा गुरु हूं, मैं जेता हूं, मैं काशी को जाता हूं कि संसार के तम को मिटाऊं।"

पांचों यती जिनके नाम ये थे, कौण्डिन्य; अश्वजीत, वाष्प, महानाम, भद्रक, उनके वचनों द्वारा उनके मत में आए और तिहरे मन्त्र के उच्चारण करने मात्र से तुरन्त उनके पंथ के भिक्षुकों की मण्डली में भर्ती हुए। ये पांचों बुद्ध को ले के सङ्घ के अर्थात् उन मनुष्यों के समाज के, जो संसार से अलग रह कर जीवन के दुःखों से छुटकारा पाने का उपाय ढूंढ़ते हैं, प्रथम ६ सभ्य हुए। और इस प्रकार का गौतम बुद्ध का प्रथम शिक्षा-प्रद वार्तालाप हुआ। उनका प्रथम व्याख्यान धर्म्म विषय में जिसे उन्होंने काशीस्थ हरिण के रमने में दिया, बौद्धों की दृष्टि में उतना ही आदरणीय है जितना खीष्ट प्रभु के प्रथम वाक्यों को खीष्ट-मतावलम्बी लोग मानते हैं। इसे पाली भाषा में धम्म-चक्क-पवत्तन सुत्त अर्थात् धर्म्म-चक्र-प्रवर्तन-सूत्र कहते हैं। इसका भावार्थ "वह वार्तालाप है जो व्यवस्था के चक्र को गति दे" वा जो "सत्य विश्वास की जगद्व्यापी प्रभुता है।"

नीचे उस व्याख्यान का सार जैसा "महावग्ग" ग्रन्थ में लिखा है दिया जाता है। "यह लिखना उपयोगी होगा कि बुद्धदेव मगध वा बिहार की बोली जिसे अब पाली कहते हैं बोलते थे-सब किसी के साथ नहीं, किन्तु अपने पहिले पांचों भिक्षुकों के साथ।

"हे भिक्षुक लोग, दो सीमाएं हैं, जिन्हें उन मनुष्यों को उल्लङ्घन न करना चाहिए, जिन्होंने संसार त्याग दिया है-अर्थात् विषय वासना में जीवन बिताना, जो नीचकारी, तुच्छ, गंवारू, अनुत्तम, और व्यर्थ है और दूसरे अपनी आत्मा को दुःख देना (आत्म-क्लमथ), जो दुखद, अनुत्तम, और निष्प्रयोजन है। एक इन दोनों के बीच का मार्ग है जिससे ये दोनों बातें बचाई जा सकती हैं। यह बुद्ध का निकाला, उच्चजनों द्वारा माननीय आठ-पहल मार्ग है जिससे बुद्धिमानी, शान्ति, ज्ञान, पूर्णप्रकाश (सम्बोधि) कामना और दुःख से छुटकारा (निर्वाण) मिलता है।"

यहां लों कोई ठीक स्पष्ट बात नहीं है। निस्सन्देह "भिक्षी दोनों अन्त की बातों के बीच की बात है" और "मध्य के मार्ग से तुम अत्यन्त ही अभय हो कर चल सकोगे।" ऐसी शिक्षाएं लाभ कारी यद्यपि पुरानी, सत्य बाते हैं किन्तु कठिनता इस बात में है कि बुद्ध के आठ-पहल मार्ग को कैसे इस प्रकार के बीच का मार्ग सिद्ध करें क्योंकि अत्यन्त ही उत्साही धर्म्म प्रचारक सदैव अपने ही धर्म्म को चाहे वह कैसी ही व्यर्थ बातों से भरा हो शान्ति मय बतावेगा। अतएव बुद्धदेव चारों उत्तम सत्य बातों को बताता चलता है (अरीय-सच्चानी=आर्य्य सत्यानी), जो कि उसके धर्म्म मात्र की कुञ्जी हैं। उनका उल्लेख हम इस प्रकार कर सकते हैं- १-सारी योनि-अर्थात् किसी योनि में जन्म-चाहे संसार में हो वा स्वर्ग में हो-अवश्यमेव दुःख दर्द से युक्त है। २-सारे दुःख का कारण राग और तृष्णा है। तृष्णा तीन प्रकार की होती है, इन्द्रियों के सुख की, (काम-सम्बन्धी), धन की (वैभव) और जीवन की (भव)। ३-काम, धनकामना और जीवन की इच्छा के नाश होने के साथ साथ दुःख का अन्त होता है। ये बातें उत्तम आठ-पहल मार्ग में चलने की धुन लगाने से (अरियो अट्ठङ्गि को मग्गो), अर्थात् सत्य विश्वास वा विचार अर्थात् सब को बराबर देखना (सम्मादिट्ठी), सत्य सङ्कल्प, सत्य भाषण अर्थात् ठीक ठीक बोलना, सत्य कर्म्म (कमरायें), सत्य जीविका, सत्य व्यायाम (वायामो), सत्य स्मरण (सति) और (सत्य समाधि) से प्राप्त होती हैं।

और किस प्रकार सब योनि केवल दुःख मात्र है?

"जन्म में दुःख, बुढ़ापे में दुःख, रोग-ग्रस्त होने में दुःख और उन वस्तुओं के (सम्पयोगा) सम्प्रयोग से जिन से हम को घृणा है दुःख होता है। अपनी चाही हुई वस्तु को न पाना दुःख है। जीवन के पांच तत्वों से मेल (उपादान) दुःख है। तृष्णा का सम्पूर्णतः नाश दुःख का नाश है। यही दुःख की उत्तम परिभाषा है।"

यही व्याख्यान (जिसे लङ्का में प्रथम "बण"-भाण, कथा कहते हैं) भिक्षुकों के सम्मुख दिया गया, और चाहे इसकी तुलना

स्रोष्ट के व्याख्यान से ठीक ठीक न की जा सके जो कि भिक्षुओं को नहीं किन्तु दुखी पापियों को सुनाया गया था और चाहे यह विचार कैसा ही स्पष्ट हो कि दुःख दर्द, काम और कामना के फन्दे में अनेक योनि में जन्म लेने के काल से पड़ने से ही उत्पन्न होता है परन्तु यह बड़ा ही रोचक है, क्योंकि इसमें उस मनुष्य की पहिली शिक्षा है, जो चाहे "एशिया का सूर्य्य" कहने के योग्य न होने पर भी संसार का एक अत्यन्त ही सफलीभूत शिक्षक था।

हृदय में विचार करो कि बुद्ध ने अपने प्रथम विचार (ध्यान) के फल की नाईं काम के पूर्व मूर्खता का होना जीवन के दुःख का मूल कारण माना है।

निःसन्देह सारे व्याख्यान का वास्तविक अभिप्राय "सत्य" शब्द के भावार्थ पर अठपहल मार्ग के वर्णन में है। "सत्य" के अर्थ में पाली भाषा में "सम्मा-सम्यक" लिखा है। स्पष्ट अर्थ "सत्य विश्वास" का बुद्ध और उसके धर्म्म का विश्वास है। "सत्य संकल्प" का अर्थ अपनी स्त्री और कुल का परित्याग है; क्योंकि यही सर्वोत्तम रीति इन्द्रियों की प्रबलता के रोकने की है। "सत्य भाषण" का अर्थ बुद्ध की धर्म्म शिक्षाओं का पठन पाठन है। "सत्यकर्म" भिक्षुक का कर्म है। "सत्य जीवन वृत्ति" भिक्षुक की नाईं भिक्षा मांग कर खाना है; "सत्य व्यायाम" अपनायत का दबाना अर्थात् अहङ्कार का दबाना है। "सत्य स्मृति" शरीर की अशुद्धता और नश्वरता का स्मरण है। "सत्य समाधि" ध्यान में सर्वतोभाव लीन होना है।

इस बात को समझ लो कि जीवन के दुःख को वर्णन करते समय प्यारी वस्तुओं का मेल घृणित वस्तुओं के साथ सम्बन्ध रखने के दुःख का पलटा नहीं कहा गया है।

बुद्ध के पहिले अनुयायी दरिद्र जन नहीं थे; क्योंकि छठें सङ्घ में समावेशित किया गया है एक उच्च-कुल-सम्भूत युवक जो 'यश' नामक था। इसके उपरान्त इस युवक का पिता. जो एक धनाढ्य वणिक था पहिला गृहस्थ चेला तिहरे अर्थात् त्रिपदी मन्त्र को उच्चा-

रण कर के हुआ; और उसकी माता और स्त्री उनकी प्रथम गृहस्थ चेलिन हुईं। इसके उपरान्त चार उच्च कुल वाले यश के मित्र और उसके पीछे पचास और मनुष्य भिक्षुक हुए। इस प्रकार प्रथम व्याख्यान के कुछ दिन पीछे, गौतम के ६० गिने हुए भिक्षुक चेले हो गए। ये सब बड़ी जाति के लोग थे।

जब बुद्धदेव ने इन साठ भिक्षुकों को अपने सुसमाचार (अर्थात् धर्म्म की शिक्षा) की जो जाग के विषय थी घोषणा करने के लिये भेजा तो उन्होंने इस प्रकार उनसे कहा—"मैं सारे बन्धनों से, चाहे वे मनुष्य के हों वा ईश्वर के हों छुटकारा पा गया। हे भिक्षुक लोग, आप लोग भी उन बन्धनों से मुक्त हो गए। जाइए और चारों ओर संसार की माया और देवताओं और मनुष्यों के लाभार्थ घूमिए। एक एक कर के आप लोग सब दिशाओं में जाइए। धर्म्म को जो आदि, मध्य और अवशान में तथा अपने अर्थ और व्यञ्जन में कल्याणकारी है घोषित करो। पूर्ण निग्रह शुद्धता और ब्रह्मचर्य्य के जीवन की घोषणा करो। मैं भी इसी धर्म्म के प्रचारार्थ जाता हूं।" (महावग्ग)

जब गौतमबुद्ध के भिक्षुक-धर्म्मदूत लोगों ने प्रस्थान किया तो गौतम भी चले; पर उनकी यात्रा के पूर्व एक बार फिर मार (काम) ने उन्हें परीक्षा में डाला। बनारस छोड़ कर वे उरुबिला में, जो गया के निकट है, गए। उन्होंने वहां पर पहिले ३० नवयुवक लोगों को और फिर १००० धर्म्म के पक्के ब्राह्मणों को अपना शिष्य बनाया। ये ब्राह्मण कश्यप और उनके दो भाइयों की आधीनी में थे जिनका एक यज्ञकुण्ड था। इस अग्निकुण्ड वाले गृह में एक क्रोधी सर्पाकार प्रेत रहता था। अतएव बुद्ध ने कहा कि रात भर मैं इस गृह में रहना चाहता हूं। आज्ञा पाने पर बुद्धदेव उस गृह में गए, सर्प-देव अर्थात् प्रेत से लड़े और उसको अपने भिक्षा मांगने के पात्र में बन्द कर लिया। इसके उपरान्त उन्होंने अन्य अलौकिक कर्म किए जिनकी संख्या ३५० थी, जैसे कि जल प्रवाह को अपने वचन से पीछे हटा दिया, लकड़ी को दो टुकड़े कर दिया और अग्निमय वर्त्तनों को निकाला। कश्यप और

उनके भाई लोग, उनके अलौकिक बल को जान कर अन्य ब्राह्मणों के साथ बुद्धदेव के सङ्घ के सभ्य बने। इस प्रकार बुद्धदेव ने लगभग एक सहस्र भिक्षुक अपने साथ बटोरे। उन लोगों को गया के निकट एक पहाड़ी पर जिसका नाम गयासीस था उन्होंने अपना ज्वलन्त अग्नि-विषयक व्याख्यान सुनाया। उन्होंने कहा, "हे भिक्षुको, सब वस्तुएं जलनेवाली हैं (आदीप्तम्)। नेत्र जल रहे हैं या प्रकाशित हैं। सूझने वाली वस्तुएं जल रही हैं। वह भावना, जो सूझने वाली वस्तुओं के स्पर्श से उत्पन्न होती है जलने वाली है। कर्णेन्द्रिय जल रही है। शब्द जल रहे हैं। नाक जल रहा है। गन्ध जल रहे हैं। जिह्वा जल रही है। स्वाद जल रहा है। शरीर जल रहा है। इन्द्रियों से जानने योग्य वस्तुएं जल रही हैं। मस्तिष्क जल रहा है। विचार जल रहा है। सब वस्तुएं काम और क्रोध से जल रही हैं। हे भिक्षुको, इसे देख कर, एक बुद्धिमान और उत्तम शिष्य नेत्र से थक जाता है, प्रकाश्य वस्तुओं से थक जाता है; कर्ण, शब्द, सुगन्ध, दुर्गन्ध स्वाद, शरीर और मस्तिष्क से थक कर घृणा करने लगता है। थकित होकर वह अपने को काम और क्रोध से मुक्त करता है। जब मुक्त हो जाता है तब उसको जान पड़ता है कि उसका अर्थ सिद्ध हो गया। उसने इन्द्रियों का निग्रह और ब्रह्मचर्य्य से जीवन व्यतीत किया और पुनर्जन्म का बखेड़ा उसके लिये छूट गया।"

ऐसा कहा जाता है कि यह अग्नि-व्याख्यान, जो निर्वाण के अर्थ की कुञ्जी है, अग्निदाह लीला के देखने से ध्यान में उपस्थित हो आया। वे सारे जीवन को अग्नि को ज्वाला के समान मानते थे और इस व्याख्यान का सार कामाग्नि को बुताने का धर्म्म और उसके साथ ही सारे जीवन की अग्नि का बुताना है और भिक्षुकपने की उपयोगिता और ब्रह्मचर्य्य इस अभिप्राय के सिद्धार्थ हैं।

ख्रीष्ट ने भी पर्वत पर अपने शिष्यों के मध्य इस विषय पर व्याख्यान दिया था। उन्होंने कहा था—"वे ही धन्य हैं जो हृदय के शुद्ध हैं, क्योंकि वे ही ईश्वर को देखेंगे।"

बुद्धदेव और उनके अनुयायी इसके उपरान्त राजगृह को गए। उन चेलों के बीच दो मनुष्य अग्र-श्रावक अर्थात् मुख्य चेले सारिपुत्र और मग्गलान थे जो आगे मर गए थे और ८० बड़े शिष्यों में १६ अग्र-गण्य जन थे जिन्हें महा-श्रावक कहते थे, जिनमें कश्यप (महा-कश्यप) उपाली और आनन्द (भतीजा) मुख्य थे और इनके अतिरिक्त अनुरुद्ध (दूसरे भ्रातृज) और कात्यायन थे। निस्सन्देह ८० भिक्षुकों के बीच पांच पहिले के बनारस वाले चेले भी आ गए हैं। पीछे से दो मुख्य स्त्रियां चेलिन (अग्र-श्राविका), जिन के नाम खेमा और उप्पलवा (उत्पलवर्णा) थे, इन शिष्यों में मिलाई गईं।

पीछे से प्रत्येक मुख्य चेले को "स्थविर" "आर्य्य-जन" या महा-स्थविर "बड़ा आर्य्य-जन" कहने लगे। इस विषय पर भी ध्यान दो कि बिम्बिसार, मगध का राजा। और प्रसेनजीत (पसेनदी), कोशल के राजा गौतम-बुद्ध के गृहस्थ चेले थे और सदैव उनके सङ्घ की भलाई करते थे।

थोड़े दिनों के उपरान्त और नियमानुसार बुद्धदेव के अनु-यायी लोग भिक्षुकों की सम्प्रदाय में भरती होने लगे और उनकी रीति भांति के नियम बांधे गए। और निस्सन्देह बौद्धधर्म्म की सफलता इसी प्रकार के सङ्घ के नियम करने और सब को शरण देने के विचार के कारण ही हुई।

गौतमबुद्ध के बुद्ध को दशा को प्राप्त करने और मरने के बीच लगभग ४५ वर्ष बीते। इस समय के बीच वे सदा शिक्षा देते रहे और अपने शिष्यों को साथ लेकर धर्म्म के लिये घूमते रहे। केवल वर्षा काल में ठहर जाते थे। उनके ठहरने की जगहों के ४५ नामों की सूची दी है।

वे प्रायः श्रावस्ती में बहुत कर के रहते थे। वहां पर जेत-वन के मठ में, जिसे अनाथ-पिण्डीक ने दिया था उनका बहुत काल बीतता था। किन्तु श्रावस्ती से लेकर राजगृह लों, ३०० मील का प्रदेश उनके भ्रमण के अन्तर्गत ही था। राजगृह के निकट गिद्ध-कूट और वेलु-वन (बंसवारी) में प्रायः वे अपना काल यापन करते थे। किन्तु सदा सर्वदा, वर्षा ऋतु को छोड़

कर, भ्रमण करना ही धर्म फैलाने का एक मुख्य उपाय था।

ऐसा कहा जाता है कि उनकी मृत्यु कुसीनगर (आजकल के कसया-जो गोरखपुर से ३५ मील पूर्व है और जो उस ज़िले का एक प्रसिद्ध सब-डिविज़न है) में, जो उन के जन्मस्थान कपिलवस्तु से ८० मील की दूरी पर है ८० वर्ष की अवस्था में क्रीष्ट के लगभग ४२० वर्ष पूर्व हुई।

ऐसा कहा जाता है कि बुद्धदेव की मृत्यु बहुत अधिक शूकर का मांस खाने से हुई। यह बात उनके पद के लिये बहुत ही छोटी है, अतएव ऐसा जान पड़ता है कि इस कथा को किसी ने मनमाने गढ़ लिया है लेकिन इस गढ़न्त से भी ऐसे मनुष्य को जो कहता है कि, "किसी जीवधारी को न मारो" जीव हिंसा का दोष नहीं लग सकता, क्योंकि यदि वह स्वयम् हिंसा का दोषी हो जाता तो अपने अनुयायियों के लिये एक बुरा आदर्श बनता।

जब बुद्धदेव को जान पड़ा कि अब उनका अन्त निकट है तब वे इस प्रकार कथन करने लगे-

"हे आनन्द, मैं अब वृद्ध हो गया और मेरी आयु बहुत हो गई, और मेरी (भव) यात्रा का अब अन्त होना चाहता है। मैं अस्सी वर्ष का हो गया, जो मेरे जीवन का पूर्ण समय निश्चित था और जैसे गाड़ी, जो पुरानी होने से घिस गई है बड़ी सावधानी ही से आगे को चलाई जा सकती है तैसे ही मेरा शरीर कठिनता से चलाया जा सकता है। केवल जब मैं ध्यान में निमग्न हो जाता हूं तभी मेरे शरीर को चैन मिलता है। भविष्य में आपही अपने प्रकाश बनो, आपही अपनी शरण हो, दूसरा शरण न खोजो, सत्य को अपने पंथ का अन्धकारमय जगत में दीपक मान कर दृढ़ता से उसीको शरण किए रहो, सत्य को अपना शरण मान कर दृढ़ता से पकड़े रहो, किसी और को अपने अतिरिक्त अपना शरण न मानो। (महा-परिनिब्बान सुत्त)

अपने अन्तिम व्याख्यान के थोड़ी देर पीछे बुद्ध देव जो पहिले ही कठिन धारणा से निर्वाण प्राप्त कर चुके थे अर्थात् जिनकी कामना

को अग्नि बुझ गई थी धारणा की चार अवस्थाओं में गए और तब परिनिर्वाण का काल आया और जीवनाग्नि भी बुझ गई । दो साल के वृक्षों के बीच एक खाट पर दक्षिण ओर पैर कर के वे लुलाए गए । जो चित्रकारी, उनके मरण काल की बनाई गई है उसमें वे दहिने करवट मरने के समय दिखाए गए हैं और उनकी इस मूर्ति की बड़ी प्रतिष्ठा की जाती है ।

कुसी नगर के बड़े लोगों ने चक्रवर्ती राजा के मरने पर जो क्रियाएं होती हैं उन क्रियाओं के साथ उन्हें जलाया—क्योंकि बुद्ध देव अपने को यही मानते थे । पुनः उनकी चिता की राख आठ राजाओं के बीच बांटी गई—जिन्हों ने उन्हें गड़वा कर उन पर स्तूप बनवाए । (बुद्ध-वंश)—

एक आख्यायिका में लिखा है कि जब बुद्धदेव मरे तब एक भूडोल आया । तब ब्रह्मा और इन्द्र प्रगट हुए और इन्द्र ने कहा, "जीवन के सारे तत्व क्षण-भङ्गुर हैं । जन्म और जरा उनकी प्रकृति हैं । वे उत्पन्न होती हैं और विलग विलग हो जाती हैं । तब यही सुख है कि पुनः जन्म न हो ।"

भूगर्भ विद्या ।

(बाबू ठाकुर प्रसाद लिखित ।)

मनुष्य के जीवन में खाने और पहिनने के सिवाय सब से अधिक आवश्यक वस्तु मनुष्य के लिये उसके रहने का स्थान अर्थात् घर है । जितने अच्छे और मज़बूत घर बनाए जाते हैं वे सब प्राय: पत्थरों ही के होते हैं । जब हम इन पत्थरों को देखते हैं तो ये नाना प्रकार और कई जाति के देखने में आते हैं । पत्थर पहाड़ों और खानों से निकाले जाते हैं । खानों में से नाना प्रकार के पदार्थ निकलते हैं जैसे पत्थर, खड़िया, रत्न, धातु इत्यादि । ये सब पदार्थ भूगर्भ ही से निकलते हैं । इन सब पदार्थों के अनेक प्रकार के रूप, रंग और बनावट होने से इन के भिन्न भिन्न नाम और जातियां हैं । यद्यपि ये सब भिन्न भिन्न पदार्थ हैं पर इनका उत्पत्तिस्थान भूगर्भ ही है ।

केवल पत्थर ही को लेकर देखें तो वे अनेक भांति के देखने में आते हैं, जैसे रेतीला पत्थर, संगमर्मर, संगमूसा, संगसीमाक, दूधिया, पत्थर-का-कोयला, स्लेट इत्यादि । इसमें सन्देह नहीं कि किसी काल में ये सब मुलायम द्रव्य हो रहे होंगे जो अब कठोर होकर शिला होगए हैं । ये द्रव्य कहां से आए, कैसे और कितने काल में शिला होगए और इसके अनेक रंग रूप और जातियां कैसे हुईं इस विषय का वर्णन और युक्तिसिद्ध कल्पना जिसमें हो उसे भूगर्भ विद्या कहते हैं ।

हम पहिले पत्थरों ही के विषय में विचार करते हैं । पत्थर कई रंग, रूप और जाति के होते हैं । जब इनको छांट छांट कर हम इनका "वर्ग विभाग" (Classification) करना चाहते हैं तो बड़ी कठिनता पड़ती है । यदि इनके रंगों के अनुसार इनका वर्ग-

विभाग करते हैं तो हम देखते हैं कि एक बलुआ-पत्थर (Sandstone) ही कई रंग का होता है, कोई मटमैला, कोई लाल, कोई श्यामइत्यादि। वास्तव में इनका विभाग (Division) रंग के अनुसार करना अनुचित है। इसी प्रकार कड़े और नरम पत्थर के अनुसार यदि हम इनका विभाग करने लगें तोभी ठीक नहीं होता क्योंकि एक ही पत्थर का टुकड़ा कहीं नरम और कहीं कठोर होता है। अत एव रंग और रूप, और नरमाई और कड़ाई के अनुसार वर्गविभाग करने में न तो कोई नियम ही बन सकता है और न यह विभाग ठीक हो सकता है। अब प्रश्न उठता है कि इनका विभाग किस नियम से किया जाय?

यदि हम किसी पुस्तकालय में बैठ कर पुस्तकों का वर्गविभाग करें तो उनके आकार, रूप और रंग के अनुसार उनका विभाग करना अनुचित होगा। पुस्तकालय में अनेक प्रकार की पुस्तकें होती हैं, कोई छोटी, कोई बड़ी, कोई छपी हुई, कोई हस्त-लिखित, कोई चित्रवाली, कोई बेचित्र की, कोई लाल रंग की, कोई अन्य रंगों की, पर इन का विभाग इन के रंग, रूप, आकारादि के अनुसार नहीं किया जाता किन्तु उनके मूल-विषय के अनुसार उनका विभाग होता है। जैसे गणित विषय की जितनी पुस्तकें होंगी चाहे वे कैसी आकार वा रूप की हों, चाहे वे सरल किंवा उच्च और कठिन गणित की हों परन्तु उन सब की 'गणित' विभाग में ही गणना रक्तजायगी। इसी प्रकार पत्थरों के विभाग उनके रंग, रूप, कठोरतादिइत्यादि के अनुसार न करके यदि उनकी बनावट और उनके मूल-तत्त्व के अनुसार उनका वर्ग-विभाग करें तो उत्तम और ठीक होगा। इस नियम को ध्यान रख कर यदि उनके विभाग किए जांय तो उनके वर्गों की संख्या भी बहुत न बढ़ेगी।

समझने के लिये इस समय तीन प्रकार के पत्थर के टुकड़े लिए जाते हैं—

(१) बलुआ पत्थर का टुकड़ा (a piece of sandstone)

(२) खड़िया ... ... (a piece of chalk)

(३) ग्रानाइट ... (a pieceo fg ranite)

इनकी परीक्षा, इनके मूल तत्व और बनावट के अनुसार वर्ह के नीचे लिखी है, जिससे मालूम होगा कि उक्त तीनों प्रकार के प्रस्तर खण्डों में क्या भेद है।

(१) बलुआ पत्थर।

बलुआ पत्थर मोटी वा महीन रेत का होता है। यदि बहुत महीन रेत का एक टुकड़ा हो तो इसकी परीक्षा सूक्ष्म-दर्शक (microscope) द्वारा करेंगे और मोटे रेत वा कण के पत्थर के टुकड़े की परीक्षा योंही कर सकते हैं। इन दोनों में सिवाय मोटे और महीन कण के कोई अधिक भेद नहीं पाया जाता। केवल रंगों का भेद होता है। पर यह रंग उनके वर्ग-विभाग करने में जैसा कि हम पहिले लिख आए हैं विशेष लाभदायक नहीं है। इनसे केवल शाखा भेद वा जाति भेद (kind) माना जा सकता है। वास्तव में ये सब बलुए पत्थर ही हैं चाहे वे किसी रंग वा आभा के हों।

(पहिला चित्र देखो)

अब इस पत्थर के एक टुकड़े को ध्यान पूर्वक देखने से पाया जाता है कि-

(१) यह टुकड़ा छोटे छोटे कणों के आपस में जुट जाने से बना है।

(२) ये कण जिनसे यह पत्थर बना है कुछ न कुछ गोल मटोल घिसे हुए हैं।

(३) यदि इसको खुर्चे तो इसके कण पृथक पृथक हो जांयगे जो बालू सरीखे देखाई देंगे। यदि इस पत्थर का कुछ अंश खुरच कर एक काग़ज पर इकट्ठा कर लें तो यह ठीक ऐसा ही देखाई देता है मानो गंगाजी की थोड़ी सी रेत लाकर किसी ने रख दी है।

(४) इस पत्थर को ध्यानपूर्वक देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसके कण सरल पंक्ति में सटे हुए मानों समानान्तर रेखाएं बनाए हुए हैं।

(५) इन कणों को देखो तो कई प्रकार के देखने में आते

हैं कोई छोटे, कोई बड़े, कोई श्वेत और कड़े, कोई कांच की नाई बेरंग और कोई चांदी से चमकदार और बहुतेरे नरम रंग बिरंग के हैं।

(६) इन कणों को यदि एक गिलास पानी में घोल दें तो ये कण शीघ्र नीचे बैठ जाते हैं।

उक्त परीक्षा करने पर यदि प्रश्न किया जाय कि यह पाषाण खण्ड कैसे बना है तो अवश्य यही उत्तर होगा कि इन्हीं कणों के आपुस में चिमट कर कठोर हो जाने से यह पाषाण बना है। किसी पत्थर में तो ये कण ऐसे सटे होते हैं कि सहज ही में अलग अलग हो जाते हैं और किसी में कठिनता से, पर प्रायः ये कण एक प्रकार के चिपकाने वाली वा श्लेषक (Cement) वस्तु से जुटे रहते हैं जो पत्थर को अधिक कठोर बनाती है। इन्हीं द्रव्यों के कारण पत्थर में रंग आता है। ये द्रव्य लाल, पीले, हरे, बैंजनी वा काले रंग के होते हैं।

इस परिक्षा से मालूम हुआ कि बलुआ पत्थर अन्य पत्थरों के घिसे हुए गोलप्राय कणों के एकत्रित होकर सट जाने और कठोर हो जाने से बना है।

(२) खड़िया।

खड़िया भी एक प्रकार का मुलायम पत्थर ही है। साधारण रूप से देखने में तो इस खड़िया की बनावट में कोई विशेषता नहीं प्रगट होती, केवल इतना जान पड़ता है कि यह श्वेत और ऐसे मुलायम घिस जाने वाले कणों से बनी है कि जो छूने ही से उंगलियों में लग जाते हैं और सूक्ष्म होने के कारण ये कण अलग अलग दिखाई नहीं देते। इसके देखने के लिये सूक्ष्मदर्शक यंत्र की सहायता लेनी पड़ती है। यदि कूंची से इसका कुछ अंश घिस डालें और धूल से जो कण निकलें उन्हें स्वच्छ और निर्मल जल में घोल दें तो कुछ देर में धीरे धीरे ये कण नीचे बैठ जायगे और जल ज्यों का त्यों फिर निर्मल हो जायगा। अब इस जल को सावधानी से गिरा दें जिसमें नीचे बैठे हुए कण न गिरें और तब इस तलछट को सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा देखें तो निम्न लिखित विशेषता पाई जाती है।

(दूसरा चित्र देखो)

(१) ये सब कण एक ही रंग के अर्थात् श्वेत हैं। पर कणों के आकार एक समान नहीं हैं, कोई गोल, कोई लम्बा, कोई बेडौल अर्थात् अनेक आकार के हैं।

(२) इस के कण न तो बलुए पत्थर के कणों से और न ग्रानाइट से मिलते हैं (जैसा आगे चलकर मालूम होगा)।

(३) इन कणों के रूप और आकार से पाया जाता है कि वे सीप, कौड़ी, घोंघे और मूंगों के भाग हैं। प्रायः ये कण एक प्रकार के क्षुद्र शम्बुक जन्तुओं के घोंघों से बने हैं जिसे अङ्गरेजी में फोरामिनिफेरा (Foraminifera) कहते हैं। उत्तम सूक्ष्मदर्शक यंत्र में ये क्षुद्र शम्बुक वा घोंघे स्पष्ट देखाई देते हैं।

(४) इन कणों के सटने में कोई क्रम नहीं है। कोई कण खड़ा ही चिपका हुआ है और कोई तिरछा। इन कणों की पंक्तियां भी एक सीध में नहीं हैं।

उक्त जांच और परीक्षा से विदित हुआ कि खड़िया जल-जन्तु अथवा किसी न किसी जीव के कवकड़ों वा हाड़ के कणों के इकट्ठा होकर सटजाने से बनी है।

(३) ग्रानाइट।

यह एक प्रकार का कड़ा पत्थर होता है। इसकी बनावट विलक्षण होती है। इसके एक टुकड़े को खूब तेज़ छूरी से ही खुरच सकते हैं। खुरचने पर जब इसके कणों की परीक्षा की जाती है तो उसका फल यह निकलता है—

(१) इसके कण घिसे हुए गोल नहीं हैं।

(२) इसके कण तीन भिन्न जातियों के हैं और इन तीनों के आकार और धर्म्म भी भिन्न भिन्न हैं अर्थात्—

(क) एक प्रकार के कण अभरक से चमकदार और नरम होते हैं जैसे कि बलुए पत्थरों में वा बालू में सितारे वत वा टिकुली वत चमकते देखाई देते हैं।

(ख) दूसरे प्रकार के कण चिकने, कड़े, पहलदार और चोखे

होते हैं जो कठिनता के साथ तेज़ धारदार छूरी से खुरचे जा सकते हैं। इनको 'फेनोपल'* (Felspar) कहते हैं।

(ग) तीसरे प्रकार के कण स्वच्छ और कांचवत चमकदार होते हैं। ये इतने कठोर होते हैं कि तेज़ सी तेज़ छूरी से खुरचना क्या उन पर चिन्ह भी नहीं बनाया जा सकता, इसको 'स्फटिक' (Quartz) कहते हैं। रेत के बहुधा कणों में यह पाया जाता है।

(३) ये स्फटिक कण (Crystals) आपुस में किसी विशेष क्रम से नहीं सटे रहते किन्तु टेढ़े मेढ़े बिना क्रम के ही आपुस में चिमटे रहते हैं।

(४) बनावट में कोई विशेष क्रम न होने के कारण बलुएँ पत्थर से इसकी विभिन्नता पाई जाती है।

उक्त बातों से (ग्रानाइट) गण्डोपल की परिभाषा यों कर सकते हैं कि यह ऐसा पत्थर है जिसकी बनावट बिना किसी विशेष क्रम के कठोर कलमी टुकड़ों (Crystals) के सट जाने से होती है।

(तीसरा चित्र देखो)

जितने पत्थर हैं उनके मूल-तत्व और उनकी बनावट प्रायः इन्हीं तीन प्रकार की मिलेगी। पत्थरों की बनावट अधिकतर बलुए पत्थर से मिलती जुलती है। संक्षेप में इनकी परीक्षा करने का ढंग मालूम होगया पर जब हम उनके वर्गविभाग का नाम रखते हैं तो सब को बलुआ पत्थर ही कहना ठीक नहीं जान पड़ता, चाहे उनकी बनावट उससे मिलती जुलती क्यों न हो। यह उनका जातिविभाग कहला सकता है पर इनका वर्गविभाग ऐसा होना चाहिए जिसमें कोई भ्रम न हो और जातिधर्म सभी उसके अन्तर्गत आजावें। अतएव उक्त तीनों भिन्न बनावट और तत्व वाले पाषाण के तीन नाम नीचे लिखे जाते हैं।

---

* (Helspar) (फेल्स्पार) ज्वालामुखी पहाड़ों से गले हुए द्रव्य के समान निकलकर और बह बह कर जम जाता है। इस लिये यह द्रव पदार्थ ज्वालामुखी का 'फेन' कहा जा सकता है और 'उपल'=पत्थर इन दोनों शब्दों से 'फेनोपल' बनाया गया है। इसे 'फलोपल' भी कह सकते हैं क्योंकि यह नोकदार, पहलदार होता है।

(१) गादीयशिला (Sedementary Rocks)

(२) तनूद्भवशिला (Organic Rocks)

(३) आग्नेयशिला (Igneous Rocks).

उक्त नामकरण के हेतु तत्तद विषय के वर्णन में दिए जांयगे। किसी क़िस्म का पत्थर हो पर हम लोग उसके बड़े बड़े टूकड़े वा भाग को 'शिला' वा 'चट्टान' ही कहते हैं। यहां स्मरण रहे कि भूगर्भ शास्त्र में बालू, मिट्टी, कीचड़, पत्थर का-कोयला इत्यादि भी कठोर होने पर शिला (Rocks) ही कहलाते हैं।

(१) गादीय शिला*।

किसी गिलास में निर्मल जल लेकर यदि इसमें थोड़े गिट्टक वा कंकड़ियां डाल दें तो ये कंकड़ियां झट पट नीचे बैठ जांयगी और जब गिलास को हिलावेंगे तब वे जल के साथ कुछ उठ आवेंगी और ज्योंही जल स्थिर होने लगेगा वे नीचे बैठने लगेंगी। अन्त में सब नीचे बैठ जांयगी। यह 'कंकड़ीदार वा रोड़ेदार गाद' (Sedement of gravel) हुई।

इसी प्रकार दूसरे गिलास के जल में बालू घोल दें तो यह बालू धीरे धीरे नीचे जमने लगेगा और थोड़ी देर में उसकी सब नीचे बैठ जायगी। यह 'बालू की गाद' (Sedement of Sand) हुई।

अब फिर तीसरे गिलास में मिट्टी घोल दें तो धीरे धीरे कुछ देर में यह मिट्टी नीचे बैठ जायगी और जल निर्मल होजायगा। यह मिट्टी की परत जो नीचे बैठ गई है 'मिट्टी की गाद' (Sedement of Mud) है।

इन परीक्षाओं से ज्ञात हुआ कि गाद के कण जितने ही मोटे और भारी होंगे उतनीही जल्दी नीचे बैठेंगे और जितने ही महीन होंगे उनके नीचे बैठने में उतनीही देर लगेगी अर्थात ज्यों ज्यों

---

* 'गादीय' शब्द गाद से बना है। गाद तलछट को कहते हैं जो जल या किसी द्रव पदार्थ में की घुली हुई होती है और जल के स्थिर होने पर नीचे बैठ जाया करती है। जो पत्थर गाद से बना हो उसे गादीय शिला कह सकते हैं।

जल में स्थिरता होती जायगी छोटे और महीन कण नीचे एकत्रित होने लगेंगे। इन्हीं तीन क्रमों से 'गादीय शिला' की बनावट होती है। इस लिये गादीय शिला तीन प्रकार की होती है—

(क) रोड़ेदार शिला (Conglomerate).

(ख) रेतीली शिला (Sandstone).

(ग) पङ्क शिला (Shale).

शिलाओं के तीन वर्ग-विभाग जो ऊपर लिखे जा चुके हैं उनमें से एक गादीय शिला ही तीन मुख्य जाति की है। अब यह देखना है कि ये सब कहां से और कैसे बने हैं।

(चौथा और पांचवां चित्र देखो)

रोड़े और बालु इत्यादि कहां से आते हैं ?

इस प्रश्न का उत्तर हमको पूर्वरचित पहाड़ और नदियां भली भांति देती हैं। यह बात सभी लोग जानते हैं कि बरसात में नदियां और नाले बड़े वेग से बहते हैं और अन्य ऋतुओं में वेही नदियां धीमी और मन्दगामिनी हो जाती हैं। नदियों से अभी कुछ न पूछिए। आइए तनिक पहाड़ों की ओर चलें। पहाड़ों पर जाकर हम देखते हैं कि समस्त पहाड़ प्रायः एक प्रकार के पत्थरों के हैं। ऐसा बहुत कम देखने में आता है कि कहीं एक प्रकार की चट्टान है और कहीं अन्य प्रकार की। ध्यानपूर्वक देखने पर कहीं दरारें देखाई देती हैं, कहीं चट्टानें कटकर नोकदार कगर सी बन गई हैं, कहीं खड़ी चट्टानें ऐसी चिकनी हो गई हैं मानो किसी ने रगड़ कर उन्हें चिकना करदिया है। इसी प्रकार कहीं गड्ढे और कहीं छोटे बड़े नाले हैं और इन नालों में रोड़े और पत्थरों की अटियाएं छितरी पड़ी हैं। किसी नाले में पानी बह रहा है और कोई सूखा ही है। इन पहाड़ों पर हरे भरे वृक्ष अपनी अलग ही शोभा देखा रहे हैं और कहीं कहीं पुराने वृक्षों के ठुंठ ही खड़े हैं।

इन्हीं पहाड़ों की सैर जब बरसात में करते हैं तो सूखे नालों को भी जल से भरा हुआ पाते हैं। यद्यपि ये नाले छोटे बड़े सभी प्रकार के हैं परन्तु सभों के प्रवाह में बड़ा वेग है। जल

का प्रवाह इस बल और उद्वेग से बह रहा है मानों वह पहाड़ को बहा लेजाना चाहता है। इस धारा में जो कुछ पड़ा वह जल के संग बह जाता है। धारा के वेग में बड़ी छोटी बटियाएं वा रोड़े लुढ़कते फुड़कते, अन्य शिलाओं से टकराते, उन्हें काटते, छांटते और रगड़ते, और स्वयं भी टूटते फूटते और घिसते घिसाते बहे चले जाते हैं। इस रगड़ झगड़ से चट्टानों में कहीं नई कगरें बन जाती हैं और कहीं इनके कुछ भाग टूट कर नीचे गिरते और चूर चूर होते जल के साथ मिल कर बह जाते हैं। इसी प्रकार पेड़, पल्लव और जीवों के हाड़ भी जल के साथ चले जाते हैं। ये ही सब अन्त में बालू, मिट्टी इत्यादि बनजाते हैं।

इन्हीं नालों को जब पहाड़ से नीचे आकर देखते हैं तो उनमें उतना उद्वेग नहीं रहजाता और ज्यों ज्यों वे समतल भूमि की ओर जाते हैं उनका बल घटता ही जाता है। ये नाले किसी नदी वा बड़े सरोवर में जा मिलते हैं।

ज्यों ज्यों धारा प्रवाह मन्द होता जाता है भारी बटियाएं और रोड़े जल तल में रुकते जाते हैं। बालू और मिट्टी नदियों के प्रवाह से घुले मिले चले जाते हैं और ज्यों ज्यों नदी मन्द होती जाती है बालू और मिट्टी नीचे बैठते जाते हैं। बड़ी नदियां अपने किनारों पर के करारों को काटकर उनकी मिट्टी भी बहा लेजाती हैं और अन्त में अपने बोझ को समुद्र के उदर में डाल देती हैं। बरसात में इसी कारण से नदियों का जल मैला रहता है और बरसात के उपरान्त ज्यों ज्यों इनका प्रवाह मन्द होता जाता है इनका गाद नीचे बैठता जाता है।

देखो हरद्वार वा उसके ऊपर के देश में गंगा जी के किनारों पर बड़े और छोटे रोड़े ही मिलते हैं। इसके नीचे मुरादाबाद, मेरठ इत्यादि में गंगा तट पर मोटे बालू की रेत मिलती है। काशी इत्यादि तक आते आते कुछ मोटे वा महीन बालू की रेत पड़ जाती है और अन्त में हुगली के तीर पर मिट्टी का कादा ही पाया जाता है। अब मालूम हुआ कि नदियों के द्वारा हर प्रकार की गाद

समुद्र में किंवा बड़े सरोवर में जमा होती है । ऐसा ही हर वर्ष होता रहता है ।

इसके सिवाय समुद्र के किनारों पर जो बड़े बड़े पहाड़ हैं उनकी भी यही दशा है । समुद्र की लहरों के साथ और विशेष कर बड़ी बड़ी आंधियों में समुद्रीय तरङ्गों के थपेड़ों के साथ किनारों पर के रोड़े आपुस में रगड़ते और चट्टानों पर पटखनी खाते, उन चट्टानों को तोड़ते फोड़ते और आप भी घिसते घिसाते, जल में घुल मिल-कर दूर तक बह जाते हैं और धीरे धीरे समुद्र-तल पर बैठ जाया करते हैं ।

ऐसा सदाही होता रहता है । मीलों तक इसी प्रकार सदा गाद की तहें जमती रहती हैं । इसी प्रकार बड़े बड़े सरोवर भी भर भर कर समभूमि हो जाते हैं । इसमें सन्देह नहीं कि सहस्रों वर्ष में इतना होता है कि हम जान सकें परन्तु ऐसा सदाही होता रहता है । कुछ काल पहिले कलकत्ते का स्थान समुद्र तल में था । इसी प्रकार गाद के एकत्रित होते होते वहां का स्थान ऊंचा हो गया और अब वह भारतवर्ष का एक बड़ा शहर है ।

इन सब बातों से यह सिद्ध हुआ कि लाखों वर्ष में इन्हीं रोड़ों के ढेर इकट्ठा हो हो कर रोड़ेदार शिला, बालू से रेतीली और कांदे से पंक शिलाएं बन जाती हैं । इसी सम्बन्ध में एक बात और भी स्मरण रखने की है कि रोड़े वहीं तक मिलते हैं जहां तक प्रवाह का वेग बहुत तीव्र रहता है । मोटे और महीन रेत कम वेग में भी एकत्रित हो जाया करते हैं और कांदा तो अति मन्द प्रवाह किंवा स्थिर जल में नीचे बैठता है । इन बातों से हम ठीक ठीक अनुमान कर सकते हैं कि रोड़ेदार शिला जहां बनी होगी वहां तक प्रचण्ड जल प्रवाह रहा होगा और बलुए पत्थर की शिलाएं जहां हैं वहां प्रवाह मन्द न रहा होगा परन्तु पंक-शिला तो अवश्य ऐसे स्थान पर बनी होगी जहां जल स्थिर नहीं तो अति मन्द अवश्य रहा होगा ।

बालू इत्यादि का शिला हो जाना ।

अब यह देखना है कि यह सब गाद जो मृदुल है कठोर

शिला कैसे बन सकता है। यह बात इस उदाहरण से भली भाँति समझ में आजायगी। थोड़ी सी तर मिट्टी वा रेत लेकर यदि उसे किसी बरतन में इस तरह से खूब दबावें कि उसका जल निकल जाय और यह गाद कुछ देर तक खूब दबी रहे तो यही गाद जो पहिले मृदुल थी अब अत्यन्त कठोर हो जायगी।

इस परीक्षा के सिद्धान्त को स्मरण रखकर फिर समुद्र वा सरोवर की ओर जो ध्यान देकर विचारें तो पाते हैं कि गाद की तहें जो एक दूसरे पर मीलों लम्बी और सहस्रों फुट ऊंची समुद्र तल में एकत्रित हो रही हैं उनका बोझ नीचे वाली तहों पर होगा जिसका सब लोग अनुमान कर सकते हैं। जब इस बोझ के दबाव (Pressure) से गादीय तहें जम जाती हैं और एक दूसरे के साथ सट कर कठोर हो जाती हैं तो यही पहाड़ और पत्थरीली शिलाएं कहलाती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस कार्य्य में लाखों वर्ष व्यतीत हो जाते हैं पर इन गादीय शिलाओं के बनने का कारण यही है।

इन बातों के देखने से विदित होता है कि जो शिला वा पहाड़ हम देखते हैं वे इसी प्रकार करोड़ों वर्ष पहिले के बने हैं जैसा कि उनके घिसे हुए कणों से प्रगट होता है। और ये शिला वा पहाड़ चाहे कितने ही कड़े और समुद्र से दूर हों पर वे किसी समय अवश्य जल के नीचे थे। यही नहीं वरंच यह भी सिद्ध होता है कि रोड़ेदार शिला छिछले जल में और बलुआ पत्थर वा पंक शिला गहरे जल में बने हैं।

यह भी स्मरण रहे कि नदियों के द्वारा लोहचून चूना इत्यादि बहुत से संयोजक पदार्थों (Cements) के कण भी गाद के संग बैठ जाते हैं अथवा जल के साथ छन छन कर गाद के बीच में रह जाया करते हैं। इस अन्तिम क्रिया को च्यवन क्रिया (Infiltration) कहते हैं। इनसे गाद के कण आपस में सट जाते हैं और शिलाओं का रंग भी इन्हीं पदार्थों के रंग के अनुसार होता है। गाद की तहें जो मोटी वा पतली जमा करती हैं उनको स्तर (Stratification) और इन स्तरों से बनी शिलाओं को प्रस्तर शिला (Stratified Rocks) कहते हैं।

गादीय शिलाओं के तीन प्रकार जो लिखे गए हैं उनके बनने का कारण और क्रम लिखा गया। अब इन शिलाओं की परीक्षा खूब ध्यानपूर्वक करने से कभी कभी इन शिलाओं में पेड़, पत्ते, जन्तु इत्यादि के स्पष्ट काले चिन्ह और आकार भी देखाई देते हैं और ये प्रायः कोयले के बने होते हैं। अब यह देखना है कि ये आकार क्या हैं?

(छठां और सातवां चित्र देखो)

ऊपर लिखा जा चुका है कि जल प्रवाह के वेग में जो कुछ पड़ता है वह उसके साथ बह जाता है। यदि किसी पेड़ की डाल पत्ते सहित किसी गाद में रुक गई और सड़ने गलने के पूर्व ही गाद की दूसरी तह के नीचे दब गई तो इन पत्तों के आकार उस मृदुल गाद की तह पर मुद्रित हो जांयगे और अधिक दबाव पड़ने से तो उनकी नसें तक उस तह में उभर आवेंगी। यही आकार काल पाकर भी ज्यों के त्यों बने रह जांयगे और शिला कठोर होती जायगी। पेड़ की डाल और पत्तियां कुछ काल में सड़ कर अथवा रासायनिक क्रिया से कोयला होकर रह जायंगी। इन आकारों को यदि खुरच लें और उसे जलादें तो थोड़ी सी राख और कुछ बालू के अंश जो खुरचने में निकले थे शेष रह जांयगे। यह राख अवश्य उन पत्तियों का अंश है जो काल पाकर कोयला हो गई हैं। इसी प्रकार झील अथवा समुद्र के जन्तुओं के घोंघे वा सीप जो गाद में दब कर मुद्रित हो गए थे इन शिलाओं में कभी कभी पाए जाते हैं। इनके अंश जलाने से चूना रह जाता है। यही कारण है कि पहाड़ों में पोर्सों गहरा खोदने पर भी ऐसे चिन्ह निकला करते हैं। गाद के अन्दर जो वृक्ष अथवा जन्तुओं के शेष-पिण्ड (remains) इत्यादि रह जाते हैं इस को मध्यस्तर (Inter-stratification) कहते हैं।

इन वृक्षों अथवा जन्तुओं के शेष-पिण्ड के आकारों से जाना जा सकता है कि ये शिलाएं बड़े सरोवर में बनी किंवा समुद्र में क्योंकि जो वृक्ष समुद्र तट पर होते हैं अथवा जो जन्तु समुद्र में रहते हैं उनमें से बहुत ऐसे हैं जो ऊपर की भूमि पर वा मीठे

पानी की झीलों में नहीं पाए जाते। इस से हम जान सकते हैं कि इन शिलाओं की उत्पत्ति कहां हुई।

पत्थर की खान वा प्रस्तराकर (Quarry) की देख भाल।

पहिले हम पाठकों को ऐसी खान में ले चलते हैं जिसकी बनावट सीधी सादी और जहां शिलाओं के स्तर क्षितिज-धरातल (horizontal plane) में हों।

(सातवां चित्र देखो)

इसको देखते ही आप कह देंगे कि नीचे की शिलाओं के स्तर (strata) सब से पुराने होंगे क्योंकि पहिले उन्हीं की तह जमी होगी और फिर उसके ऊपर के स्तर यथाक्रम जमा हुए होंगे और न्यून काल की शिलाएं सबसे ऊपर की स्तर वाली हैं क्योंकि इस की तह सबसे पीछे पड़ी होगी।

इस खान के देखने से आप लोगों को एक नई बात यह देखाई देगी कि इसमें कई खण्ड हैं जो एक दूसरे से कुछ जुदे परत वाले हैं और उनके रंग, रूप और बनावट में भी भेद है। इस के देखने से यह अनुमान होता है कि ये खण्ड एक काल में नहीं बने हैं किन्तु एक के पश्चात दूसरे बने होंगे। इस क्रम को उपरस्थखण्डक्रम (Order of superposition) कहते हैं।

परीक्षा करने के लिये जब किसी स्थान को खोदते वा काटते हैं तो इसको भेदन-क्रिया (Section) कहते हैं। उक्त खान में भेदन क्रिया करके जब परीक्षा की जाती है तो कई विचित्र चिन्ह और बातें देखने में आती हैं। मान लो कि इस खान में एक शिला ऐसी मिली जिस पर लहरियेदार चिन्ह हैं और दूसरी शिला ऐसी मिली जिस पर 'माता के दाग' से छोटे छोटे गड्ढे पड़े देखाई देते हैं। इनको देख कर विचार होता है कि ये चिन्ह क्या हैं और क्योंकर बने होंगे? इनसे क्या फल निकाला जा सकता है?

इन प्रश्नों पर विचार करने के लिये हमको फिर नदीतट पर जाना पड़ता है। नदी के किनारों पर जो गाद पड़ी है उस पर जल की तरङ्गों के चिन्ह ठीक लहरियेदार पड़े देखाई देते हैं। जल की लहरें अपना आकार उस नरम गाद वा रेत में बनाती रहती हैं। ये लहरियेदार चिन्ह नित्य बिगड़ते और बनते रहते हैं। यदि किसी स्थान पर के लहर के आकार किसी कारण से विनष्ट न हों और कुछ दिन बाद उन पर नई तह गाद की जम जाय तो ये चिन्ह बनेही रहेंगे और गाद के साथ कठोर होजायंगे। इससे यह अनुमान होता है कि यह शिला जिसमें लहरिया है छिछिले जल में किंवा जल के किनारे पर बनी होगी।

अब 'माता के दाग वाली' शिला का कारण खोजना है। समस्त रेत खोजने पर भी वैसे चिन्ह जल्दी देखने में नहीं आते। मान लिया जाय कि जिस समय हम खोज कर रहे हों कुछ पानी की बून्दें पड़ जांय तो अब जिन रेत की चट्टानों को हमने पहिले साफ़ पाया था उन पर अब बड़ी बून्दों के चिन्ह छोटे गड्हे सरीखे पड़े पाते हैं और जल बालू के अन्दर प्रवेश कर गया है। यदि येही गड्हे वायु अथवा अन्य किसी कारण से नष्ट न होजांय और इन पर नई परत रेत या गाद की पड़ जाय तो येही चिन्ह बने रहजांयगे, इसे देखकर हम विचार कर सकते हैं कि वह शिला जिसपर 'दिउलियां' सी पड़ी हैं सूखे में अर्थात् जल के बाहर की सतह है। इसकी उत्पत्ति अवश्य जल से बाहर के स्थान की है।

इसी प्रकार जन्तुओं के शेष खण्ड के चिन्हों से पता लग सकता है कि इस शिला की उत्पत्ति जिसमें ये चिन्ह हैं कहां की है। यदि वह जन्तु ऐसा है कि केवा समुद्र ही में पाया जाता है तो हम कह सकते हैं कि यह शिला समुद्र के भीतर वा उसके तट पर की है। कोई कोई जन्तु ऐसे हैं जो समुद्र के गहरे जल में रहते हैं कोई कम गहरे जल में होते हैं। इनसे भी हम जान सकते हैं कि शिला अधिक गहरे वा कम गहरे जल में उत्पन्न हुई है। किसी पहाड़ में यदि ऐसे जन्तु के चिन्ह पाए जांय जो मीठे जल में रहा करते हैं तो हम दृढ़ता पूर्वक कह सकते हैं कि ये शिलाएं

किसी बड़े सरोवर में उद्भूत हुई होंगी। चाहे अब वहां जल नाम मात्र को न हो।

यदि हिमालय पहाड़ में खान खोदी जाय और वहां ऐसे जीवों के आकार वा शेष-पिण्ड मिलें जिनके समुद्री जन्तु होने में कोई सन्देह न रहे तो हमको इस बात के कहने में संकोच न होगा कि किसी कालान्तर में ये पहाड़ समुद्र में बने होंगे, नहीं तो ये समुद्री जीव के शेष-पिण्ड वा उनके आकार चिन्ह वहां कैसे मिलते। यदि इन खानों में ऐसी वस्तुएं पाई जांय जो समुद्र में अथवा समुद्र के निकट नहीं पाई जातीं तो अवश्य यह कहना पड़ेगा कि यह भाग किसी बड़े सरोवर में वा उसके किनारे पर बना होगा।

(२) तनूद्भव* शिला (Organic Rocks)

तनूद्भव शिला का अर्थ हुआ वह शिला जो जीव वा वृक्ष के शेष-पिण्ड से बनी हो। अब देखना है कि वृक्ष वा जीव के शेष-पिण्ड (Remains) से शिलाएं कैसे बनी होंगी। पहिले हम जीव जन्तु के शेष-पिण्ड से शिलाओं के बनने की रीति की जांच परताल करते हैं।

(क) जीव के शेष पिण्ड से शिला बनना।

जो लोग समुद्र के तट देख आए हैं वे भली भांति जानते हैं कि समुद्र के किनारे मछुवे गड्ढे खोद देते हैं जिनमें समुद्र की लहरों के साथ भांति भांति के जन्तु, सीप, शंख, मूंगों की डलें आ आ कर रह जाती हैं। इससे हम समझ सकते हैं कि समुद्र में सीपवाले अर्थात् शाम्बुकी जन्तु अधिक रहते हैं। जब अमेरिका और वृटन के बीच में समुद्रीतार (cables) बिछाई गई थीं तब समुद्र तल की जांच परताल खूब की गई थी। इस जांच से बहुत सी बातें नई जानी गई थीं। इनमें से एक यह भी बात जानी

---

* तनूद्भव शब्द संस्कृत तनु=शरीर वा तन और उद्भव=उत्पन्न होना से बना है। तनु शब्द शरीर का वाची है। किसी जीव के शरीर को 'तनु' कह सकते हैं। इसी का अपभ्रंश हिन्दी में 'तन' है और इसी शब्द का अपभ्रंश 'तना' भी निस्सन्देह मालूम होता है जो वृक्ष इत्यादि के लिये प्रयोग किया जाता है जैसे 'पेड़ का तना'। अतएव 'तनु' शब्द जीव और वृक्ष दोनों के शेषपिण्ड के अर्थ में यहां प्रयोग किया गया है।

गई कि किसी किसी स्थल में उक्त जन्तु बहुतायत से होते हैं और किसी जगह कम और ये सब एक विशेष गहराई में ही पाए जाते हैं। जहां कहीं ये जन्तु अधिकतर रहते हैं वहां उनके मरने पर उन के शेष-पिण्ड पड़े रह जाते हैं और इनके ऊपर उनकी सन्तान अपना डेरा जमाती हैं। इसी प्रकार इनके मरने पर इनका भी ढेर वहीं लग जाता है और कुछ काल में इन शेषपिण्डों का टीला बन जाता है। ये टीले, अपने ही बोझ से वा उन पर दूसरे पदार्थों की गाद जमने पर उनके बोझ से चूर चूर होकर और दबकर, कठिन शिला बन जाते हैं। येही शिलाएं चूने के पत्थर (Limestone) अथवा खड़िया (chalk) की शिलाएं कहलाती हैं।

यह बात सभी लोग जानते हैं कि सीप, शंख, कौड़ी इत्यादि जलाने से चूना हो जाती हैं जिससे पाया जाता है कि उनमें चूने का अंश अधिकतर है। उक्त शाम्बुकों का ढेर चारों ओर से दबकर और भूम्योदर की उष्णता पाकर अन्दर ही अन्दर चूना हो जाता है। इसी प्रकार जब उक्त जन्तु दूसरे स्थान पर चले जाते हैं तो वहां भी उनके ढेर की तह उक्त प्रकार से जमती रहती है और जब इन तहों पर कदाचित गाद की तह जमने लगे तो कालान्तर में ये शिलारूप धारण करलेंगी और अनेक प्रकार के कणों और पदार्थों से मिलकर ये कई तरह की शिला हो जांयगी। ये शिलाएं जन्तुओं के शरीर खण्ड से बनी हैं इसलिये इनकी तनूद्भव वर्ग में गणना करनी उचित हैं।

(आठवां चित्र देखो)

बड़े बड़े सरोवरों में भी घोंघों के ढेर लगकर ऐसी शिलाएं बना करती है।

(ख) वृक्षों के शेष-खण्ड की शिलाएं वा पत्थर के कोयले।

इस पृथिवी पर नित्य प्रति भूपरिवर्तन (Terrestrial changes) होतेही रहते हैं। इतिहासों से मालूम होता है कि अनेक बड़े बड़े देश समुद्र तल में मग्न हो गए तथा अनेक देशों में समुद्र तल की भूमि ऊपर निकल आई है। भूकम्प से कभी कभी ऐसे घोर उपद्रव प्राचीन

काल में हुए हैं कि जिनके कारण पृथिवी के बड़े बड़े भाग समुद्र में डूब गए और अफ्रिका ऐसे महाद्वीप समुद्र से बाहर निकल आए हैं। इन बातों का सबूत भली भांति मिल चुका है। अब भी कभी कभी भूकम्प द्वारा छोटे छोटे उपद्रव देखने में आते हैं। सन् १८१९ ई० में कच्छ देश में ऐसा भूडोल आया था कि जिससे 'भुज' नामक देश नष्ट हो गया और सुन्दरी नामक नगरी जलमग्न होगई, तथा अंजर का कोट भूमि में धस गया। इस भूकम्प का धक्का अहमदाबाद तक मालूम हुआ था जहां की एक बड़ी मसजिद गिर गई।

समझने के लिये उक्त उदाहरण काफ़ी हैं कि ऐसे ही परिवर्तनों के कारण अनेकानेक घने जंगल समुद्र में डूब गए और इन वृक्षों और लताओं पर गाद की तहें जमने लगीं। कभी कभी इन गादों की पतली तहों पर पुनः वृक्ष उत्पन्न हो आए और जंगल से घनिष्ठ हो गए और यह जंगल पुनः जलमग्न हो गया और अन्य पदार्थों की गाद के नीचे दब कर रह गया। वृक्षों के तने जो दब गए वे ही कालान्तर में कोयला स्वरूप होगा। जैसे कि जङ्गल में लोग बन्द गड्ढे में लकड़ियां जला कर कोयला बनाते हैं जिस से लकड़ियां राख नहीं होने पातीं कोयला बनकर ही रह जाती हैं। उसी प्रकार से ये दबे हुए जङ्गल भूम्यन्तर के ताप से कोयला हो जाते हैं और ऊपर के दबाव के कारण कठोर कोयले की शिला का रूप धारण कर लेते हैं।

इन कोयलों की तहों में वृक्षों की नसें, रेशे, और शाखाएं कोयले के स्वरूप में प्रायः पाई जाती हैं। इस कोयले के टुकड़ों की रासायन और सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा परीक्षा करने पर निश्चय होता है कि ये अवश्य वृक्ष के अंश हैं। पत्थर के कोयलों की तहों के नीचे की भूमि प्रायः पङ्क-गाद की होती है जिनमें वृक्षों की जड़ों के आकार मिलते हैं।

पत्थर के कोयले वृक्षों के ही बने होते हैं (और अब विज्ञान शास्त्र में भी वृक्ष जीवधारी माने जाते हैं) अतएव इनकी गणना तनुद्रुम वर्ग में करना अनुचित नहीं है।

पाद्रीय-शिला और तलछट-शिला के बनने का क्रम लगभग एकसा ही है परन्तु उनके मूल तत्व में बहुत बड़ा भेद है। अब आग्नेय शिला का वर्णन किया जाता है जिसके मूल तत्व और बनावट के क्रम में भी बड़ा अन्तर है।

(३) आग्नेय* शिला (Igneous Rocks)

आग्नेय शिलाएं इतनी अधिक नहीं पाई जाती हैं जितनी कि अन्य शिलाएं। इन शिलाओं की बनावट में एक विशेषता यह है कि इनमें अन्य शिलाओं की तरह स्तर नहीं होते। ये शिलाएं स्तरविहीन वा समपिण्डीकृत (unstratified or massive) होती हैं। इनका प्रादुर्भाव ज्वालामुखी पर्वतों द्वारा होता है।

ज्वालामुखी पहाड़ का वर्णन भूगोल विद्या में आप लोगों ने पढ़ा होगा। भारतवर्ष में बड़ा ज्वालामुखी पर्वत अब ऐसा कोई नहीं है जो सदा प्रज्वलित रहता हो। पर चटगांव और पेगू के पश्चिम भाग में जावा टापू तक ज्वालामुखी का होना पाया जाता है। इस समय जगत में सब से बड़ा ज्वालामुखी पर्वत इटली (*Italy*) देश में माउंट वेसूवियस (Mt. Vesuvius.) है। इन पर्वतों से ज्वाला क्यों निकलती है इसका वर्णन संक्षेप में यहां कर देना उचित जान पड़ता है।

विज्ञान शास्त्र से यह सिद्ध हो चुका है कि आदि सृष्टि में यह पृथ्वी अग्निवत् तपती हुई मानो अग्निपिण्ड ही थी जो धीरे धीरे ठंडी होते होते इस अवस्था को प्राप्त होगई है कि इस पर जीव बसने लगे। इस पृथ्वी का ऊपरी भाग तो ठंडा होगया है पर अभी इसके उदर में उत्कट ताप है। जैसे किसी प्रज्वलित अङ्गार को यदि ठंडा करदें तो भी कुछ देर तक उसके अन्दर अग्नि बनी रहती है। पृथ्वी के उदर में अब भी अग्नि है इसके प्रमाण मिलते हैं जो संक्षेप में लिखे जाते हैं।

---

* आग्नेय शब्द अग्नि से बना है जिसका अर्थ है अग्नि वाला अर्थात जिस की उत्पत्ति अग्नि के कारण हुई। पृथ्वी की आन्तरिक अग्नि से इनका बहुत कुछ सम्बन्ध है जैसा कि इनके विवर्ण में प्रगट होगा अतएव इनका यह नाम आग्नेय शिला रक्खा गया है।

(क) जब पृथ्वी में गहरी खान खोदते हैं तब ज्यों ज्यों खान गहरी होती जाती है गरमी भी अधिक बढ़ती जाती है। गहरी खानों में यह उष्णता नित्य एकसी बनी रहती है अर्थात् बाहरी ऋतुओं का कोई प्रभाव उस पर नहीं पड़ता। यह आन्तरिक ताप प्रति ५० वा ६० फुट गहराई में १° (एक अंश) के हिसाब से बढ़ता ही जाता है यहां तक कि दो तीन मील की गहराई पर इतनी गर्मी है कि पानी खौलने लगता है और बीस या पच्चीस मील अन्दर में कड़ी धातु भी गल जा सकती है, भूमध्य के ताप का तो क्या कहना है।

(ख) ज्वालामुखी पर्वत से ज्वाला और गले हुए पत्थर और अन्य पदार्थों का निकलना।

(ग) आइसलैण्ड (Iceland) में कभी कभी गरम जल का फौहारा किंवा जल-धारा-स्तम्भ (Geyser) का कई फुट ऊंचा निकलना।

(घ) अनेक स्थानों पर गरम सोतों का होना (भारतवर्ष में भी ऐसे बहुत से कुण्ड हैं जैसे मुंगेर में सीताकुण्ड बदरिकाश्रम में कई ऐसे कुण्ड हैं)।

इन सब बातों से निश्चित होता है कि भूमध्य में निस्सन्देह उत्कट ताप है। इसी अग्नि का कुछ अंश जब किसी छिद्र द्वारा बाहर निकलता है तो उसको ज्वालामुखी पर्वत कहते हैं। इस ज्वाला के साथ कई प्रकार के द्रव्य निकला करते हैं इनमें से दो प्रकार के मुख्य द्रव्य हैं (१) पिघला हुआ एक प्रकार का द्रव्य जिसे (Lava) लावा कहते हैं और (२) रेत, पत्थर, राख, मिट्टी, इत्यादि खनिज पदार्थ।

(नवां चित्र देखो)

जब ज्वालामुखी पर्वत भभक उठता है तो उक्त पदार्थ आकाश में कई सौ फुट और कभी कभी कई मील ऊंचे उड़ उड़ कर चारों ओर दूर तक गिरा करते हैं। कभी कभी तो इनसे बड़े बड़े देश नष्ट होगए हैं। जब यह पर्वत दहकता है तो भूकम्प प्रायः होता है। सन् १८२२ ईस्वी में जब वेसुवियस का ज्वालामुखी

धंधका था तब २० दिन तक उसमें से बहुत से द्रव्य निकल कर दूर दूर तक गिरते रहे थे जिनसे बड़े बड़े दून और गर्त भरगए। अन्त में यह ज़ोर कम होगया। रोम का विख्यात देश ऐसे ही उपद्रव से नष्ट होगया। सन् १९०३ में इस ज्वालामुखी के उद्गार से टापू में कितनी हानि हुई यह आप लोगों ने समाचार पत्रों में पढ़ाही होगा। यह तो एक छोटा सा उपद्रव था; प्राचीन काल में बड़े बड़े घोर उपद्रवों का होना ज्वालामुखी के भयानक उत्क्षेप (Eruption) से पाया जाता है। अस्तु ज्वालामुखी पर्वतों से भिन्न भिन्न प्रकार के द्रव्य निकला करते हैं पर इनमें से दो द्रव्य मुख्य करके निकला करते हैं अर्थात् लावा (Lava) और भस्म। लावा नामक द्रव्य पिघला हुआ द्रव रूप में ज्वालामुख (Crater) से निकला करता है। कभी कभी यह बहुत पतला होने के कारण मीलों दूर तक बह जाता है और इससे बड़े बड़े गर्त और दून (valleys) भरजाते हैं पर प्रायः यह कुछ गाढ़ा होने के कारण दूर तक नहीं बह सकता और जल्दी ठंढा होकर जम जाता है। लावा का अंश जो ज्वाला में ऊंचे उड़ कर गिरता है और अन्य पदार्थों की तहों के नीचे दबजाता है वही मध्यस्तरित (Interstratified) अवस्था में मिलता है। कभी ऐसा भी होता है कि यह लावा बाहर नहीं निकलता किन्तु पर्वतों की दरारों (Fissures) और नलियों द्वारा उनके अन्दर ही अन्दर दूर तक बह कर जम जाता है। झांवां (Pumice) और संगे कलवा वा भैसा (Basalt) मुख्य करके लावा के अंश से ही बनते हैं। लावा बाहर निकलने पर ऊपर तो बहुत जल्दी ठंढा हो जाता है परन्तु उसके अन्दर बहुत दिनों तक (कभी कभी बरसों तक) ताप बना रहता है। मिट्टी और राख इत्यादि से मिलजुल जाने पर ज्वालामुखी भस्म (Volcanic ashes) को जली हुई राख न समझ लेना चाहिए वरंच इससे तात्पर्य्य उस रज (dust) और द्रव्य-खण्डों (Fragmental materials) से है जो ज्वालामुख से निकला करते हैं। ये द्रव्य-खण्ड बड़े बड़े ढोकों के समान और बहुत महीन धूल के समान अर्थात् भिन्न भिन्न परिमाण के होते हैं। यह ज्वालामुखी रज

(Volcanic dust) एकत्रित होकर दृढ़ हो जाती है और उसमें छिद्र वा विवर हो जाते हैं। इसको ज्वालामुखी जटा (Valcanic tuff) कहते हैं। भूमि के अन्दर जो अग्निवत अतितप्त पदार्थ हैं वेही ज्वालामुख द्वारा निकला करते हैं। इन्हीं को आग्नेय शिला कहते हैं। जो तप्त शिलाएं पूर्वकाल में भूडोल के कारण बीच से उभड़ कर ऊपर आगई हैं वेही आग्नेय शिला प्रायः उन देशों में भी पाई जाती हैं जहां ज्वालामुखी का चिन्ह मात्र भी नहीं है। ये आग्नेय शिलाएं उसी समय की बनी हैं जब पृथवी अग्निपिण्ड से धीरे धीरे ठंढी होने लगी थी। इन शिलाओं के, ग्रानाइट, स्फटिक, झावां, अभ्रक रत्न इत्यादि अंशमात्र हैं।

जैसा ऊपर लिख आए हैं ग्रानाइट में फेनोपल (Felspar) और अभ्रक और स्फटिक के अंश होते हैं। यह ग्रानाइट ज्वालामुखी से बाहर निकले हुए ढेर में ही अधिक नहीं पाए जाते किन्तु पर्वतीय दरारों और छोटी छोटी कन्दराओं में भी पाए जाते हैं। जब ये ग्रानाइट उष्णता, जल, पाला इत्यादि के कारण विनाश होने लगते हैं तो फेनोपल के कण (जो बहुत काल में विघट्टन (decomposition) को प्राप्त होते हैं) इधर उधर लुड़क कर रह जाते हैं। फिर इनके अंश, पोटाश और सिलिकेट सोडा (silicate soda) जल के साथ घुल मिलकर बह जाते हैं और सिलिकेट अलूमिनम (silicate of alumina) एकत्रित हो जाने पर चीनिया मिट्टी (china clay) बन जाते हैं। ग्रानाइट के शेष भाग अभ्रक और स्फटिक के कण बह बहाकर रेत में पाए जाते हैं।

अब आप लोगों ने अच्छी तरह समझ लिया कि इन शिलाओं का सम्बन्ध भूमध्यस्थित अग्नि से कितना है। अतएव इनको 'आग्नेय शिला' कहना अनुचित और न्यायविरुद्ध नहीं है।

(४) विकृत शिला (Metamorphic Rocks)

ऊपर जो हम स्तरमय अथवा स्तरविहीन शिलाओं के विषय में लिख आए हैं उनके सिवाय एक प्रकार की शिलाएं और भी देखने में आती हैं जो यद्यपि स्तरमय शिला ही हैं पर उनका

रूपान्तर हो जाने से वे परिणामी वा विकृत शिला कहलाती हैं। इनमें जीव-शेष पिण्डों के चिन्ह भी अन्यथा भाव को प्राप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार की शिलाओं में संगमर्मर स्लेट और नीस (gneiss) हैं। इस रूपान्तर के हेतु उष्णता जल और दबाव (pressure) हैं। स्मरण रहे कि आग्नेय शिला की बनावट पहलदार (जिसे 'कलमदार' कहते हैं) होती है और गाद्दीय शिला कलमी (crystalline) नहीं होती। परीक्षा द्वारा देखा गया है कि बहुत से द्रव्य ऐसे होते हैं जो द्रव होकर जब फिर जमने लगते हैं तो वे एक न एक विशेष रूप धारण कर लेते हैं अर्थात् एक जाति के पदार्थ एक ही स्फटिकाकार स्वरूप में जमते हैं। इन्हीं को कलम बनना वा स्फटिकीकरण (crystallization) कहते हैं। इसी धर्म के अनुसार ज्वालामुख से जो गले हुए द्रव्य बाहर निकल कर जमते हैं वे स्वभावतः अपना विशेष रूप धारण कर लेते हैं। शिलाएं स्फटिकाकार और अस्फटिकाकार दोनों तरह की होती हैं। इनका क्रम नीचे लिखे नक्शे से भली भांति समझ में आ जायगा।

स्फटिकाकार वा कलमी शिला	आग्नेय वर्ग-जैसे ग्रानाइट, भैसा पत्थर
	जलीय वर्ग-जैसे लवण, चूनप्रद पाषाण (Limstone)
	विकृत शिला वर्ग-जैसे संगमरमर, नीस पत्थर (Gneiss)
अस्फटिकाकार वा बिना कलम की शिला	आग्नेय वर्ग-जैसे ज्वालामुखी रज
	जलीय वर्ग-जैसे बलुआ पत्थर, पंक

यहां इतना और कहदेना आवश्यक है कि गाद्दीय शिला और तनूद्भव शिला (Organic Rocks) प्रायः जल में ही बनती हैं इस लिये इन दोनों को जलीय शिला (Aqueous Rocks) भी कहते हैं।

इस भूमि पर जो कई प्रकार की मिट्टी मिलती है वह इन्हीं विविध प्रकार की शिलाओं के चूर (Loose) कणों से मिलजुल कर बनी हैं जिनसे वृक्ष इत्यादि का पोषण होता रहता है।

पर्वतों की शृंखला और अवस्था।

संक्षेप में मालूम हो गया कि भिन्न भिन्न वर्ग की शिला किस प्रकार और किन द्रव्यों से बनी हैं। प्रायः सभी पर्वत इन्हीं शिलाओं में से किसी न किसी शिला के ही होते हैं। गाद्दीय शिला पहिले

पहल अवश्य क्षितिजधरातल (horizontal plane) में तह पर तह क्रम कर बनी होंगी जैसा ऊपर सविस्तर वर्णन किया जा चुका है पर जब हम पर्वतों को देखते हैं तो उनकी चोटी वा ऊपरी भाग को जलपृष्ट (water surface) से सहस्रों फुट ऊंचा पाते हैं। सभी पर्वतों का शिला-स्तर (strata) क्षितिजधरातल में नहीं है, वरंच कोई टेढ़ा है, कोई झुका, कोई खड़ा, कोई आकुंचित और कोई चटका वा फटा हुआ। इनका अवस्थान्तर और उलट पुलट कैसे हो गया? यह बात न तो अनुभव में आती और न मानी जासकती है कि समुद्र के नीचे धस जाने से पर्वत ऊपर रह गए हों वा जल में ही वे टेढ़े मेढ़े बने हों क्योंकि जल में जो कुछ गाद बैठती है वह समान ही स्तराकार बैठती है टेढ़ी मेढ़ी नहीं जमती। इस तरह यदि एक स्थान पर समुद्र घटता तो दूसरे देशों में भी वैसा ही परिवर्तन अवश्य देखने में आता परन्तु ऐसा परिवर्तन समुद्र में कहीं देखने में नहीं आता किन्तु भूमिभाग उभरता और धसता देखने में आता है। कभी कभी कोई भूमिभाग हठात् उभर आता वा धस जाता है। इसके अतिरिक्त किसी किसी देश में धीरे धीरे भूमि भाग ऊपर उभरता और धसता पाया जाता है। यह धसाव कुछ तो भूकम्प के कारण और प्राय: इस कारण से होता रहता है कि भूमध्य अग्नि ज्यों ज्यों धीमे धीमे मन्द और ठंढी होती जाती है भूपृष्ठ भी संकोच को प्राप्त होता जाता है। इस आकुंचन होने में जो भूमि पूरे और समान दबाव में नहीं पड़ती वही ऊपर को वा नीचे को खिसक जाती है। इस आकुंचन से वा अन्य किसी कारण से जब भूपार्श्व का दबाव किसी शिला वा पर्वत खण्ड पर चारों बग़ल से पड़ता है तो उन पर्वतों में जो उस समय तक अति कठोर नहीं हुए रहते सिकुड़न सी पड़ जाती है। जैसे किसी कपड़े की समान तहों को चारों बग़ल से दबावें तो उसमें सिकुड़न पड़ जाती है।

(दसवां चित्र देखो)

और जो पर्वत अति कठोर हो गए हैं वे दबाव से चटक कर फट जाते हैं। जो देश कि एक ओर से उभरता और दूसरे

ओर से धसता रहता है उसकी शिलायें ढालूआं हो जाती हैं और उन पर जो नए गार्द के स्तर जमते हैं वे ढालूयें होते हैं। पारिंगटन साहब लिखते हैं कि कन्डिया (Candia) नामक द्वीप के पश्चिम ओर दक्खिन की ओर प्राचीन यूनानियों के समय के नौका और जलयान बान्धने के चिन्ह अब समुद्र से १६ फुट ऊंचे मिलते हैं और बोथिनिया खाड़ी (Bothinia gulf) और स्केण्डिनेवियन प्रायद्वीप (Scandinavian peninsula) में सन् १८२० तक के मल्लाहों के बनाए हुए नौका बांधने के चिन्ह तथा पहाड़ों के किनारे अब तक मिलते हैं जो पहिले जल के किनारे थे। सन् १८३४ में सर चार्ल्स लायल (Sir Charles Lyall) ने जो उनको नापा तो उन्हें पहिले से ४ इंच ऊंचे पाया। इस हिसाब से वहां की भूमि प्रति शताब्दि में लगभग अठारह फुट ऊंची उभरती मालूम होती है। इसी प्रकार स्वीडन के दक्खिन भाग में जो घर पहिले समुद्र तट से दूर बनाए गए थे वे अब भूमि के नीचे धीरे धीरे धसते जाने से समुद्र तट पर आ गए और निकट के घर डूब गए।

भूकम्प के कारण बहुत से नए देश ऊपर निकल आए और बहुत से समुद्र में मग्न हो गए। ऐसे ही परिवर्तनों से कोई शिला पर्वत बनकर टेढ़ी हो गई, किसी का नीचे वाला भाग ऊपर को आगया, कोई भाग खड़ा हो गया। पर्वतों के पलटा खा जाने से भूगर्भ की जांच में बहुत कुछ लाभ हुआ है क्योंकि खोदकर न तो कोई वहां जा सकता था और न वहां का पता चलता, खुदाई का व्यय और परिश्रम कितना बच गया इसको आप लोग खूब समझ सकते हैं।

(ग्यारहवां और बारहवां चित्र देखो)

कहीं कहीं पर्वतों का कोई खण्ड बहुत ऊपर उभर आया और शेष खण्ड टूटकर नीचे ही रह गया है जैसा कि इस चित्र से ज्ञात होता है। इसको भग्न (Faults) कहते हैं। जो पर्वत कि ऐसे हैं कि जिनके शिला-स्तर एक दूसरे पर क्रम से पड़े हैं वे एक रूपी वा संगत (Conformable) कहलाते हैं और जिनमें कुछ शिलास्तर खड़े हैं और उन पर दूसरे शिला प्रस्तर लेटे पड़े हैं ऐसे प्रस्तर-

शिलाओं को विरूपी वा असंगत प्रस्तर (unconformable) कहते हैं जिनसे यह समझा जाता है कि नीचे वाली शिला पहिले की बनी हैं और ऊपर की शिलाएं उनके पश्चात् की।

(तेरहवां चित्र देखो)

साधारण रूप से आपको विदित हो गया होगा कि पर्वत कैसे बनते हैं और उनका स्थानान्तर कैसे होता है। जो कुछ लिखा गया है वह इस विद्या का एक अंश मात्र है। बहुत से पर्वत ऐसे हैं कि उनके प्रस्तर तथा उनकी बनावट ऐसी मिली जुली होती हैं कि उनकी परीक्षा करने में बड़ी कठिनता पड़ती है। वहां रासायनिक क्रिया द्वारा बहुत कुछ जाना जा सकता है। इस विषय को छोड़ देना ही उचित जान पड़ता है क्योंकि हिन्दी में अभी तक रासायनिक शास्त्र सम्बन्धी कोई पुस्तक नहीं बनी है और न केवल हिन्दी जानने वाले इस विद्या के नियमों को जानते हैं। उनके लिये उक्त विषय पर लिखना एक प्रकार व्यर्थ ही है। जो कुछ ऊपर लिखा गया उतनाही अभी उनके लिये काफ़ी है। अब हम यह दिखाते हैं कि इस विद्या से क्या लाभ हैं।

भूगर्भ विद्या से लाभ।

ऐतिहासिक लेखकों के लिये जैसे किसी देश के पुराने सिक्के इमारतें शिलालेख, कुछ लिपि खण्ड इत्यादि उस देश वासियों के जीवन और रहन सहन बताने में काम के हैं, ठीक उसी प्रकार यह विद्या सृष्टिक्रम का मानों इतिहास है। देखने में आता है कि हिमालय पहाड़ खोदने पर शिलाओं के उदर से समुद्री जन्तुओं और समुद्र तट के वृक्षों के आकार मिले हैं तो यह अनुमान ठीक है कि ये पर्वत अवश्य समुद्र में बने होंगे क्योंकि इन शिलाओं का प्रस्तराकार बनना और समुद्री जन्तुओं का उनकी तहों के अन्दर मिलना प्रगट करता है कि ये अवश्य समुद्र में बने हैं। यह अनुमान किया जा सकता है (यदि ये शिलाएं उलट न गई हों) कि इस पर्वत का तल सब से अधिक प्राचीन है। सहस्रों वर्ष में गाद एकत्रित होकर और लाखों वर्ष में कठोर होकर यह पाषाण रूप बनी होगी और पुनः कुछ काल के उपरान्त भूपरिवर्तन द्वारा यह पर्वत रूप में ऊपर उभर

मुटाई होगी । इङ्गलेण्ड देश के पर्वतों में ३५०० फुट मोटी खड़िया की शिलाएं हैं और जैसा कि परीक्षा और जांच से मालूम हुआ है कि प्रति वर्ष समुद्र तल में ¹/₅ इंच गाद जमा करती है इसी क्रम को मानकर जो हम गणित करते हैं तो ३५००×१२×५=२१०००० वर्ष में उक्त शिला की तह जमी होगी और इस में बहुत कुछ काल अर्थात् जितने काल में इस का रूपान्तर और स्थानान्तर हुआ होगा और छोड़ना पड़ेगा । वैज्ञानिकों ने अनुमान और गणित द्वारा जाना है कि इस पृथ्वी को इस अवस्था में आए हुए तख़मीनन एक अरब से दस करोड़ वर्ष तक का काल व्यतीत हुआ होगा ।

जो कुछ हो वैज्ञानिक पंडितों ने भूसृष्टि के आदि से अबतक उसकी भूगर्भरचना के अनुसार तीन कल्प या चार अवधियां मुख्य मानी हैं । इनके सिवाय कोई कोई आदि जीवसृष्टि के पूर्व का काल भी अर्थात् वह समय जब इस भूगोल पर जिव जन्तु उत्पन्न नहीं हुए होगें मानते हैं । निम्न लिखित नक़शे से स्पष्ट हो जायगा कि भूमि के भिन्न भिन्न पटल हैं और वे अवश्य भिन्न भिन्न काल में बने होंगे ।

(चौदहवां चित्र देखो)

जो कुछ हो ऊपर की सारणी (Table) में भूपटल (Crusts of the earth) के आनुमानिक खण्ड दिए हैं जिनसे आप लोगों को उनके भिन्न भिन्न प्रकार की रचना के अनुसार उन खण्डों क रचना क्रम मालूम हो जांयगे । इसमें सन्देह नहीं कि सभी जगह यह क्रम बराबर नहीं मिलेगा, बीच बीच की श्रेणियों का अभाव भी देखने में आवेगा तोभी बहुधा भूपटल में कुछ न कुछ क्रम मिलेहीं गा । जैसे रोड़े और बालू के नीचे कई प्रकार की चिकनी मिट्टी (clays ; इस के नीचे खड़िया; इस के नीचे कई प्रकार के चूनामद-पाषाण (Limestones) होते हैं जो अपने अंशीभूत (Component parts) के कारण शाम्बुकीय वा चूनामद (Oolite) कहलाते हैं । इनके नीचे विशेष जाति के बलुआ पत्थर; इनके नीचे कोयलामय अथवा कर्बमय (Carboniferous) चूनामद-पाषाण (Limestones), इनके नीचे जीन (old) लाल पत्थर जिसे देवीन शिला (Devonian) भी कहते हैं, और इनके भी नीचे सिलिंधी

शिला या शीर्ण शिला (silurian) पाई जाती हैं। चाहे कोई बीच का भाग कहीं न निकले पर जब कहीं निकलेगा तो उसका क्रम वही होगा जैसा ऊपर लिखा गया है, अर्थात् खड़िया जहां कहीं पाई जायगी बालू और रोड़े के नीचेही होगी, इसी प्रकार शाम्बुकीय शिला खड़िया के नीचे ही होगी, ऐसा न होगा कि यह ऊपर और खड़िया नीचे। मान लो कि किसी खान के खोदने में अन्दर जाकर ऐसा पटल निकल आवे जो कर्बमय पटल के नीचे का है तो हम जान लेंगे कि यहां पत्थर का कोयला नहीं है, यदि होता तो पहिलेही निकलता। देखो इस विद्या से कितना परिश्रम और कितना व्यय बचगया।

निखात (Fossils)

जीव, जन्तु किंवा वृक्ष इत्यादि के शेष पिण्ड अथवा उनके चिन्ह केवल प्रस्तर-शिला (Stratified Rocks) में ही पाए जाते हैं। हम उपर लिख आए हैं कि जब गादीय शिला की द्रव सामग्री स्थापित होने लगती है तो उसके साथ जन्तुओं और वृक्षों के कठिन पिण्डों के जो गलगला कर चूर नहीं हो जाते वा घुन मिल नहीं जाते उनके आकार बने रहजाते हैं। यद्यपि उनके रूपान्तर होजाते हैं तोभी वे पहिचाने जा सकते हैं। पहिले लोग इन चिन्हों को प्रकृति का विचित्रकार्य (Freaks of nature) मानते थे परन्तु अब भूगर्भवेत्ताओं (Geologists) ने सिद्ध कर दिखाया है कि ये तद्रूप चिन्ह हैं। ये वस्तु वा चिन्ह जो निखात कहलाते हैं विशेष विशेष शिलाओं की थक (Layers) में विशेष विशेष स्वरूप के ही पाए जाते हैं। बहुत से निखात ऐसे हैं जिनके स्वरूप के जन्तु अब नहीं उत्पन्न होते। जैसे मास्टोडन (Mastodan) नामक जीव के शेष-पिण्ड मिलते हैं पर ये जीव अब देखने में नहीं आते। इनका रूप बड़े हाथी की तरह और दांत बड़े लम्बे होते हैं। ये चिन्ह अधिपटल में ही मिलते हैं। इसी प्रकार अमोनाइट (Ammonite) नामक जन्तु के चिन्ह ली माट्टी में ही मिलते हैं। इसका आकार घूमी हुई सींग की नाईं होता है जिनपर चित्र विचित्र आकार बने रहते हैं

(कदाचित यह वही है जिसे हम लोग शालिग्रामशिला कहते हैं) यह जन्तु भी अब नहीं पाया जाता। इसी प्रकार बहुत से जन्तुओं के निखात मिलते हैं और ये निखात भूपटल के भिन्न विभाग में भिन्न रूप के पाए जाते हैं। देवीर अवधि में मछलियों का होना बहुत पाया जाता है। कर्बमय रचना के समय में उभयजीवि (Amphibian) जन्तु पाए जाते हैं जो जल और वायु दोनों में रह सकते हैं जैसे मेढक इत्यादि। इसी प्रकार मध्यजीव युग में बहुपदक वा सर्पक जन्तुओं की अधिकता रही। इसी लिये इस युग को कीट युग (Age of Reptiles) भी कहते हैं। इस युग के अन्त में क्षुद्र जन्तु कम होने लगे और स्तनपायी (Mammals) जीव उत्पन्न होने लगे, मनुष्य और उत्तम पशुओं की उत्पत्ति चतुर्थ कल्प-अवधि के पूर्व्व नहीं पाई जाती। विदित होता है कि हिमानी युग (Glacial preriod) के पश्चातही इनकी उत्पत्ति हुई और भूगर्भवेत्ता यही समय इनकी उत्पत्ति का स्थिर करते हैं। यह हिमानी युग कब तक रहा होगा इसका निर्णय नहीं किया जा सकता।

इसी प्रकार वृक्ष, लता इत्यादि के निखात भी भिन्न समय में भिन्न भिन्न पाए जाते हैं। अति प्राचीन काल के तरु निखात ऐसे हैं जिनमें पुष्प नहीं होते।

जो कुछ ऊपर लिखा गया है उससे स्पष्ट रूप से समझ में आगया होगा कि पत्थरों के मुख्य तीन वर्ग हैं और तीन वर्गों के अंशीभूत तत्वों (Component parts) के अनुसार इनके जातिभेद और नाम होते हैं। इस विद्या और शास्त्र का पूरा वर्णन इस छोटे से लेख में लिखना असम्भव है तोभी प्रधान और मुख्य विषय इस नूतन शास्त्र का लिखदिया गया है जिससे इस पृथिवी की प्रथम अवस्था और उसके अन्दर के पटल और उनका क्रम, इसकी रचना और इस पर बसने वाले जीवों का वृतांत भली भांति जान सकते हैं।

हिन्दी की ओर से अपील।

[पण्डित जगदेव उपाध्याय लिखित।]

बन्दि चरन परमेश बड़न कहं सीस नवाऊं।
हिन्दी हित की कथा हितैषी जनन सुनाऊं॥
हिन्दी भाषा परम शुद्ध भाषन के माहीं।
लखि सुबेध आबाल वृद्ध बनिता कोउ नाहीं॥
जो नहिं मोहित होयं लखैं रिझवारे गुन को।
नहीं मिलै जेहि माहिं लेश दूषण अवगुन को॥
सोइ हिन्दी नागरी बरन में लिखी जाति है।
महिमा बरनन जासु नहीं बुधि में समाति है॥
लिपि नागरी अहै सब लिपि की रानी।
नहिं अत्युक्ति कहाइ कहौं याको महरानी॥
सोइ महरानी बनन चहति सम्राज्ञी प्यारो।
सब मिलि प्यारो! आवो, अब कछु युक्ति विचारो॥
समय बहुत उपयुक्त, बहै अनुकूल वायु है।
उज्ज्वल यश फैलाइ लेहु, लघु बहुत आयु है॥
हे बंगाली वीर! अग्रणी सकल काम के।
देशहितैषी, परम धीर, निधि गुन ललाम के॥
सब समाज में अधिक बली तेरो समाज है।
तव गुन सुन्दर माहिं कहूं समता न आज है॥
यदि समाज-हित को प्यारो! तुम कछुक विचारो।
चिन्ता निज अरु देश मात्र की यदि हिय धारो॥
तो शुभ चिन्तक बनो, चलो, कछु स्वारथ त्यागो।
भारत को कल्यान करन को टुक अनुरागो॥
नहीं कठिन कोउ काम तनिक जो तुम चित लावो।
आवो प्रिय हित देश करन को पैर बढ़ावो॥
तनिक चित्त जो देहु सुलभ अतिहि यह काम है।
लघु श्रम को फल फिर देखो अतिही ललाम है॥

सकल देश कल्यान करन के कारन प्यारो ।
लिपि नागरी प्रचार सकल भारत पर पारो ॥
सब भाषा के ग्रन्थ छपैं याही लिपि माहीं ।
सब याही लिपि लिखैं करैं यामें नहिं नाहीं ॥
सब भारत में यही एक लिपि घर घर राजै ।
ऐक्य बढ़े-सब ठौर माहिं आनन्द विराजै ॥
हे बंगाली बीर, ऐसही यतन विचारो ।
नहीं तुम्हारे लिये कठिन यह तनिक वियारो ॥
मित्र शारदा चरण भले आगे आये हैं ।
भले योग में चले-भले गुन भरि लाये हैं ॥
चलो उन्हें ही सब मिलि के अब हिम्मत देवो ।
उनहीं में दै योग- चलो सुन्दर यश लेवो ॥
सब बातन में तीव्रबुद्धि तुम कहलाते हो ।
यहि कारज में देर लाय क्यों बहलाते हो ॥
सोचो, तनिक उठाय नेत्र जो तुम देखोगे ।
लाभ बहुत सर्वत्र एक लिपि में लेखोगे ॥
खोलो अब निज आंख दृष्टि योरप पर डालो ।
सब देशन की भाषा अरु लिपि देखो भालो ॥
फ्रांस, जर्मनी, रूस, स्पेन, इटली सुदेश हैं ।
स्वीडन और अनेक, माहिं योरप जु देश हैं ॥
सब की भाषा भिन्न भिन्न, लिपि मगर एक है ।
इतने ही नहिं देश, सुनो औरो अनेक हैं ॥
जो लिपि योरप माहिं वही अमरीका में है ।
मूल मंत्र में बात वही सब टीका में है ॥
आस्ट्रेलिया में बीर और टापू समूह है ।
लिपि एकै सब माहिं- नहीं फिर कछु प्रत्यूह है ॥
फल इसका प्रत्यक्ष-लाभ सब खूब लहे हैं ।
ऐक्य बढ़ावन हेतु सबै मिलि मूल गहे हैं ॥
सब भाषा अनयास पढ़ें इक लिपि रहने से ।
सब है प्रबल समाज तहां इकता गहने से ॥

किसी बात में रहै जहां समता ए भाई।
ममता तहां अवश्य होयगी-ठिक ठहराई॥
यदि समस्त भारत में भाई ममता चाहो।
रुब भारत में एक प्रबल आनन्द उमाहो॥
करि समाज बलवान सजीव बनावन चाहो।
तो नागरी प्रचार करन की रुचि अवगाहो॥
योरप के सब भिन्न भिन्न अरु दूर देश में।
एकै लिपि परचार अहै सब एकं भेष में॥
तब तुमहीं तो कहो यहां क्या सम्भव नाहीं।
एकै लिपि परचार यहां सब भारत माहीं॥
जो लिपि भारत माहिं कहीं बरती जाती है।
देवनागरी साथ वही मिलती जाती है॥
बंगला सो बहु भांति रखै यहि लिपि से समता।
तब क्यों नहीं दिखाते हो प्यारे! अब ममता॥
हिन्दी भाषा नहीं अधिक कछु तुम से चाहै।
लिपि बर्तन की बात हिये में अति अवगाहै॥
देवनागरी माहिं सबै पुस्तक छपवाओ।
निज भाषा को रखो-नागरी लिपि बरताओ॥
कोई भाषा होय, नागरी लिपिही होवै।
इतने ही के हेतु- बिचारी तब मुख जोवै॥
एक सहायक होय जाहि सो प्रबल कहावे।
सुख सों दिवस बिताय सबै बिधि आनँद पावै॥
बोस कोटि से अधिक सदा जेहि बोलन हारे॥
ऐसी हिन्दी दुखित रहै! लज्जा! हे प्यारे॥
हे गुजराती बीर, मराठी सज्जन भैया।
सब मिलि करो उपाय छुटै दुख हिन्दी मैया॥
बंगाली, मरहठा और गुजरात देश के।
यदि सब अंगीकार करैं यहि लिपि सुवेश के॥
तो तो शेष प्रदेश अवश्यहिं साथ चलैहै।
दुख दारिद्र सब मेटि सदा आनन्द करैहै॥

हे बंगाली वीर ! बनो अग्रणी आय कै ।
तुम्हरोई यह काम कहीं नाहीं बनाय कै ॥
लिपि नागरी प्रचार सकल भारत कराय कै ।
हिन्दिहिं करि संतुष्ट लेहु यश मुख बढ़ाय कै ॥
पंडित दीनदयाल धर्म के पूरे पंडित ।
वागजाल की शक्ति सदा सर्वत्र अखंडित ॥
कृपा करो हे विप्र सकल भारत में धावो ।
करि वचनामृत-वृष्टि महातम लिपि समझावो ॥
व्यापक लिपि के लाभ सबन के मन में आवैं ।
करैं सकल बरताव नागरी, सुख सरसावैं ॥
ऐसहि करो उपाय-जहां कहिं लेक्चर देवो ।
यह दुख देहु मिटाय, सुयश उज्ज्वल भरि लेवो ॥
जहां कहीं तुम जाव वहीं नागरि गुन गावो ।
सब के मन में बृहद लाभ भलि विधि बैठावो ॥
तुम यदि चाहो विप्र-चलो, कारज ह्वै जैहैं ।
रहि हैं नहिं दुखलेश, सुयश तेरो जग छैहैं ॥
बड़े पुण्य को काम, धर्म भारी इसमें है ।
इससे बढ़कर बड़ उपकार कहो किसमें है ? ॥
वीर मालवी ! जीव सकल हिन्दू समाज के ।
हम सब के अवलम्ब, शिरोमनि, बड़े काज के ॥
अधिक नहीं प्यारे तुम से कछु कहवे की है ।
एक बात में, योग तुम्हारे लहवे की है ॥
कृपा करो चित देहु नागरी लिपि में आई ।
व्यापक लिपि सर्वत्र इसे अब देहु बनाई ॥
धीरे धीरे चलो करो यह कारज भारी ।
हिन्दी भाषा दुखित विचारी ! लेहु संभारी ॥
हे उपकारी जीव ! करो उपकार जरूरा ।
सुख फैले संसार माहिं होवे यश भूरी ॥
जब लों हिन्दी, हिन्द, रहैगो हिन्दुन नामा ।
तब लों यह यश ललित रहैगो अधिक ललामा ॥

ठाकुर कवि का जीवनचरित।

[लाला भगवान दीन लिखित।]

ठाकुर कवि के मद्दे शिवसिंह, मिस्टर ग्रियर्सन, और बाबू हरिश्चन्द्र जी ने संदेह तो किया परन्तु निश्चय करने का कष्ट किसी ने नहीं उठाया। कायस्थकविमाला नामक ग्रंथ के प्रस्तुत करने में जब मुझे कायस्थ कवियों की जीवनियों की खोज हुई तब ज्ञात हुआ कि ठाकुर उपनामधारी कई एक कवि हुए हैं जिनमें से तीन ठाकुर बहुत प्रख्यात हुए हैं। एक प्राचीन ठाकुर कवि असनी ज़िला फतेपुर निवासी जो संवत् १७०० के लगभग हुए। दूसरे नरहरिवंशी असनी निवासी ठाकुर कवि जिनके पिता का नाम ऋषिनाथ था और जिन्होंने संवत् १८६१ वैक्रमीय में बिहारी सतसई की टीका [देवकीनन्दन टीका] बनाई है। इन का बहुत कुछ वर्णन साहित्याचार्य पंडित अम्बिकादत्त व्यास ने अपने बिहारीबिहार नामक ग्रंथ में लिखा है। तीसरे बुंदेलखंडान्तर्गत जैतपुर निवासी ठाकुर कवि हुए जिनका जीवनचरित इस लेख में लिखा है। अब यह प्रश्न पैदा हो सकता है कि कौन कवित्त या सवैया किस ठाकुर का है। इसका उत्तर मेरी ओर से यह है। मैंने इन तीनों ठाकुरों की कविता बड़े ध्यान से पढ़ी है और जहां तक मेरी बुद्धि में आया यही निश्चय हुआ है कि दोनों असनी निवासी ठाकुरों की कविता बहुत मिलती जुलती पुराने ढंग की है। एक स्थान निवासी होने के कारण भाषा में भी बहुत कम अन्तर है। साहित्य के बंधनों से जकड़ी हुई, नायकाभेद, अलंकार, नखशिख, और षटऋतु के व्यास के भीतर ही घूमकर रह जाने वाली है। उनकी भाषा में अन्तरवेदीय शब्द और बोल चाल के प्रचलित मुहावरे पाए जाते हैं जिनको अन्य देशीय कवि सहज रीति से प्रयोग में नहीं ला सकते। जैतपुरी ठाकुर की कविता में

बहुधा कोई न कोई लोकोक्ति अवश्य पाई जाती है और उनकी भाषा में ऐसे ऐसे बुंदेलखंडी शब्द और मुहावरे पाए जाते हैं कि अन्य देशीय कवि बिना कठिनता के उनका प्रयोग नहीं कर सक्ते। इसी कारण हाल में जो 'ठाकुरशतक' ग्रंथ भारतजीवन प्रेस, बनारस, में छपा है बहुत अशुद्ध है। थोड़ी थोड़ी कविता बानगी के ढंग पर हम आगे लिखते हैं और भाषाविद् सज्जनों से प्रार्थना करते हैं कि वे स्वयं न्याय करलें कि हमारा लिखना कहां तक ठीक है।

प्राचीन ठाकुर असनीवाले की कविता।

कोमलता कंज ते गुलाब तें सुगंध लै कै चंद ते प्रकाश कीन्हों उदित उजेरो है। रूप रति आनन तें चातुरी सुजनान तें नीर नीरवानन तें कौतुक निवेरो है। ठाकुर कहत या मसालो बिधि कारीगर रचना बिलोकि को न होत चित्त चेरो है। कंचन को रंग लै सवाद लै सुधा को बसुधा को सुख लूटि कै बनायो मुख तेरो है॥ १॥

भूल गईं खेल जो जो खेलती खिलौनन तें भूलि गईं बोलनि बनानि चंचलाई की। आवन लगी है लाज देखि मनभावन को भावन लगी है रीति भांति कबिताई की। ठाकुर कहत जोर जोबन नकीब आय अदल बदल दई ठौर ठकुराई की। मदन महीप की अवाई लखि होन लागी अगल बगल सब फौज लरिकाई की॥ २॥

साजि सूहे दुकूलन बिज्जु छटासी अटान चढ़ी घटा जोवती हैं। सुचिती ह्वै सुनैं धुनि मोरन की रसमाते संयोग संजोवती हैं॥ कवि ठाकुर वै पिय दूरि बसैं हम आंसुन सों तन धोवती हैं। धनि वै धनि पावस की रतियां पति की छतियां लगि सोवती हैं॥३॥

न्योते गये घर के सिगरे सो बेरामी को व्याज कै आजु रही मैं। ठाकुर है बहिरी इक दासी सो राखी बरोठे विचारि कै जी मैं॥ आये भजे खिरकी मग ह्वै अस आइबो चाहत ही हुती ही मैं। आजु निसा भरि प्यारे निसा भरि कीजिये लालन केलि खुसी मैं॥ ४॥

बौरे रसालन की चढ़ि डारन कूकत क्वैलिया मौन गहै ना। ठाकुर कुंजन कुंजन गुंजत भौरन भीर चुपैबो चहै ना॥ सीतल

मंद सुगंधित बीर समीर लगे तन धीर रहै ना । व्याकुल कीन्हो बसंत बनाय के जाय कै कंत सो कोऊ कहै ना ॥ ५ ।

असनी वाले दूसरे ठाकुर की कविता ।

दो०-पुत्र सुकबि ऋषिनाथ को हों है ठाकुर नाम ।
असनी बासी मैं कह्यो या लषि नृप गुणधाम ॥ १ ॥
जाहिर जग जयसाह नृप धीर बीर कछवाह ।
दत्त दच्छिणा देत तो नित प्रति पर्ब अथाह ॥ २ ॥

कारे लाल करहे पलासन के पुंज तिन्हें आपने झकोरन झुलावन लगो है री । ताही की ससेटी त्रण पत्रन लपेटी धरा धाम ते अकाश धूर धावन लगी है री । ठाकुर कहत सुचि सौरभ प्रकासन मो आछी भांति रुचि उपजावन लगी है री । ताती सीरी बैहर बियोग वा संयोग वारी आवनि बसंत की जनावन लगी है री ॥ ३ ॥

प्रात झुकामुकि भेष छिपाय कै गागर लै घरते निकरी ती । जानि परी न कितेक अवार है जाय परी जहं होरी धरी ती । ठाकुर दौरि परे मोहि देखि कै भागि बची री बड़ी सुघरी ती । बीर की सौं जो किवार न देउं तो मैं होरिहारन हाथ परी ती ॥ ४ ॥

आयो बसंत मिलो नहि कंत सो आनंद मैं तिय को लों भरैगो । जेटहू ज्वालन सो जरिहै तन कामिन काम सो को लों लरैगो । ठाकुर जो पै न आइहैं श्याम अराम को कौन उपाय करैगो । खाय दरार रही छतिया यह बूंद परे अरराय परैगो ॥ ५ ॥

जैतपुरी ठाकुर की कविता ।

दिवरानी जिठानी सबै जगतीं खड़को सुनिहैं न गहो बहियां । हमैं सोवन देउ रुलाइत का हरि धीर धरौ हिरदै महियां । कह ठाकुर क्यों उकताय लला इतनो सुनि राखिय मो कहियां । सब रैन धरी न बकाओ हमैं अबै सेर मैं पोंनी कती नहियां ॥ १ ॥

घेर भयो सिगरी नगरी हठि छेर भयो हमरी बखरी मैं । बात रजागर साच कहा जो घटैगो जफा सो कठै तखरी मैं । ठाकुर कीरति को बरनैं सो अचानक भेंट गली संकरी मैं । मूसर चोट की भीत कहा बजिकै जब मूंड़ दियो ओखरी मैं ॥ २ ॥

पावस में परदेस ते आनि मिले पिय को मन भाई भई है। ठाकुर मोर पपीहरा बोलत तापर आनि घटा उनई है। ठाकुर वा सुखकारी सोहावनि दामिनि कौंध कितै धौं गई है। री अब तो घनघोर घटा गरजो बरसो तुम्हैं धूरि दई है ॥ ३ ॥

पिय प्यार करैं जेहि पै सजनी तेहि की सब भाँति निभइ-यत है। मन मान करौं तो परौ भ्रम में फिर पीछे परे पछतइयत है। कवि ठाकुर कौन की कासों कहै दिन देखि दसा बिसरइत है। अपने अटके सुनु एरी भटू निज सौति के मायके जइयत है ॥ ४ ॥

वृन्दासी वृन्द अनेक कलीं तहं गूजरी नेह सों को अँग टोहै। भौंर को नाव भयो मन ज्यों अब जानि परी बलही जग जो है। ठाकुर वे ब्रज ठाकुर हैं सुबनी न बनी उनको सब सोहै। भौंर बड़े बड़े आन बहे तहँ डोंगिये पार लगावत को है ॥ ५ ॥

प्रथम व द्वितीय असनी वाले ठाकुरों की कविता में बेरामी (बीमारी), बरोठा (पौर), बनायकै (बिलकुल) बेहर (पवन) झुकामुकी (बड़े तड़के जब कोई पहचान नहीं सके) किवाड़ देना (कपाट बंद करना), दरार खाना (फट जाना) इत्यादि ऐसे शब्द हैं जो अधिकतर अन्तरवेद में बोले जाते हैं। और उलायत (जल्दी), तबरी (बनिज), धूर देना (चुनौती देना), बजकै (हठ करके) इत्यादि ऐसे शब्द हैं जो बुंदेलखण्डही में बोले जाते हैं ॥

असनी वाले दोनों ठाकुर भट्ट जाति के थे। जैतपुरी ठाकुर कायस्थ थे। इन्हीं कायस्थ ठाकुर की यह जीवनी है।

जीवनी।

आपका पूरा नाम ठाकुरदास था। श्रीवास्तव खरे कायस्थ थे। पिता का नाम गुलाब राय था। जैसे राय गुलाब का प्रसून सब गुलाब पुष्पों से अधिकतम सुगन्धित होता है वैसे ही ये गुलाब राय जी के प्रसून (प्रख्यात सुवन) भी हुए। पिता के नाम को सार्थक करने वाले पुत्र बिरले ही होते हैं। पिता के नाम को सार्थक करने के अतिरिक्त इन्होंने अपने नाम को भी सार्थक किया

है। भाषा रसिक सज्जनों में से कौन ऐसा होगा जो ठाकुर की कविता का आदर न करता हो। अतएव यदि हम इन्हें भाषा रसिकों का ठाकुर (बादशाह) कहें तो क्या अनुचित होगा। इनके पूर्वज काकोरी में रहते थे और इनके पितामह लाला खड्गराय जी अकबर के समय में आगरे की फ़ौज में साठ हज़ार (६००००) सवार के अफसर थे। इनके पिता का ब्याह बुंदेलखण्डान्तर्गत ओरछा निवासी राव राजा (जो उस समय महाराजा ओरछा के मुसाहिब थे) की पुत्री से हुआ। कहते हैं कि इस बारात में खड्गराय जी बारह हज़ार (१२०००) शाही सवार लाए थे। मुसाहब जी ने भी एक महीने तक बारात का परिपूर्ण आदर सत्कार किया था। इसी से ठाकुर का वंशविभव समझ लेना चाहिए। बहुत से लोग तर्क करेंगे कि लाला जी फ़ौज के अफसर कैसे। इसका समाधान यह है कि उस समय के कायस्थ निरे मुंशी, मुसद्दी और बाबू जी ही न होते थे वरन् लेखनी राय होने के साथही साथ खड्गराय भी होने का दावा और दम रखते थे। अकबर के समय के पश्चात् और खड्गराय के मृत्युवश होने पर किसी कारणवश इनके पिता गुलाब राय जी अपनी सुसराल ओरछे ही में रहने लगे। ओरछे ही में संवत् १८२३ वैक्रमीय में ठाकुर का जन्म हुआ। उस समय के लोग गणित और कविता को ही बुद्धिप्रकाशक समझते थे इस कारण उसी पुराने ढंग से ठाकुर को गणित में लीलावती और कविता में अनेकार्थ, मानमंजरी, कविप्रिया, रामचन्द्रिकादि पढ़ाए गए। बुद्धिविकासनार्थ ठाकुर ने दो एक पुराणों के भाषानुवाद भी देख डाले और कुछ संस्कृत भी सीखी। यद्यपि हम यह नहीं कह सकते कि वे संस्कृत के पण्डित थे क्योंकि ऐसी बात उनकी कविता से प्रगट नहीं होती तथापि जितनी संस्कृत भाषा कविता सम्बन्ध में आवश्यक है उतनी वे अवश्य जानते थे। कुछ दिनों बाद इनके वंश के और लोग भी काकोरी छोड़कर बुंदेलखण्ड आए और जैतपुर बिजावर में बसते गए।

भारतवर्ष में काकोरी ग्राम (ज़िला लखनऊ) सुबुद्धि-जन-जन-कस्थल होने के कारण अब तक प्रसिद्ध है अतएव इस ग्राम निवास

कायस्थ कुल में जो बच्चा पैदा हुआ वह बुद्धिमानी और चातुर्य का बीज अपने हृदय ही में रखता था। इस पर बुंदेलखण्ड की कविकर-दृश्यमाला ने उसके मनोवेग को दुबाला कर दिया अतएव बचपनही से ठाकुर को कविता का चसका लगा।

लार्ड मेकाले का कथन है कि कोई मनुष्य उसी भाषा में विज्ञ हो सकता है जिसको वह बोलने पहिले लगा हो और जिसका व्याकरण उसने पीछे सीखा हो। इसी कथन के अनुसार ठाकुर का हाल था अर्थात् ठाकुर ने अपनी मातृभाषा बुंदेलखंडी भाषा को ही अपनी कविता मे बरता। न तो केशवदास और तुलसीदास जी की तरह किताबी भाषा उन्होंने बरती, न पजनेश की तरह नई गढंत की; वरन अपने लिये एक विलक्षण ही भाषा अंगीकार की जैसी किसी दूसरे बुंदेलखंडी कवि को नहीं मिली। कविता में निपुण होकर ठाकुर ने जैतपुर में रहना अख्तियार किया। उस समय जैतपुर में महाराज केशरीसिंह जी राजा थे। इनकी बुद्धि और चतुराई को देख महाराज केशरीसिंह इनसे बहुत स्नेह रखने लगे और एक ग्राम परगना करैया में नानकार के तौर पर ठाकुर को देकर उन्होंने उसे अपना दरबार कवि अंगीकार किया। ठाकुर कभी कभी बिजावर में भी जाकर ठहरा करते जहां उनके वंश के लोग पहिले से बसते थे। उस समय बिजावर में जो राजा थे उनका भी नाम केशरीसिंह था। जैतपुर नरेश ने जो मान ठाकुर का किया था उसका हाल सुनकर महाराज बिजावर ने भी एक ग्राम जिसका नाम रौरा है नानकार में इन्हें दिया। इनके काकोरीय वंश के वंशधर लाला हरसेवक लाल अबतक बिजावर में मौजूद हैं और दरबार बिजावर के सरिश्तदार हैं। ये महाशय कवि तो नहीं हैं परन्तु रियासती काम काज में बड़े चतुर और हिन्दी उर्दू में बहुत योग्य पुरुष हैं।

सर पर पगड़ी, बदन पर खुली बाहों की मिरजई, कमर से कसी हुई एक ओर तरवार एक ओर बुंदेलखंडी हाथ भर लंबी पीतल की दावात, पांव में झब्बे दार बुंदेलखंडी जूता, यह उस समय के बुंदेलखंडी कायस्थों का फैशन था। इसी से ठाकुर का भी फोटो समझ लेना चाहिए। न उस समय फोटोग्राफी के यंत्र का

चलन था, न उस समय का अब कोई मनुष्य मौजूद है जिससे ठाकुर की सूरत शकल का अनुहार पूछें परन्तु,

'देखन चाहो मोहि जो मम कबिता लखि लेहु।'

के अनुसार हम ठाकुर के मनोगत भावों को उनकी कविता से समझ कर अनुमान कर सकते हैं कि ठाकुर कवि दूरदर्शी, देश, काल की चाल को समझने वाले, हँसमुख, सौन्दर्योपासक, ईश्वर पर भरोसा रखने वाले, चतुर और नम्र स्वभाव के मनुष्य थे। जैतपुर नरेश केशरीसिंह जी के देवलोक होने पर उनके पुत्र राजा परीक्षत नाबालिग थे। उनकी नाबालिगी के कारण राज्य काज में गड़ बड़ देख ठाकुर विजावर में रहने लगे परन्तु जब राजा परीक्षत सयाने हो कर राज्यसिंहासनासीन हुए तो उन्होंने ठाकुर को फिर अपने दरबार में बुला लिया। इन्हीं महाराजा परीक्षत के समय में ठाकुर की प्रख्याति हुई। महाराज परीक्षत इनको अपने दरबार का रत्न समझते थे और नानकार के अतिरिक्त समय समय पर उपहार व पुरस्कार देकर इनका सत्कार करते थे। समयानुसार ठाकुर जी बुंदेलखंड के अन्य राजाओं के दरबार में भी जाया आया करते थे। बांदेवाले हिम्मत बहादुर गोसांई ठाकुर की कविता का बड़ा आदर करते थे और कभी कभी अपने दरबार कबि पद्माकर जी से उन्हें भिड़ा देते और फिर दोनों कवियों की बुद्धिमत्ता का तमाशा देखने।

विशेष बातें।

१—एक समय हिम्मत बहादुर के दर्बार में पद्माकर जी और ठाकुर दोनो मौजूद थे। इसमय छेड़ छाड़ की इच्छा से हिम्मत बहादुर ने पद्माकर जी से पूछा कि 'कहिए कबि जी लाला ठाकुर दास जी की कविता कैसी होती है'। पद्माकर ने कहा 'गोसांई जी लाला साहेब की कविता तो अच्छी होती है परन्तु पद कुछ हलके से जंचते हैं'। ठाकुर ने तत्काल जवाब दिया कि 'इसी से तो हमारी कबिता उड़ी उड़ी फिरती है'। वाह रे गुरु! वास्तव में ऐसा ही है। भारतवर्ष के इस सिरे से उस सिरे तक, जिस सूबे में जहां कहीं हिन्दी भाषा रसिक जनों से पूछिए ठाकुर की कविता कुछ न कुछ अवश्य स्मरण होगी। इतनाही नहीं बरन् अन्य ग्रंथ-

कारों ने अपने अपने ग्रंथों में उचित स्थान पर इनकी कविता प्रमाण रूप से लिखी है। पद्माकर की कविता को अभी तक यह सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ।

कविता मर्मज्ञ लोग कवि और कविता की परिभाषाओं को लिख गए हैं कि कवि वह है जिसके चित पर प्राकृतिक भावों का अर्थात दुःख सुखादिक का प्रभाव विशेष रूप से पड़े और जैसा सुख दुःख वह स्वयं अनुभव करै ठीक वैसाही दूसरों को समझा देने की सामर्थ उसकी भाषा में हो। जिसके चित्त पर ऐसा प्रभाव पड़े वह कवि है और जिस कविता में यह सामर्थ्य हो वह कविता है। ऐसा स्वभाव ठाकुर का था और उनकी भाषा में वैसा सामर्थ भी है अतएव हम ठाकुर को सच्चा कवि और उनकी कविता को सच्ची कविता कहने में कभी संकोच नहीं कर सकते।

२- ठाकुर ने स्वयं यह बात कही है कि कही हुई बात के शब्दों के हेर फेर से फिर से दोहराना कविता नहीं है। वरन् सदैव अनूठी बात कहने का उद्योग करना ही कवि का काम है। प्रमाण लीजिए।

सवैया।

मोतिन कैसी मनोहर माल गुहै तुक अच्छर जोरि बनावै। प्रेम को पंथ कथा हरि नाम की बात अनूठी बनाय सुनावै। ठाकुर सो कबि भावत मोहि जो राज सभा में बड़प्पन पावै। पंडित और प्रवीनन को जोइ चित्त हरै सो कवित्त कहावै।

जान पड़ता है कि ठाकुर ने अपने इसी सिद्धान्त पर स्थित रह कर अपने समकालीन अन्य कवियों की तरह कोई ग्रंथ नायका भेद या अलंकार का नहीं रचा वरन् वे सदा फुटकरही काव्य करते रहे।

ठाकुर की दूरदर्शिता और उनका देश काल का ज्ञान।

३-जिस समय बांदा वाले हिम्मत बहादुर गोसांई ने धोखा देकर महाराज परीछत को बांदे बोलाया और महाराज परीछत तैयार होकर कुछ दूर निकल गए उस समय ठाकुर जैतपुर में मौजूद

न थे। किसी अन्य ग्राम को गए थे, थोड़ी देर के अनन्तर ठाकुर को महाराज साहब के चले जाने की खबर मिली। अपनी दूर-दर्शिता और देश काल के ज्ञान से तत्काल समझ गए कि महाराज जो वहां जाकर या तो मारे जांयगे या कैद होंगे (हिम्मत बहादुर ने अंगरेजों से यही वादा किया था)। बहुत काल से ठाकुर कवि महाराज परीछत का नमक खाते थे। फौरन घोड़े पर सवार हो मारामार श्रीनगर के निकट महाराज से जा मिले और घोड़े से उतरतेही उन्होंने यह सवैया पढ़ा—

सवैया।

*कैसे सुचित भये निकसौ बिहंसौ बिलसौ हरि दै गल बांहीं।
ये छल छिद्रन की बतियां छलती छिन एक घरी पल मांहीं।
ठाकुर वे जुरि एक भई रचिहैं परपंच कछू ब्रज मांहीं।
हाल चवाइन की दुहचाल सो लाल तुम्हें या दिखात कि नाहीं।

महाराज साहेब उस समय दतुवन कर रहे थे मुसकुरा कर चुप हो रहे। ठाकुर ने दूसरा सवैया यह कहा।

सवैया।

निज मंत्र न औरन सों कहने अपने चित चोभ बिचारने है।
पुनि नेक को नेक लटे को लटो यह रीति सदा उर धारने है।
कह ठाकुर प्यारे सुजान सुनो मन की उरझी निरवारने है।
चहुं ओर से चौ चंद चार उठो सो विचार कै यार संभारने है।

महाराज परीछत समझ गए कि साक्षात सरस्वती देवी ही कवि जी के मुख पंकज पर बिराजमान होकर मुझे बांदा जाने से रोक रही हैं बस वहीं से लौट पड़े। तब हिम्मत बहादुर ने ठाकुर को बोला भेजा। पहिले से ही हिम्मत बहादुर ठाकुर की कविता का आदर करते थे अतएव ठाकुर तनक भी न डरे और साधारण स्वभाव से उसके यहां चले गए। हिम्मत बहादुर ने सरे दरबार ठाकुर पर अपना क्रोध प्रगट किया और कैद करने की धमकी दी। ठाकुर ने उसी समय यह कवित्त कहा।

वेई नर निरनय निदान में सराहे जात सुख न अघात प्याला प्रेम को पिये रहैं। हरि रस चन्दन चढ़ाय अग अंगन में नीति को तिलक बेंदी जस की दिये रहैं। ठाकुर कहत मंजु कंज तें मृदुल मन मोहनी सरूप धारे हिम्मत हिये रहैं। भेंट भये समये कुसमये अचाहे चाहे ओरसों निबाहै आखें एकसी किये रहैं।

हिम्मत बहादुर इस कबित्त के तर्क को समझ तो गए परन्तु क्रोध शान्त न होने के कारण फिर भी कुछ बदज़बानी कर बैठे। ठाकुर ने भरे दरबार अपनी तरवार म्यान से निकाल ली और कड़क कर यह कवित्त कहा।

सेवक सिपाही हम उन रजपूतन के दान युद्ध जुरिबे में नेकु जे न मुरके। नीति देन वारे है मही के महिपालन को कवि उनही के जे सनेही सांचे उर के। ठाकुर कहत सम बैरी बेवकूफन के जालिम दमाद हैं अदानियां ससुर के। चोजन के चोर रस मौजन के पातसाह ठाकुर कहावत पै चाकर चतुर के।

जब हिम्मत बहादुर ने देखा कि कवि जी को क्रोध आगया और सरस्वती जी जिह्वा पर बिराजकर कविताधारा बहा रही हैं तब वह दबक रहा और अपने सहज स्वाभाविक ढंग से मुसकुरा कर बोला कि "बस बस कवि जी बस, हम केवल इतनाही देखना चाहते थे कि आप केवल कविही कवि हैं कि पूर्वजों की तरह आप में कुछ हिम्मत भी है"। इन बचनो ने ठाकुर की क्रोधाग्नि को कुछ कुछ शान्त कर दिया। उन्होंने तरवार म्यान में रखली और मुसकुराकर बोले "राजा साहब हिम्मत तो हमारे ऊपर सदैव काल से अनूप रूप से बलिहार होती रही है आज हमारी हिम्मत कैसे गिर जायगी"। इस पद के व्यंग भरे शब्दों ने हिम्मत बहादुर के चित्त को फड़का दिया, उसने अपने कटु बचनों की क्षमा मांगी और बहुत सा पारितोषिक देकर ठाकुर को बिदा किया। (पाठकों को ज्ञात होना चाहिए कि यह हिम्मत बहादुर जाति के गोसाईं थे असल नाम इनका अनूपगिरि था। राजा हिम्मत बहादुर शाही खिताब था)।

४–जिस समय ठाकुर कवि महाराज किशोर सिंह पन्ना नरेश के दरबार में गए उस समय राजश्री कुछ खानमुख थी, लोगों

का रंग ढंग बदला हुआ था, दरबारियों में परस्पर विरोध था, स्वार्थ परता की उन्नति हो रही थी। इन बातों को देख आपने जो कविता बनाई थी उसमें के दो एक सवैया ये हैं।

चाल न वा चरचा न वा चातुरी वा रस रीति न प्रीति को ठौर है। सांच घटो बढो झूंठ जहान में लोभ के लाने जहां तहां दौर है। ठाकुर बेई गोपाल वही हम वोही चवाव रहो इक ठौर है। मेरेइ देखत मेरी भटू सिगरो ब्रज ह्वै गयो और को और है।

वे परवीन विचच्छन लोग बने पै समै कछु आन भये री। चोखे सवाद जहां अति मीठे सो मीखे सुभाय नयेई नयेरी। ठाकुर कौन सों का कहिये अब वे चित चाहवे वे समये री। वे दिन वे सुख वैसे उछाह सो वे सब वीर हेराय गये री।

इन्हीं महाराज किशोर सिंह की छोटी रानी जिन पर महाराजा जी विशेष प्रेम करते थे इतनी अधिक लज्जावती थीं कि एकान्त स्थल में भी महाराज साहिब के सामने कभी घूंघट न उठाती थीं। महाराज साहब चाहते थे कि कुछ देर तक तो भला घूंघट खोल कर हमसे प्रेमालाप किया करें परन्तु महारानी जी न मानती थीं। किसी समय महाराज जी ने बात चीत में यह हाल ठाकुर कवि को सुनाया। ठाकुर ने तुरन्त निम्न लिखित सवैया बनाकर महाराज साहब को दिया और कहा कि आज रात को आप स्वयं यह सवैया पढ़कर महारानी जी को सुनाइएगा।

यों तरसाइबो कौने बदो मन तो मिलिगो पै मिलै जन जैसो। कौन दुराव रहो उनसों जिनके संग साथ करो सुख ऐसो। ठाकुर या निरधार सुनो तुम्हें कौन सुभाव परो है अनैसो। प्राणप्रिया घट में बसि कै हँसि कै फिर घूंघट घालिबो कैसो।

कहते हैं कि महारानी साहबा ने इस कवित्त के लिये ठाकुर को बहुत कुछ इनाम दिया था और उतनी अधिक लज्जा करनी भी छोड़ दी थी। महाराजा साहब के बैकुंठ बास होने पर यही महारानी जी सती हुई थीं। पन्ना में इनका समाधिस्थल अब तक वर्तमान है।

५- ठाकुर की सौन्दर्योपासना और हृंमोइपन निम्न लिखित वार्ताओं से प्रगट होता है।

(१) सौन्दर्योपासना।

कहते हैं कि जिस समय ठाकुर बिजावर में रहते थे उन दिनों एक अत्यन्त रूपवती सुनारिन भी वहां थी। उसके सौन्दर्य के आप बड़े उपासक थे। जिस दिन किसी कारण उसके दर्शन न पाते उस दिन बड़े उदास रहते। गली घाट जहां कहीं वह मिल जाती हाथ जोड़ कर दंडवत करते और एक कवित्त उसी समय उसकी रूप छटा पर बनाकर तैयार करते और ज़ोर से पढ़ते ता कि वह सुन ले। इतने के अतिरिक्त कोई और अनुचित वासना उनके चित्त में न थी। कुछ दिन तक तो उस सुनारिन ने इनके इस कर्तव्य पर कुछ ध्यान न दिया परन्तु जब उसे ज्ञात हुआ कि कवि जी मेरे स्वरूप पर मोहित हैं तब वह स्वयं किसी न किसी तरह इनको अवश्य दर्शन देती और उस समय की रसमय कविता बड़े ध्यान से सुनती। एक समय वह बीमारी के कारण चार दिन तक मकान से बाहर न निकली। पांचवें दिन रात्रि को ठाकुर ने उसके मकान के पीछे वाली गली में चलते चलते यह सवैया कहा।

मति मेरी यही निसवासर है चित तेरी गलीन के गाहने है।
चित कीन्हों कठोर कहा इतनो अब तोहि नहीं यह चाहने है।
कवि ठाकुर नेकु नहीं दरसी कपटीन को काह सराहने है।
मन भावै सुजान सोई करियो हमैं नेह को नातो निबाहने है।

सुजान शब्द ने इस सवैया में जान डाल कर उसके रस को द्विगुणित कर दिया (कहते हैं उस स्त्री का नाम सुजान था)। इस रूप रस के प्यासे कवि की वाणी ने उसके हेतु औषधि का काम किया। उसी रात्रि भर में वह चंगी हो गई कि दूसरेही दिन पानी भरने के मिस कुंए पर आकर ठाकुर कवि को उसने दर्शन दिए।

दुनियां बड़ी विचित्र है। जो जैसा होता है बहुधा वह मनुष्य दूसरों को भी वैसाही समझता है। उस स्त्री के घर वालों

को कुछ संदेह सा हुआ और उन्होंने उस समय के बिजावर नरेश से कवि जी की कुछ शिकायत की। महाराज जी ने उन लोगों को समझा बुझा संतोष दे बिदा किया। उनके चले जाने पर ठाकुर कवि को बुलाया और पूछा कि इस मामले में कितनी सत्यता है। ठाकुर ने साफ कह दिया कि मैं उसके सौन्दर्य का उपासक हूं और अन्य बात से मुझे कुछ सम्बन्ध नहीं। मेरी इस बात के साक्षी नारायण हैं। महाराज जी को बिश्वास नहीं हुआ। दंड स्वरूप सात रोज़ तक अपनी निज ड्योढ़ी में नज़र कैद रहने की आज्ञा दी। कहते हैं जिस दिन यह आज्ञा दी गई और ठाकुर ड्योढ़ी में बाहर जाने से रोके गए अकस्मात उसके दूसरे दिन वह कुंआ जहां वह स्त्री पानी भरने आया करती थी और जहां जाकर ठाकुर कवि उसके दर्शन किया करते थे सूख गया। अकस्मात कुंआं सूख जाने की चरचा सारे शहर में फैली। लोग कारण सोचने लगे। उस स्त्री ने अपने पति से कहा कि ठाकुर जी पर आपने निर्दोष संदेह करके उन्हें नज़र कैद कराया है इसी कारण यह कुंआं सूख गया यदि वे रिहा न किए जांयगे तो सात दिन में कुल शहर के कुंएं सूख जांयगे। पति ने समझा कि यह मेरी स्त्री स्वयं खोटी है इस बहाने अपने जार को रिहा कराना चाहती है। ऐसा बिचार उसने उसके कथन पर कुछ ध्यान न दिया। दूसरे दिन उस मोहल्ले भर के (जिस मोहल्ले में वह स्त्री रहती थी) कुल कुंएं सूख गए। तब तो उसके पति को बिश्वास आया, जाकर सब हाल महाराज को सुनाया। ठाकुर रिहा किए गए। दूसरेही दिन सब कुंएं ज्यों के त्यों जल से परिपूर्ण हो गए और ठाकुर की अमलता प्रमाणित हो गई। ठाकुर रूठकर बिजावर से चले गए और फिर बिजावर कभी नहीं गए। कहते हैं कि अपने सच्चे रूप रसिक के वियोग से सधवा होने पर भी उस स्त्री ने मरते दम तक कभी शृंगार न किया।

(२) हँसोड़पन।

जैतपुर नरेश महाराज परीक्षत सायंकाल को एक स्थान पर बैठते जहां से सर्वसाधारण के आने जाने का रास्ता था। दर-

ड्यौढ़ी लोग भी आ डटते, चुहल पुहल होती, ठाकुर कवि भी मौके मौके पर अपनी मधुर कविता सुनाकर महाराज को प्रसन्न करते। एक महाजन की बहू शौचादि क्रिया को उस रास्ते से आया जाया करती। परन्तु नव यौवना होने पर भी अन्य नवोढ़ाओं की तरह वह चपल न थी। बड़ी गंभीरता के साथ सिर निहुराये घूंघट काढ़े जाया आया करती। राजाओं के दरबारियों में सब प्रकार के मनुष्य होते ही हैं। उस युवती के रूप गुण और विद्या की प्रशंसा एक दरबारी की श्रवणेन्द्रिय तक पहुंच चुकी थी। अतएव उसके रूप देखने की उसे बड़ी उत्कण्ठा थी। यह बात महाराज परीक्षत को भी ज्ञात थी। एक दिन सबके सामने उस दरबारी ने ठाकुर से कहा कि कवि जी यदि अपनी कविता के बल से इस स्त्री की दृष्टि अपनी समाज की ओर आकर्षित कीजिए तो जानें कि आप सच्चे कवि हैं। दूसरे दिन जब वह स्त्री उस रास्ते से निकली तब ठाकुर ने यह सवैया उच्च स्वर से पढ़ा—

सवैया।

आंखन देखत ध्यान में बोलत नेह बढ़ाये निते आ निते जा।
बदमुखी यह सोच बिहाय कै मानो खुसी अभिमानी किते जा॥
ठाकुर छैल छबीलि छिपे कहु सौतिन माहि सुहाग जितैजा।
दै जा दिखाईदी के जा निहाल बिते जा वियोग चितै जा चितै जा॥

इस सवैया की विद्युत् शक्ति ने उसे उस ओर दृष्टिपात करने के लिये विवश कर दिया। समाज की ओर देख कर मुसकुरा गई और तत्काल अपना एक सुवर्ण कंकण उतार कर ठाकुर को कवित्वशक्ति का पुरस्कार देगई। घर जाकर सच्चा हाल उसने अपने ससुर से कह सुनाया। उसके ससुर ने कहा कि दोनो कंकण देदेती तब ठाकुर की कवित्वशक्ति का पूर्ण पुरस्कार होता। महाराज परीक्षत उस नव यौवना की यह उदारता देख भौंके से रह गए। पीछे से ज्ञात हुआ कि वह स्त्री स्वयं भी कविता करती था विदुषी थी और "चितै जा चितै जा" के विप्सा प्रयोग पर रीझकर उसने ऐसा किया था। महाराज परीक्षत ने कई एक जनाने जेवर अपने तोशाखाने से निकलवाकर उस स्त्री को उपहार

हुए भेजवाए और कहला भेजा कि यह इनाम हम तुमको इस खुशी में देते हैं कि हमारी बस्ती में एक स्त्री भी कविता में निपुण है ।

६–ठाकुर कवि यद्यपि कृष्णोपासक थे तथापि राम और कृष्ण को एक ही समझते थे । कहते हैं एक समय आप रोग ग्रसित हुए और वह रोग इतना बढ़ गया कि प्राण बचना कठिन जान पड़ा । महाराज परीछत ने अपने निज राजवैद्य को आज्ञा दी कि ठाकुर की चिकित्सा करो । वैद्यराज ने औषधि बनाई और कहा कि परसो शुभ दिन से औषधि सेवन करिएगा । ठाकुर रोग की पीड़ा से व्याकुल थे धीरज न धर सके और निम्न लिखित कवित्त कह के उसी दिन से औषधि सेवन करने लगे ।

कवित्त ।

राम मेरे पंडित अखंडित सुदिन सोधें राम मेरे गुरु जप मेरे राम नाम हैं । राम राम गावतहि राम राम ध्यावतहि राम राम सोचत कटत आठो जाम है । ठाकुर कहत सांची आस मोहि रामही की रामही से काम धन धाम मेरे राम हैं । राम मेरे वैद्य विसराम मेरे राम साचो राम मेरो औषधि जतन मेरे राम हैं ।

कहते हैं कि औषधि सेवन तो करते जाते थे परन्तु इस कवित्त को हर समय पढ़ते ही रहते । औषधि के प्रभाव और राम की कृपा से एक अठवारे में रोग शांत होगया । नवें दिन वे अपने काम काज में लगे । इस चरित्र से साफ जान पड़ता है कि ठाकुर कवि राम और कृष्ण में भेद न मानते थे और ईश्वर पर पूर्ण भरोसा रखते थे ।

७–जो मनुष्य ईश्वर के ईश्वरत्व पर इतना भरोसा रक्खेगा वह अवश्य नम्र होगा । अधिक प्रमाण अनावश्यक जान पड़ता है ।

८–ठाकुर कवि चतुर थे इसका प्रमाण देनाही वृथा है क्यों कि चतुराई तो कविताई की माई है । चतुर न होगा वह कविता क्या करैगा ।

९–साधारण कहनि में उच्च सिद्धान्त की बात कहना कवि का मुख्य गुण है । यह गुण ठाकुर में बहुत अधिक था । देखिए

बेपरवाही करने पर भी प्रेमपात्र के हृदयंगत भाव का भेद आपने किस अच्छे ढंग से खोला है।

वा निरमोहिनि रूप की रासि जो ऊपर ते उर आनति ह्वैहै। बारहि बार बिलोकि घरी घरी सूरति तो पहिचानति ह्वैहै॥ ठाकुर या मन की परतीत है जो पै सनेह न मानति ह्वैहै। आवत है नित मेरे लिये इतनो तो विशेष कै जानति ह्वैहै॥

१०— आप सौंदर्योपासक अवश्य थे परन्तु यदि सौंदर्य के साथ साथ कोई अवगुण देखते तो तत्काल उसकी निंदा करते। एक धनवान पड़ोसी की लड़की जो रूपमाती थी और गौने के पश्चात् ससुराल से वापस आई थी दिन में कई बार घर से निकल परोस की सखी सहेलियों से मिलने को जाया करती। आपको उसकी यह चंचलता असह्य हुई और निम्न लिखित सवैया सुनाकर उसे डांट बताई।

लहरैं उठै अंग उमंगन की मद जोबन के बहराती फिरै। बहुरी अंखियान चितै तिरछे चित लोगन के लहराती फिरै॥ कह ठाकुर है अति ओप खरी निरखे न थिरै थहराती फिरै। सिर ओढ़े उढ़ौनी कसे छतियां फरिया पहरे फहराती फिरै॥

११—किसी रूपवती स्त्री की जिस छटा पर आपका चित्त प्रसन्न होता उस छटा का चित्र आप तत्काल अपने कविता—कैमेरा से खींच पबलिक में पेश करते। निम्न लिखित दो चार फोटो आपके सामने पेश हैं। आपही न्याय कीजिए कि ठाकुर की कविता की शक्ति कैसी थी।

काजर की रेख नैन बेंदा हू लिलार सोहै नैनन की कोर तें झकोर खूब दै गई। करे ज्यों सिंगार सब भूषण अनेक रंग काम की उमंग में चोराय चित लै गई॥ ठाकुर कहत प्रीति रीति ना बिचारी कछू जोबन के मान में गुमान कछु कै गई। चट छल छाय कै लटकि मुसकाय कै चटाक चित्त चोरि कै झटाक पट दै गई॥

रेसम को गुन, छीन छला कर, ऐंचि कै तोरि सनेह रचावै। देह दसो अंगुरी कर पांय बरै सुरझाय कै रंग मचावै॥ दोहत सों

मन मोहत सी तन छोहत सी छवि भौंह चलावै। चंचल नैनन सैनन सों पटवा की बहू नटवा से नचावै ॥ २ ॥

बाहर लौन कढ़ै कबहूं कढ़ि देहरी लों बिछिया झमकावै। अंचल ओट दै चोट करै अरु ओट अटारी के चंचल गावै ॥ एक पलौ बिसरै न कहीं अरु कोटि कला करि जी ललचावै। आंखिन आवै हिये लगि जावै पै प्यारी परोसिन हाथ न आवै ॥ ३ ॥

आवै चली गज चाल सों बाल बिसाल सरूप की रासि तुषी सी। ओज मनोज की मौज भरो तन जानि परै सब भांति पुषी सी ॥ ठाकुर को उपमा बरनै सब ओर निहारत एक रुषी सी। राखै खुसी मन यारन के जजमानिनी बानिनी चंद मुखी सी ॥ ४ ॥

१२—त्योहारों और अन्य अन्य आनन्द के समयों पर जो कविता ठाकुर ने रची है बहुत उत्तम है ॥ अखती, फाग, बसंत, दशहरा, हिंडोरा इत्यादि समयों की कविता बहुत सुंदर है। बानगी देखिए ॥

* अखती।

अखती रची राधिका मोहन सों बधू को हठि नाम लिवावती हैं। भरहरावती भौंह झुकावती फेरि लिये कर लौद खिझावती हैं ॥ कहि ठाकुर काम गुरू के कहते कहौ जू कहौ जू सुनावती हैं। रसरीति के प्रीति के प्रीतम को बिसरे मनो अंक पठावती हैं।

लांबी लचकारी लौद लीन्हे हौ गोपाल लाल सो न घालि दोजो घाले घनो रसघट है। छौ जो जैहै काहू व्रज बनिता नवेली अंग गड़ की तिहारी कान्ह एकहु न सटहै ॥ ठाकुर कहत टेक एकहू न रैहै धरी संग में सहेली एक एक तें बिकट हैं। मेरे लगि जैहै तो दुहाई वृषभान जू की ऐसी लौद घालिहों कि चोकर उपटहै ॥

* बैसाख शुक्ल ३ (अक्षय तृतिया) को बुंदेलखंड निवासी नर नारी सज बज कर नगर से बाहर बट पूजन को जाते हैं और एक दूसरे पर चमेली या गुलाब की छड़ी छांटते हैं और मर्द से पत्नी का और स्त्री से पति का नाम लिवाते हैं—यह त्योहार अखती के नाम से प्रसिद्ध है।

फाग ।

रंग सों मचि रही रसफाग पुरी गलियां त्यों गुलाल उलीच में । जाय सकैं न इतै न उतै सो घिरे नर नारि सनेह रगीच में ॥ ठाकुर ऐसो उमाह मचो भयो कौतुक एक सखीन के बीच में । रंग भरी रसमाती गुवालि गोपालहि लै गिरी केसर कीच में ॥

बसंत ।

गावैं पिक बैनी मृग नैनिहू बजावैं बीन नाचै चन्द्रमुखी चारु चौर की चटक पै । कीरति कुमारी वृषभान की दुलारी राधे अटकी बिलोकि लोक लाज की अटक पै ॥ ठाकुर कहत चीर कमर के रंग रंगो अतर पगो सों मनमोहै पीत पट पै । देख तो दृग्यात कैसो राजत रसीलो आज आली री बसंत बन माली के मुकट पै ॥

दशहरा ।

धम धम धौंसन की धुनि धुनि लाजैं घन फहरैं निसान आसमान अग छैठे हैं । केहरी कपिंद हय हंस मूसा नादिया हू और सब बाहन उमाहन उमैठे हैं ॥ ठाकुर कहत सुर असुर समूह नर नारिन के जूह नंद मंदिर में पैठे हैं । आवो चलो लीजिये जू कीजिये जनम धन्य करुणा निधान कान्ह पान देन बैठे हैं ॥

हिंडोरा ।

बिंद्राबन युगुल किसोर परना के धाम स्याम अभिराम राधे और दृग जोरे हैं । सावन की तीज तजबीज के बसन सूहे पहिरे बिमल जामें सौरभ झकोरे हैं ॥ ठाकुर कहत देत दरस दयाल भये देखत दुखैयन के लेत चित चोरे हैं । बोलती हैं मोरें शोरों घनन की घोरें ओर दोनो गठ जोरे आजु झूलत हिंडोरे हैं ॥

तात्पर्य यह कि जब हम इनका उस समय के अन्य कवियो से मुकाबिला करते हैं तब हम भाषा की सरलता, सरसता, बोल चाल, अनूठी उक्ति और साधारण कहनि में इन्हीं को सब से बढ़ कर पाते हैं और बिबश होकर इन्हें उस समय का कविराज कहना पड़ता है ।

संवत् १८८० के लगभग इनका देहान्त होना पाया जाता है। इनके भाई मानिक लाल की एक लड़की बिजावर में ला० हीरालाल को ब्याही थी जिनके प्रपौत्र बकसी गुलाब सिंह जी खासकलम अभी बिजावर में वर्तमान हैं। ठाकुर के पुत्र का नाम दरयाव सिंह था। ये भी कबि हुए। इनका उपनाम चातुर था। इनका भी जीवनचरित हमने तैयार कर लिया है समय आने पर प्रकाशित किया जायगा। चातुर के पुत्र शंकर प्रसाद हुए। ये भी कबि हुए। इनकी बिधवा स्त्री आज दिन बिजावर में वर्तमान है। पुत्र कोई नहीं। ठाकुर कबि का बंशवृक्ष जो हमको बिजावर निवासी लाला हरसेवक लाल से मिला है नीचे लिखा जाता है।

इस जीवनी के लिखने में ला० देवीप्रसाद जी हेडमास्टर, बिजावर ने हमें विशेष सहायता दी है अतएव हम उनको विशेष धन्यवाद देते हैं।

ठाकुर कवि का वंशवृक्ष।

ये महाराज श्री वर्तमान थे
दरबार बिजावर में रोज़गार थे

इन की विधवा अभी
बिजावर में वर्तमान है।

हर सेवक लाल	शंकर प्रसाद (शंकर)
युगुल शरण	दरयाव सिंह (चातुर)
जयबिहारी	ठाकुरदास (ठाकुर) — मानिक लाल
नंदलाल	गुलाब राय
रोशन लाल	

इन की पुत्री
के प्रपौत्र बक्सी गुलाब सिंह
बिजावर में वर्तमान हैं

ला० खड्गराय
साठ हज़ारी

भारतवर्ष की सब भाषाओं के लिये एक लिपि।

शुक्रवार ता० २९ दिसम्बर १९०५ को सबेरे ८ बजे नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से भारतवर्ष की सब भाषाओं के लिये एक लिपि के विषय में प्रामाणिक सम्मति एकत्रित करने के लिये सभाभवन के पश्चिम ओर एक शामियाने में एक साधारण सभा हुई थी जिसमें देश के हजारों बुद्धिमान विद्वान और धनाढ्य लोग एकत्रित थे।

इस सभा के सभापति, बरोदा के मिस्टर रमेशचन्द्र दत्त आई॰ सी॰ एस॰, सी॰ आई॰ ई॰ का स्वागत बड़े हर्षपूर्वक देर तक तालिध्वनि द्वारा किया गया। उन्होंने निम्न लिखित वक्तृता के साथ इस सभा का कार्य आरम्भ किया—

"सज्जनो, आज का कार्य आरम्भ करने के पहिले मुझे आप लोगों को ¼ घंटे तक ठहराए रखने के लिये क्षमा मांगनी है। परन्तु आज प्रातःकाल मुझे कांग्रेस का बहुत ही आवश्यक कार्य था और इस सभा में मुझे देर हो जाने का यही कारण है।

"इस सभा का उद्देश्य सारे उत्तरीय भारतवर्ष में तथा पश्चमी भारतवर्ष के उन भागों में जहां कि संस्कृत भाषा का प्रचार है एक लिपि के प्रचार करने का है। यह बिचार केवल यहां ही नहीं हुआ वरन् यह बहुत समय से बंगाल तथा पश्चमी भारत के बहुत से भागों में रहा है।

"मुझे स्मरण है कि बहुत वर्ष हुए कि बंगाल में सारे भारतवर्ष के लिये एक लिपि अर्थात् रोमन लिपि करने का कुछ लोगों का बिचार हुआ था। निस्सन्देह यह बिचार बहुतही हास्यजनक था और वह सफल नहीं हो सका।

"तब सज्जनो। यहां आप लोगों ने देवनागरी लिपि को उत्तरीय भारतवर्ष के सब संस्कृत बोलनेवाले लोगों की एक मात्र लिपि करने का बिचार किया। और आप की सभा की जो रिपोर्टें प्रति-वर्ष छपी हैं और जिन्हें आप के मंत्री ने कृपा कर मुझे दिया है उनके देखने से बिदित होता है कि गत बारह वर्षों में बहुत उत्तम कार्य हुआ है।

'आप लोगों ने वास्तव में बहुत कुछ काम किया है और मैं सच्चे हृदय से विश्वास करता हूं कि आप लोगों के उद्देश्य की पूर्ति होने तक आप लोग निरन्तर ऐसाही उद्योग करते रहेंगे।

"सज्जनो किसी जाति के लिये एक नई लिपि का व्यवहार करना पहिले पहिल निस्सन्देह बहुत कठिन जान पड़ता है। बंगालियों के लिये नागरी अक्षरों में लिखना ऐसा कठिन जान पड़ता है कि वे लोग समझते हैं कि इसका अभ्यास उनका हो ही नहीं सकता। गुजरात, बरोदा तथा अन्य स्थानों में भी नागरी अक्षरों का प्रचार बहुत धीरे धीरे हो रहा है। परन्तु सज्जनो मैं आप लोगों को स्वयं अपने अनुभव से कहता हूं कि यदि आप एक बार इन अक्षरों को लिखने का दृढ़ संकल्प कर लें तो इनका अभ्यास कुछ भी कठिन नहीं है। बहुत वर्ष हुए जब मैं पहिले पहिल इंगलेंड में इण्डियन सिविल सर्विस के लिये गया था तो मैं नागरी का एक अक्षर भी नहीं लिख सकता था और जो थोड़ी बहुत संस्कृत मैं जानता था उसे बंगला अक्षरोंही में लिखता था। पर इस परीक्षा में बंगला अक्षर नहीं स्वीकार किए जाते थे और मैंने परीक्षा के विषयों में संस्कृत भी ली थी। इस कारण मुझे नागरी अक्षर भी सीखने पड़े और तीन ही मास के भीतर मैं नागरी उतनी ही जल्दी लिखने लगा जितनी जल्दी कि मैं बंगला अक्षर लिखता था।

"आज कल गुजरात में विशेषतः मैं उस राज का उल्लेख करता हूं जिसकी सेवा करने का मुझे सम्मान प्राप्त है, बरोदा में वर्षों से इस विषय पर बहुत कुछ ध्यान दिया गया है और बरोदा के लोगों ने नागरी अक्षरों के प्रचार के लिये पूर्ण उद्योग किया है। आप लोगों को विदित होगा कि हमारे बरोदा राज्य की ओर से एक गज़ेट निकलता है जिसे हम लोग "आज्ञा पत्रिका" कहते हैं और महाराजा की ओर से जो आज्ञाएं नियम आदि निकलते हैं वे सब इस पत्रिका में प्रति सप्ताह प्रकाशित होते हैं। इस आज्ञा पत्रिका के एक भाग में बरोदा के लिये जो कानून बनते हैं वे सब छपते हैं और महाराज की आज्ञा से ये सब कानून गुजराती भाषा में परन्तु देवनागरी अक्षरों में छापे जाते हैं। यदि

आप इस आज्ञा पत्रिका की प्रति सप्ताह की प्रतियां देखें तो आपको विदित होगा कि इस का पहिला भाग जिसमें साधारण आज्ञाएं रहती हैं गुजराती अक्षरों में छपता है और अन्तिम भाग जिसमें कानून छपते हैं नागरी अक्षरों में रहता है। बरोदा में कोई ऐसा कर्मचारी नहीं है जो देवनागरी अक्षरों को उतनीही सुगमता से न लिख पढ़ सकता हो जितना कि गुजराती अक्षरों को। इन बातों से यह विदित होगा कि यदि हम किसी भाषा को जानते हों और यदि हम उस भाषा को किसी भिन्न अक्षर में लिखने का सकल्प कर लें तो यह बहुत कठिन नहीं है।

"५० वर्ष पहिले जर्मनी में प्राय: सब पुस्तकें पुराने जर्मन अक्षरों में छपती थीं परन्तु अब जर्मन लोग यूरप के अन्य देश के लोगों से पसंग चाहते हैं और इस कारण लगभग पचीस वर्षों से वे लोग अपनी सब पुस्तकें साधारण रोमन अक्षरों में छापने लगे हैं। इसमें उन लोगों को कोई कठिनाई नहीं बढ़ गई हैं। अत: उन लोगों ने जैसा जर्मनी में किया है वैसाही हमें भारतवर्ष में करना चाहिए। और सज्जनो यह स्मरण रखिए कि यह उद्योग उस बड़े उद्योग का केवल एक अंशमात्र है कि जिसके द्वारा हम भारतवासी परस्पर अपना सम्बन्ध बढ़ाया चाहते हैं। इस उद्योग का सामाजिक और साहित्य सम्बन्ध होने के साथही साथ राजनैतिक रूप भी है।

"यह सभा इस विषय में भर सक उद्योग करके हम लोगों का परस्पर सम्बन्ध बढ़ाया चाहती है और मैं आशा करता हूं कि समय पाकर इस उद्देश्य में सफलता होगी। सम्भव है कि हम लोग उस समय तक जीवित न रहें परन्तु यदि यह उद्योग जारी रहा तो एक समय ऐसा अवश्य आवेगा जब कि सारे उत्तरी भारतवर्ष में एकही लिपि हो जायगी। इसमें शीघ्रता करने का एक मार्ग यह है कि भिन्न भिन्न भाषाओं के जो बहुतही प्रचलित ग्रन्थ हैं वे नागरी अक्षरों में छापे जाय। इससे सम्भवतः कुछ समय तक तो इन पुस्तकों की बिक्री में कमी हो जायगी और उन्हें वे ही लोग खरीदेंगे जो कि नागरी अक्षर पढ़ सकते हैं परन्तु यदि बंकिमचन्द्र के ग्रन्थों के समान पुस्तकें नागरी अक्षरों में छापी

जांय तो समस्त बंगला पढ़ने वाले लोगों को शीघ्रही इन अक्षरों का अभ्यास हो जायगा।

"इन्ही थोड़ीसी बातों को कह कर अब मैं पं० बाल गङ्गाधर तिलक से प्रार्थना करता हूं कि वे आप लोगों के सम्मुख वक्तृता दें।"

पण्डित बाल गंगाधर तिलक बी· ए, एल· एल· बी· (पूना) ने जिनका स्वागत तालिध्वनि द्वारा किया गया, कहा।

"सज्जनो, सभापति महाशय ने आप लोगों को नागरी प्रचारिणी सभा का उद्देश्य समझा दिया है। मैं भी प्रसन्नता पूर्वक उसी विषय को कहता परन्तु केवल १½ घंटे के भीतर मेरे उपरान्त अभी १० महाशयों को वक्तृता देनी है। अतः मैं उस प्रसन्नता से वंचित हूं और जो थोड़ा सा समय मुझे प्राप्त है उसमें संक्षेप में मैं केवल उन्ही बातों को कहूंगा जो कि मेरी सम्मति में सभा के कार्य करने में ध्यान रखने योग्य हैं।

"सबसे आवश्यक बात जिसे कि हमें स्मरण रखना चाहिए यह है कि यह उद्योग उत्तरी भारतवर्ष में केवल एक लिपि करनेही के लिये नहीं है, बरन वह समस्त भारतवर्ष में एक भाषा करने के वृहद उद्योग का केवल एक अंश है जो कि जातीय उद्योग कहा जा सकता है क्योंकि एक भाषा का होना जातित्व का एक मुख्य अंग है। केवल एक भाषाही से आप लोग अपने विचारों को दूसरे पर प्रगट कर सकते हैं और मनु ने ठीकही कहा कि सब बातें भाषाही के द्वारा समझी और की जाती हैं। इस कारण यदि आप लोग किसी जाति को एक में लाना चाहें तो उन्हें एक में रखने के लिये उन सब की एक भाषा होने से बढ़कर और कोई शक्ति नहीं है। और यही उद्देश्य सभा ने अपने सम्मुख रक्खा है।

"परन्तु इस उद्देश्य में सफलता कैसे हो? हमारा उद्देश्य केवल उत्तरी भारतवर्ष के लिये नहीं बरन् मैं तो कहूंगा कि समय पाकर दक्षिणी भारतवर्ष और मदरास को लेकर सारे भारतवर्ष के लिये एक भाषा करने का है। और जब हमारे उद्देश्य का विस्तार इतना बढ़ गया तो हमारी कठिनाइयां भी अधिक जान पड़तीं हैं।

पहिले पहल हमें उन कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा और कि ऐतिहासिक कठिनाइयां कही जा सकती हैं। प्राचीन समय में आर्यों और अनार्यों और इधर के समय में हिन्दू और मुसलमानों की लड़ाइयों ने इस देश में हिन्दुओं की भाषा की एकता को नष्ट कर दिया है। उत्तरी भारतवर्ष के हिन्दू लोग जो भाषाएं बोलते हैं वे प्रायः आर्य भाषाएं हैं और उनकी उत्पत्ति संस्कृत से हुई है और दक्षिण में जो भाषाएं बोली जाती हैं उनकी उत्पत्ति द्राविड़ भाषा से हुई है। इन भाषाओं में भेद केवल उनके शब्दों में ही नहीं बरन उनके लिखने में भी है। इसके उपरान्त फिर हिन्दी और उर्दू का भेद है जिस पर कि इस प्रान्त में इतना ज़ोर दिया जाता है। हमारे देश की ओर लिखने के मोड़ी अक्षर भी हैं और वे उस बालबोध अर्थात् देवनागरी अक्षरों से भिन्न हैं जिनमें कि मराठी पुस्तकें साधारणतः छपती हैं।

"अतः फारसी अक्षरों के विषय में कुछ उद्योग करने के पहिले हमें दो बड़ी। आवश्यक बातों को एक में लाना है। हम कह चुके हैं कि यद्यपि भारतवर्ष में एक भाषा का करना हमारा अन्तिम उद्देश्य है परन्तु इसके लिये भी हमें उपरोक्त दोनों बातों को अर्थात् आर्य वा देवनागरी अक्षरों और द्राविड़ या तामिल अक्षरों को एक करना चाहिए। ध्यान रहे कि इसमें केवल अक्षरों का ही भेद नहीं है बरन द्राविड़ भाषा में कुछ ऐसे उच्चारण भी हैं जो कि दूसरी किसी भाषा में नहीं हैं।

"हम लोगों ने क्रमशः उद्योग करने का विचार कर लिया है और हम पहिले पहल केवल आर्य भाषाओं वा संस्कृत से निकली हुई भाषाओं को ही लेंगे जैसा कि सभापति महाशय आप लोगों से कह चुके हैं। ये भाषाएं हिन्दी, बंगाली, गुजराती मराठी और पंजाबी, इनकी और भी शाखाएं हैं परन्तु मैंने केवल मुख्य मुख्य भाषाओं के नाम लिए हैं। ये सब संस्कृत से उत्पन्न हुई हैं और वे जिन अक्षरों में लिखी जाती हैं वे भी भारतवर्ष के प्राचीन अक्षरों के रूपान्तर हैं। समय पाकर इन भाषाओं के जुदे जुदे व्याकरण, उच्चारण और अक्षर होगए परन्तु उनकी वर्णमाला अब तक भी प्रायः वैसी ही है।

"नागरीप्रचारिणी सभा का उद्देश्य यह है कि सब आर्य भाषाएं एक ही लिपि में लिखी जांय जिसमें जब कोई पुस्तक उस लिपि में छपे तो उसे सब आर्य भाषाओं के बोलने वाले लोग अधिक सुगमता से समझ सकें। मैं समझता हूं कि इस विषय में सब ही लोग सहमत होंगे और इसके लाभ को स्वीकार करेंगे, परन्तु कठिनता इस बात में है कि इन सब भाषाओं के लिये कौन सी लिपि सबसे उपयुक्त है। उदाहरण के लिये बंगाली लोग यह कह सकते हैं कि जिस लिपि में वे अपनी भाषा लिखते हैं वह गुजराती और मराठी लिपि से अधिक प्राचीन है और इस लिये सब भाषाओं के लिये बंगाली लिपि को ही चुनना चाहिए। फिर कुछ लोगों का ऐसा विचार है कि देवनागरी जैसी कि वह आज कल की छपी हुई पुस्तकों में देखी जाती है वही सब से प्राचीन लिपि है और इस कारण सब आर्य भाषाओं के लिये उसी को चुनना चाहिए।

"परन्तु मेरी सम्मति में यह विषय ऐसा नहीं है कि जिसे हम केवल ऐतिहासिक बातों पर निश्चय कर सकें। यदि आप लोग प्राचीन शिलालेखों को देखें तो आप को विदित होगा कि अशोक के समय से लेकर भिन्न भिन्न समयों में जिन अक्षरों का प्रचार था उनकी संख्या दस से कम नहीं है और उनमें खरोष्ठी या ब्राह्मी अक्षर सब से प्राचीन समझे जाते हैं। तब से सब अक्षरों में बहुत कुछ परिवर्तन हुआ है और हमारी आज कल की लिपियां उन्हीं प्राचीन लिपियों में से किसी न किसी का रूपान्तर हैं। अतः मेरी सम्मति में एक लिपि के विषय को केवल प्राचीनता के सिद्धान्त पर निश्चित करना ठीक नहीं है।

"इन सब कठिनाइयों से बचने के लिये एक समय यह प्रस्ताव किया गया था कि हम लोग रोमन लिपि का व्यवहार करें और इसका एक कारण यह दिखलाया गया था कि ऐसा करने से एशिया और योरोप दोनों की एक लिपि हो जायगी।

"महाशयो, यह प्रस्ताव मुझे बड़ा ही हास्यजनक जान पड़ता है। रोमन वर्णमाला और रोमन लिपि में बहुत सी त्रुटियां हैं और वह हम लोगों की भाषा के उच्चारण प्रगट करने के लिये

बड़ी ही अनुपयुक्त है। अंगरेजी भाषा के व्याकरण भी उसे त्रुटियों से भरा हुआ बतलाते हैं। उसमें कहीं तो एकही अक्षर के तीन तीन वा चार चार उच्चारण हैं और कहीं एकही उच्चारण के प्रगट करने के लिये दो या तीन अक्षरों का व्यवहार करना पड़ता है। इसके सिवाय इस कठिनाई को देखिए कि रोमन लिपि में हमारी भाषा के उच्चारण बिना भिन्न भिन्न चिन्हों के नहीं प्रगट किए जा सकते और तब सब लोगों को इस प्रस्ताव का पागलपन विदित हो जायगा। अतः यदि हम सब के लिये किसी एक लिपि की आवश्यकता है तो वह रोमन लिपि से उत्तम होना चाहिए। संस्कृत जानने वाले योरप के विद्वानों ने भी कहा है कि देवनागरी योरप की सब लिपियों की अपेक्षा बहुत पूर्ण है। और जब हम लोगों के सम्मुख उनकी यह स्पष्ट सम्मति है तो भारतवर्ष की सब आर्य भाषाओं की एक लिपि के लिये किसी दूसरी वर्णमाला का आश्रय लेना मानो अपने ही हाथों अपने पैर में कुल्हाड़ी मारना है। केवल इतना ही नहीं वरन मेरी सम्मति में तो भारतवर्ष में उच्चारण और अक्षरों में जितना परिश्रम किया गया है, जो पूर्णरूप से पाणिनि के ग्रन्थों में देखा जाता है, वह संसार की किसी अन्य भाषा में नहीं पाया जाता है। हमारी भाषा में जो भिन्न भिन्न उच्चारण हैं उनके लिये देवनागरी वर्णमाला का सब से अधिक उपयुक्त होने का एक और भी कारण है। "सेक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट" नाम की ग्रन्थावली की प्रत्येक पुस्तक के अन्त में जो भिन्न भिन्न लिपियाँ दी हैं उन्हें यदि आप लोग मिलान करें तो आप लोगों को मेरे कहने पर विश्वास हो जायगा। हमारे यहां एक उच्चारण के लिये केवल एकही अक्षर और प्रत्येक अक्षर के लिये केवल एकही उच्चारण है। अतः हम लोगों को कौनसी लिपि काम में लानी चाहिए। इस विषय में मैं समझता हूं कि कोई मतभेद नहीं हो सकता। देवनागरी ही ऐसी लिपि है। अब प्रश्न यह है कि इस लिपि ने भिन्न भिन्न प्रान्तों में जो भिन्न भिन्न रूप धारण किए हैं उनमें से कौन सा रूप लिया जाय और मैं कह चुका हूं कि इस बात का निर्णय केवल प्राचीनता के सिद्धान्त पर नहीं किया जा सकता।

"लार्ड कर्ज़न के निर्धारित समय की नाईं हमें एक निर्धारित लिपि की आवश्यकता है। लार्ड कर्ज़न ने यदि निर्धारित समय की अपेक्षा जातीय सिद्धान्तों पर हमारे लिये निर्धारित लिपि देने का उद्योग किया होता तो वे हमारे सम्मान के अधिक योग्य होते। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। अतः हम लोगों को सब प्रान्तिक पक्षपात से रहित होकर इसे स्वयं करना चाहिए। बंगाली लोग स्वभावत अपनी लिपि का अभिमान करते हैं। इसके लिये मैं उनकी निन्दा नहीं करता। फिर गुजरात वाले कहते हैं कि उनकी लिपि लिखने में सब से सुगम है क्योंकि उसमें अक्षरों के ऊपर आड़ी लकीर नहीं लिखनी पड़ती। और मरहठे लोग कह सकते हैं कि मराठी अक्षरों में ही संस्कृत लिखी जाती है और इस कारण समस्त भारतवर्ष की एक लिपि बनाने के लिये वही उपयुक्त है। मैं इन सब बातों को पूर्णतया समझता हूं परन्तु इस विषय का निर्णय करना हम लोगों के लिये आवश्यक है और उसके लिये काम काज की रीति पर विचार करना चाहिए। हम चाहे जिस लिपि को काम में लावें परन्तु वह लिखने में सुगम, देखने में सुन्दर और ऐसी होनी चाहिए जो शीघ्रता से लिखी जा सके। फिर उसके अक्षर ऐसे होने चाहिए कि वे भिन्न भिन्न आर्य भाषाओं के सब उच्चारणों को प्रगट कर सकें। केवल इतनाही नहीं वरन् उन्हें ऐसा बनाना चाहिए कि वे द्राविड़ भाषा के उच्चारणों को भी बिना चिन्हों के प्रगट कर सकें। प्रत्येक उच्चारण के लिये केवल एक ही अक्षर और प्रत्येक अक्षर का केवल एक उच्चारण होना चाहिए। पूर्ण लिपि से मेरा यही अभिप्राय है। और यदि हम सब मिल कर विचार करें तो आज कल की प्रचलित लिपियों के आधार पर एक ऐसी लिपि का निकालना कोई कठिन बात नहीं है। ऐसी लिपि को निश्चय करने में हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि आज कल सब से अधिक प्रचार किस लिपि का है क्योंकि एक लिपि बनाए जाने के लिये ऐसे ही लिपि का अधिक स्वत्व है, यदि वह अन्य सब बातों में ठीक हो।

"इस कार्य के लिये जब आप लोग कमेटियां नियत करें और किसी एक लिपि को निश्चित करें तो मैं समझता हूं कि हम लोगों

को गवर्मेंट से प्रार्थना करनी पड़ेगी और प्रत्येक प्रान्त की पाठ्य पुस्तकों के कुछ पाठ इसी लिपि में छपवाने की आवश्यकता दिखलानी पड़ेगी जिसमें आगामी पीढ़ी के लोग बाल्यावस्था से ही इन अक्षरों से परिचित हो जांय। किसी नई लिपि का पढ़ना कोई कठिन काम नहीं है परन्तु पढ़ाई समाप्त हो जाने के उपरान्त किसी नई लिपि के पढ़ने में एक प्रकार की अरुचि होती है। यह अरुचि मेरी बतलाई हुई रीति से दूर हो सकती है और इस में गवर्मेंट हमारी सहायता कर सकती है। यह कोई राजनैतिक बात नहीं है, यद्यपि यों तो अन्त में सभी बातें राजनैतिक कही जा सकती है। जिस गवर्मेंट ने हमारे लिये निर्धारित समय और निर्धारित तोल और नाप निश्चित किया है वह हम लोगों को सब आर्य भाषाओं के लिये एक लिपि निश्चित करने में सहायता देने से मुंह न मोड़ेगी।

"जब एक लिपि स्थापित हो जायगी तो किसी एक आर्य भाषा में छपी हुई पुस्तकों का पढ़ना उन लोगों के लिये कठिन नहीं होगा जो कि उसी भाषा की भिन्न बोलियां बोलते हैं। मुझे स्वयं बंगला पुस्तकों के समझने में यही कठिनाई है कि मैं बंगला अक्षरों को नहीं पढ़ सकता। यदि बंगला पुस्तक देवनागरी अक्षर में छपी हो तो मैं उसे यदि पूरी तरह से नहीं तो उसका बहुत सा अंश समझ सकता हूं जिससे कि पुस्तक का सारांश समझ में आजायगा क्योंकि उनमें से आधे से अधिक शब्द तो संस्कृत के ही होते हैं। हम लोगों में शीघ्रता से योरप के नए नए विचार मिल रहे हैं और उनके लिये हम लोग संस्कृत की सहायता से नए नए शब्द गढ़ रहे हैं। इस कारण इस बात से भी हमें सारे भारतवर्ष के लिये एक भाषा प्राप्त करने में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। मुझे यह देख कर बड़ा हर्ष हुआ कि यह सभा हिन्दी वैज्ञानिक कोश बना कर इस विषय में बहुत कुछ कर रही है। मैं इस विषय में भी आप लोगों से कुछ निवेदन करता। परन्तु मेरे उपरान्त अन्य महाशयों का भी व्याख्यान होना है। इस कारण मैं समझता हूं कि आप लोगों की आज्ञा से मुझे अब बैठ जाना चाहिए।"

प्रोफेसर एन० बी० रानाडे (बम्बई) ने जिनका स्वागत तालि-ध्वनि द्वारा किया गया कहा–

"सभापति महाशय तथा सभ्यगण, सभा के मंत्री के कथनानुसार आज मैं प्रोग्राम के दूसरे विषय पर अर्थात सभा ने इस देश की संस्कृत से उत्पन्न हुई सब भाषाओं के हित के लिये जो भाषा वैज्ञानिक कोश तयार किया है उसके विषय में आप लोगों से निवेदन करूंगा। भारतवर्ष की जातीय भाषासभा (जिस नाम से आज का अधिवेशन पुकारा जा सकता है) के इस अधिवेशन में हम लोगों को नागरीप्रचारिणी सभा ने गत बारह वर्षों तक इस विषय में जो उत्तम कार्य किया है उसके लिये उसके सभासदों, को धन्यवाद देना चाहिए। प्रारम्भ में यह सभा एक वादविवाद की सभा थी जिसे कि लगभग बारह वर्ष हुए स्कूल के कुछ विद्यार्थियों ने स्थापित किया था और इस बारह वर्ष, के थोड़े से समय में वही छोटी सी सभा जो कि पहिले पहल हिन्दी भाषा की उन्नति के लिये स्थापित हुई थी आज इतनी बड़ी सभा होगई है जिसका कि सुन्दर भवन आप लोग इस शामियाने के बांई ओर देख रहे हैं।

"महाशयो यदि आप सोचें कि सारे भारतवर्ष में एक नागरी लिपि के करने और सारे भारतवर्ष के लिये एक भाषा वैज्ञानिक कोश बनाने में इस सभा ने कितना अच्छा काम किया है. तो मुझे विश्वास है कि सारा देश सभा का उस प्रशंसनीय कार्य के लिये ऋणी बनेगा जो वह गत ५ उपयोगी वर्षों में जिस बीच में कि देश में जातीय उत्साह अधिक उत्पन्न हुआ है, करती रही है।

"सज्जनो मैं अब हिन्दी वैज्ञानिक कोश के विषय में कुछ कहूंगा जिसका उल्लेख मिस्टर तिलक ने जो मेरे विद्याविषयक गुरु हैं इस प्रकार किया है कि भारत की अनेक जातियों को एक जातीयता के बन्धन में गठित करने के लिये उन्नति का एक स्पष्ट चिन्ह यह है कि समस्त भारतवर्ष की एक भाषा की जाय और यदि इतना हो सके तो कम से कम, उनकी

विज्ञानविषयक भाषा अवश्य ही एक होनी चाहिए। सन् १८५४ ई० की शिक्षा सम्बन्धी राजकीय आज्ञा में जिसे हम भारतवर्ष में शिक्षा का मैगनाचार्टा कह सकते हैं भारतवासियों को एक बड़ी आशा दिलाई गई थी कि इस देश के सर्व साधारण के मध्य योरोपीय विद्या तथा विज्ञान का प्रचार उनकी मातृभाषा ही द्वारा किया जायगा, किन्तु गत ५० वर्षों के बीच यह बचन अन्य अनेक बचनों की नाईं जो गवर्मेंट ने प्रजावर्ग को दिए, अभाग्यवश अपूर्णही रह गया। सर्कार अनेक सुभीतों के रहते हुए भी योरोपीय विद्या को यहां की भाषा द्वारा देश में फैलाने के विषय में जो कुछ नहीं कर सकी उसे यह सभा देशहितैषिता के परम उत्कृष्ठ भावों से परिपूर्ण होकर अन्य उद्योगों द्वारा करना चाहती है और यह वैज्ञानिक कोश उस आशय की पूर्ति का एक मुख्य चिन्ह है। इस अवसर पर मैं प्रसन्नतापूर्वक घोषित करता हूं कि वैज्ञानिक कोश की तय्यारी के सदुद्योग में सभा को इस प्रान्त की गवर्मेंट तथा बंगाल, पंजाब और मध्य देश की गवर्मेंटों की सहायता तथा सहानुभूति प्राप्त हुई है। इस विषय में सभा के परिश्रमों का फल ५ छोटी छोटी पुस्तकों में जिसे सभा ने वैज्ञानिक कोश के नाम से प्रकाशित किया है देख पड़ेगा। यद्यपि ये पुस्तकें संख्या में थोड़ी और आकार से आप लोगों के देखने में छोटी हैं तथापि उनका मूल्य उनके सोने के बोझ से भी अधिक है। मेरा यह कथन उन्हीं लोगों को सच्चा जंचेगा जिन्होंने इस विषय पर कुछ ध्यान दिया है।

"इस समय सारे भारतवर्ष के सम्मुख एक बड़ा प्रश्न यह है कि योरप का विज्ञान किस प्रकार गरीबों को उनकी ही भाषा में प्राप्त हो सके। ५० वर्षों तक अंगरेज़ी की शिक्षा देकर हमारी गवर्मेंट कठिनता से १०० में एक भारतवासी को योरप के प्रारम्भिक विज्ञानों की शिक्षा दे सकी है। इस हिसाब से यदि योरप के उपयोगी विज्ञानों की शिक्षा ३० करोड़ भारतवासियों को देने का कार्य केवल गवर्मेंट पर छोड़ा जाय तो मैं समझता हूं कि योरप के विज्ञान की प्राप्ति के लिये यहां के लोगों को कई सौ वर्षों की आवश्यकता होगी। योरप के विज्ञानों के

जानने से इस देश के लोगों को जो लाभ होंगे उसके विषय में मैं यहां पर लम्बा चौड़ा व्याख्यान नहीं देना चाहता। उनमे जो लाभ होंगे वे आप लोगो को भली भांति विदित हैं। आप लोग इस देश में अभी हाल के बहुत से नए उन्नतिशील कार्यालय देखते हैं। हमारे देश भाइयों को जो नई शिक्षा दी गई है, विज्ञान में उन्होंने जो नई शिक्षा प्राप्त की है यद्यपि वह बहुत थोड़े अंश में और बड़े स्थूलरूप से दी गई है तथापि उससे उन्हों ने जो थोड़ी बहुत उन्नति की है वह भी आप लोगों को बिदित है। यदि आप लोग इसे मानते हैं कि विज्ञान की शिक्षा आपके देश वासियों को उनकी बुरी अवस्था और दरिद्रता को दूर करने के लिये एक बड़ी भारी कुंजी है तो आप लोगों का यह पहिला कर्तव्य है कि इस शिक्षा को दरिद्र से दरिद्र भारतवासी के घर तक उसकी मातृभाषा के द्वारा पहुचावें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये यहां की भाषा में नए वैज्ञानिक शब्दों की आवश्यकता है और वे वैज्ञानिक शब्द ऐसे होने चाहिए जो कि बंगाल, संयुक्त-प्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र देश के लोगों को समान रीति से ग्राह्य हो।

"निस्सन्देह उन सब भाषाओं के लिये जिनकी उत्पत्ति संस्कृत से हुई है ऐसे वैज्ञानिक शब्दों का बनाना सहज और सम्भव है क्योंकि संस्कृत भाषा में बहुत बड़े अर्थ को बहुत थोड़े में प्रगट करने की शक्ति है।

"किसी जाति के सब से उत्तम विचार उस जाति के केवल वैज्ञानिक मनुष्य के विचार ही हैं। और इस सर्वोत्तम विचार को जाति की साधारण सम्पत्ति बनाने के लिये उसे एक साधारण वैज्ञानिक भाषा में अर्थात् ऐसी भाषा में प्रगट करना चाहिए जिसे की सारा देश समझ सके।

"प्रथम वक्ता यह दिखला चुके हैं कि जातीय एकता को प्राप्त करने के लिये सारे देश में एक भाषा का करनाही निस्सन्देह सब से उत्तम मार्ग है। उसके अभाव में पहिला उद्योग एक लिपि का और फिर एक वैज्ञानिक शब्दों को करने का होना चाहिए। इन

दोनों बातों के लिये यह बहुत उत्तम होगा कि भिन्न भिन्न प्रान्तों के लोग अपने सब से उत्तम प्रतिनिधियों को इन विषयों पर विचार करने के लिये नागरीप्रचारिणी सभा में भेजें कि जो उनका सदा स्वागत करने के लिये तयार है।

"मैं समझता हूं कि सभा ने गत वर्ष दो बार अधिवेशन किए थे जो कि कई सप्ताह तक रहे और उनमें भिन्न भिन्न प्रान्तों के प्रतिनिधि इस बात के निश्चित करने के लिये बुलाए गए थे कि वैज्ञानिक शब्द किस रीति से किन सिद्धान्तों पर गढ़े जांय। इन अधिवेशनों में जो उत्तम कार्य हुआ है वह पांच छोटी छोटी पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया गया है।

"सज्जनो हमारी भाषा में वैज्ञानिक शब्दों के गढ़ने का यह विचार आज कुछ एक नई बात नहीं है और न यह विचार भारतवर्ष की केवल कुछ विशेष प्रान्तों में ही परिमित है। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास में जहां कहीं विदेशी विज्ञान को इस देश में प्रचलित करने के चिन्ह हमें मिलते हैं वहां यह स्पष्ट देख पड़ता है कि नए विचारों को इस देश की भाषा में लाने के लिये संस्कृत का आश्रय लिया गया था। इसके लिये नए संस्कृत के शब्द गढ़े गए थे। उदाहरण के लिये ज्योतिष में राशि के नामों को देखिए मेष=The Ram; वृषभ=The Bull; सिंह=The Lion; कन्या=The Virgin; तुला=The Balance; वृश्चिक= The Scorpion निस्सन्देह प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में कुछ ऐसे शब्द भी मिलते हैं जिनकी उत्पत्ति विदेशी भाषा से हुई है। परन्तु उनकी संख्या बहुत ही थोड़ी है। महाराष्ट्र देश में १७ वीं शताब्दी में महाराष्ट्र राज्य के स्थापित होने के उपरान्त इस राज्य के संस्थापक शिवाजी के सब से पहले कार्यों में से एक "राजव्योवहार कोश" की रचना है जिसमें कि महाराष्ट्र लोगों के हित के लिये उस समय महाराष्ट्र देश में जो आवश्यक फारसी के शब्द प्रचलित थे उनका अर्थ मराठी वा संस्कृत भाषा में दिया गया था। इधर हाल के समय में लगभग २० वा २५ वर्ष हुए कि ऐसाही उद्योग बंगाल में भी प्रारम्भ हुआ था परन्तु कुछ ऐसे कारणों से जो कि मुझे विदित नहीं

हैं, वह उद्योग कुसमय में सदा के लिये बन्द हो गया । बरोदा में जहाँ कि इस समय एक बड़े ही सुयोग्य राजा हैं इस कार्य के लिये अर्थात् मराठी में एक वैज्ञानिक कोश निश्चित करने के लिये एक विशेष विभाग खोला गया था । मुझे विदित हुआ है कि इस कार्य के लिये ३२ हजार रुपए की बड़ी रकम स्वीकृत हुई थी । परन्तु हमारे दुर्भाग्य वश यह विभाग भी कुसमय में बन्द होगया । अहमदाबाद में भी एक 'गुजराती ट्रेन्सलेशन सोसाइटी' है, और महाराष्ट्र में हम लोगों की डेकन वर्नाक्यूलर सुसाइटी है । आप लोगों की आज्ञा से मैं यह उल्लेख करने की आज्ञा मांगता हूं कि मेरे तुच्छ सम्पादन में डाक्टर एम० जी० देशमुख, मिस्टर बाल गंगाधर तिलक, प्रोफेसर टी० के० गज्जर, लफ्टेनेंट करनल के० आर० कीर्तिकर, सर भालचन्द्र कृष्ण भटवाडेकर, प्रोफेसर आर० एन० आपटे, आदि महानुभावों की नाई बम्बई के विख्यात विद्वान लोगों की सहायता से एक अंगरेजी मराठी कोश महाराष्ट्र देश में निकल रहा है ।

"मेरे तुच्छ ग्रन्थ की सहायता और सहानभूति करने वालों में बम्बई विश्वविद्यालय के वाइस चैंसेलर डाक्टर मेकिकन, कोल्हापूर के कर्नल० डब्ल्यू बी० फेरिस०, केप्टेन आर० सी० बर्क और कोल्हापूर के रेवरेण्ड ए० डरबी, बम्बई के एल्फिन्सटन कालेज के प्रोफेसर ई० ए० उडहाउस और राजाराम कालेज के प्रिन्सिपल लूसी आदि महाशयों के समान लोग भी हैं । मेरे अंगरेज़ी मराठी कोश की प्रधान विशेषता उसके संस्कृत वैज्ञानिक शब्द हैं । इसी विशेषता के लिये हिन्दी की विख्यात सरस्वती पत्रिका के सम्पादक के प्रमाण पर मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि भारतवर्ष की और किसी भाषा के हित के लिये ऐसे किसी ग्रन्थ के बनाने का उद्योग नहीं किया गया है । मेरे तुच्छ ग्रन्थ की यही विशेषता है जिससे कि दक्षिण महाराष्ट्र देश के अग्रगण्य राजों महाराजों ने उसका आदर किया है । उनमें से प्रधान ये हैं । अर्थात् कोल्हापूर के महाराज मुधोल के सरदार और जामखिन्डी के सरदार । मुझे निश्चय है कि यदि सभा के मंत्री सभा पर इन महाराजों की सहानुभूति प्राप्त

करेंगे तो उससे सभा के बहुमुल्य विद्याविषयक कार्य में उनको सहायता मिलनी बहुत सहल होगी।

"सज्जनो बंगाल गुजरात, और महाराष्ट्र देश के इन प्रयत्नों के उल्लेख करने से मेरा अभिप्राय आप लोगों को यह दिखलाने का था कि ब्रिटिश राज्य के आगमन से इस देश में जो नये वैज्ञानिक विचारों का प्रचार हुआ है उनको प्रगट करने के लिये इस देश की भाषा में वैज्ञानिक शब्द बनाने का प्रबल विचार सारे देश में है।

"मेरी सम्मति में जो ये जुदे जुदे उद्योग हुए हैं उन्हें अधिक उत्तम रीति से करना चाहिए। मैं समझता हूं कि ये सब उद्योग ना० प्र० सभा की प्रबन्धकारिणी सभा के प्रबन्ध में होने चाहिएं क्योंकि इस सभा ने इस विषय में विशेष उद्योग किया है। मेरी सम्मति में दूसरे प्रान्तों के जो विद्वान अपनी भाषा की उन्नति करने और उसे पूर्ण करने में हित लेते हैं उन्हें ना०प्र० सभा में पत्र व्यवहार द्वारा सम्मिलित होना चाहिए। सो यदि यह हो जाय और मैं समझता हूं कि इसे अवश्य करना चाहिए तो एक संगठित समाज के लाभ प्राप्त हो कर बहुत सा कार्य होगा। मेरी सम्मति में हमारे देश के इतिहास में अब वह समय आ गया है कि किसी एक उद्देश्य की प्राप्ति के लिये जुदे जुदे उद्योग न किए जाकर किसी एक समाज के द्वारा मिल कर उद्योग किया जाय। संगठित समाजों का अभाव हमारी जातीय दुर्बलता का कारण है। अतः हमारी जातीय उन्नति के भविष्यत प्रोग्राम में संगठित समाजों में हमारा प्रधान बल होना चाहिए।

"इस कारण, हे प्रिय भाइयो मैं आप सबसे बड़े शुद्ध हृदय से प्रार्थना करता हूं कि आप लोग हमारे देश के जितने प्रान्तों में सम्भव हो नागरी अक्षरों के प्रचार में और संस्कृत से उत्पन्न सब भाषाओं के हित के लिये भाषा में वैज्ञानिक शब्दों के निश्चित करने के आवश्यक कार्य में इस सभा को सहायता दें। यहां पर जो भाई उपस्थित हैं उनसे मेरी यह प्रार्थना है कि यदि सम्भव हो तो इस सभाभवन में इस बात के विचार करने के लिये एक प्रतिनिधि सभा करें कि इन दोनों उद्देश्यों की उन्नति

के लिये क्या उद्योग किया जाय। मुझे निश्चय है कि हमारे बड़े उद्योगी मंत्री बाबू श्यामसुन्दर दास कृपा करके ऐसी एक सभा का प्रबन्ध करेंगे यदि उन्हें आज कल के अधिक कार्यों से इसके करने का अवकाश मिले।

"मैं बहुत संक्षेप में कहा चाहता हूं। सज्जनो बैठने के पहिले मुझे यह उत्कट आशा प्रगट करने दीजिए कि आप सब लोग अपने हृदय से इस सभा के उद्देश्यों में सहानुभूति प्रगट करेंगे। आप लोग चाहे जहां रहें और चाहे जो कुछ करें परन्तु इस सभा के हित को अपने हृदय से मत भूलिए।"

दीवान बहादुर अम्बालाल साकरलाल देसाई एम० ए०, एल०, एल० बी० (अहमदाबाद) ने जिनका स्वागत तालिध्वनि द्वारा किया गया कहा—

"सभापति महाशय तथा सभासद गण, मैं गुजरात से आता हूं जो कि व्यापारियों की भूमि है अतः मैं अपनी बातों को संक्षेप में कहने में सावधानी रक्खूंगा।

"मुझे जो कुछ कहना था उसमें से बहुत सी बातें हमारे योग्य सभापति और हमारे योग्य महाराष्ट्र विद्वान मिस्टर बी० जी० तिलक पहलेही कह चुके हैं। इस कारण अब मैं इस विषय की कुछ कार्य में लाने योग्य बातों का वर्णन करूंगा।

"आज कल हम सब के हृदय में सब से बड़ी अभिलाषा और सबसे बड़ा उत्साह परस्पर अधिक सम्बन्ध और प्रीति उत्पन्न करने का है। भविष्यत में बहुत दिनों के उपरान्त हम सब लोग एकही बड़ी जाति हो जायगे अथवा नहीं, इस प्रश्न का निश्चय करना मैं भविष्यत ही पर छोड़ता हूं। परन्तु ऐसे विषयों पर उद्योग करने में कुछ हानि नहीं है जिससे कि दोनों ही उद्देश्य वा उनमें से कोई एक प्राप्त हो सकता है और इनमें से एक उद्देश्य सब भाषाओं के लिये एक लिपि का करना है।

"अब इस प्रश्न में दो बातें हैं (अ) लिखने की लिपि और (ब) छापे की लिपि। इस समय लिखने के लिपि का विचार छोड़ देना चाहिए। सौभाग्यवश गुजरात में पहिले जो पाठ्य पुस्तकें थीं उनके

पाठ नागरी और गुजराती दोनों ही अक्षरों में छपते थे और इस कारण जिन लोगों ने गुजरात के किसी स्कूल में शिक्षा पाई है वे नागरी अक्षरों को पढ़ सकते हैं।

"ऐसा सुनने में आता है कि अब जो नई पाठ्य पुस्तकें छपने वाली हैं उनमें नागरी अक्षर के पाठ नहीं रक्खे जायगें।

"यदि ऐसा हुआ तो बड़े दुर्भाग्य की बात है। सभा को प्राचीन प्रणाली न उठाये जाने के लिये एक प्रार्थनापत्र भेजना चाहिए। हमारे सभापति महाशय ने यह बहुत ही उत्तम प्रस्ताव किया है कि वास्तविक गुणवाली सब पुस्तकें नागरी अक्षरों में छापी जांय। मेरी सम्मति में कम से कम सब वैज्ञानिक ग्रन्थ यथा उदभिद विद्या, रसायन शास्त्र, दर्शन शास्त्र, आदि के ग्रन्थ नागरी अक्षर में छपने चाहिएं। भाषा उनकी प्रत्येक प्रान्त की जुदी जुदी हो सकती है परन्तु अक्षर देवनागरी ही होने चाहिएं। और ऐसा करने में कोई हानि न होगी। विज्ञान पढ़ने वाले सब लोगों के लिये यह समझ लिया जाय कि वे नागरी अक्षर जानते हैं। यह नागरी अक्षर के प्रचार बढ़ाने का एक मार्ग है। उसका एक दूसरा मार्ग मेरे ध्यान में यह आता है कि व्यापार सम्बन्धी प्रत्येक विभाग के कागज़ पत्र नागरी अक्षरों में रक्खे जांय। अहमदाबाद के व्यापारियों ने ऐसा व्यवहार प्रारम्भ कर दिया है। उन लोगों के जो अढ़तिये कानपूर तथा उत्तरीय भारतवर्ष के अन्य नगरों में हैं उनसे वे नागरी अक्षरों में पत्र व्यवहार करते हैं। गुजरात से उत्तरीय भारतवर्ष में यात्रा करते हुए स्टेशनों के जो नाम नागरी अक्षरों में लिखे थे उनसे मुझे बहुत सहायता मिली।

"आज कल बहुत से लोग अपने विज्ञापन स्थानीय समाचार पत्रों में उर्दू अक्षरों में छपवाना चाहते हैं। उत्तरी भारतवर्ष में लोग चाहे उर्दू पढ़ सकते हों परन्तु यदि वे गुजरात या दक्षिण में अपने विज्ञापन उर्दू अक्षरों में छपवावें तो उन्हें बिरलाही कोई पढ़ सकेगा। मैं सब प्रान्त के व्यापारियों को यही सम्मति दूंगा कि वे अपने विज्ञापन नागरी अक्षरों में छपवावें। इससे उनके व्यापार में लाभ होगा क्योंकि नागरी अक्षरों में होने के कारण उनके

विज्ञापन के अधिक पढ़े जाने और उनके माल की अधिक बिक्री होने की सम्भावना है। उदाहरण के लिये हम लोग गुजरात में केशरंजन तैल का एक बंगला विज्ञापन नागरी अक्षरों में छपने के कारण पढ़तेही हैं।

"इसके सिवाय मैं एक और प्रस्ताव करूंगा और वह यह है कि उत्तरी भारतवर्ष से हिन्दी भाषा और नागरी अक्षरों में एक समाचार पत्र निकलना चाहिए।

"हमारे बम्बई में एक ऐसा पत्र अर्थात वेङ्कटेश्वर पत्र है और वह बहुत कुछ कार्य कर रहा है। उसे सब श्रेणी के लोग और विशेषतः मारवाड़ी और कच्छी तथा नागरी जानने वाले बहुत से अन्य लोग पढ़ते हैं।

"महाशयो गुजरात में 'गुजरात वर्नाक्युलर सोसाइटी' नाम की एक सभा है जिसके सभापति होने का सौभाग्य मुझे इस वर्ष प्राप्त हुआ है। उस सभा से प्रतिवर्ष विज्ञान विषय में सुबोध ग्रन्थ छपते हैं और एक लिपि के विषय में यह सभा जो कुछ प्रस्ताव करैगी उस पर मुझे निश्चय है कि हमारी सोसायटी बड़े आदर पूर्वक ध्यान देगी।

"महाशयो, बस इतना ही कहकर मैं अपने व्याख्यान को समाप्त करने की आज्ञा मागूंगा।"

बम्बई के सर भालचन्द्र कृष्ण ने जिनका स्वागत तालिध्वनि द्वारा किया गया कहा—

"सभापति महाशय तथा सभ्यगण, मैं इस अवसर पर नागरी प्रचारिणी सभा को बम्बई की ओर से हृदय से बधाई देता हूं। उन्होंने गत बारह वर्षों में बहुत अच्छा कार्य किया है और उन्हों ने नागरी अक्षरों में जो वैज्ञानिक कोश तथा अन्य ग्रन्थ निकाले हैं वे वास्तव में प्रशंसनीय हैं।

"नागरी लिपि को स्वीकार करने के विषय में जितनी आवश्यक बातें थीं उन्हें हमारे योग्य सभापति और हमारे विद्वान मित्र मिस्टर तिलक और मेरे योग्य मित्र मिस्टर अम्बा लाल साकर लाल देसाई और मिस्टर रानाडे आप लोगों से कह चुके हैं।

"मैं समझता हूं कि हम हिन्दू लोग इस लिपि से बहुत प्राचीन, समय से परिचित हैं ।

"गत चार हज़ार वर्षों से हमारे चरक शुश्रुत आदि सब वैज्ञानिक ग्रन्थ और सब धार्मिक ग्रन्थ सदा इसी लिपि में लिखे जाते हैं ।

"अब प्रश्न यह है कि हम लोग अपनी पुरानी बातों को भूल कर किसी दूसरी लिपि को ग्रहण करें अथवा अपने पुरुषाओं की रीति का अनुकरण करके सारे भारतवर्ष में एक लिपि और एक भाषा का प्रचार करें ।

"उस समय भारतवर्ष में एक जाति थी और अब हमारे सब उद्योग भिन्न भिन्न प्रान्तों के सब लोगों को एक में मिलाने ही के विषय में होने चाहिएं ।

"कांग्रेस' का भी उद्देश्य यही है अतः हमें कांग्रेस का अनुकरण करना करना चाहिए और सारे भारतवर्ष में नागरी लिपि का प्रचार करना चाहिए । मैं समझता हूं कि यह कोई कठिन कार्य न होगा ।

"अब हमें पूर्व व्याख्यान दाताओं के प्रस्ताव के अनुसार अनुभवी मनुष्यों की एक छोटी सी कमेटी नियत करनी चाहिए कि जो इस विषय में सब भांति से विचार करे और मैं समझता हूं कि हम लोग थोड़े ही समय में हिन्दी को समस्त भारतवर्ष की भाषा और नागरी को उस भाषा के लिखने की लिपि बनाने में कृतकार्य होगें । परन्तु इसके करने में निस्सन्देह बहुत सी कठिनाइयां हैं ।

"हमारे मदरास के मित्रों को (जिनमें से हमारे मित्र जो यहां उपस्थित हैं आप लोगों के सामने व्याख्यान देगें) इसलिये कठिनाई पड़ती है कि उनके अक्षर कुछ भिन्न हैं । उनके अक्षर भिन्न प्रकार से लिखे जाते हैं परन्तु जैसा कि मिस्टर तिलक ने कहा है अन्त में उनके ग्रहण करने में कोई कठिनाई न होगी । निस्सन्देह भिन्न भिन्न प्रान्तों में लिखने की भाषा एक होती है और बोलने की भाषा दूसरी । परन्तु मैं समझता हूं कि विशेषतः लिखने की भाषा में यह उद्योग अवश्य करना

चाहिए, और बहुत दृढ़ता से करना चाहिए । मैं ने सुना है कि कुछ वर्ष हुए कि नागरीप्रचारिणी सभा ने उस प्रसिद्ध नीतिज्ञ सर एणटनी मैकडानेल की कृपा से न्यायालय में नागरी लिपि और हिन्दी भाषा के प्रचार का उद्योग किया था परन्तु अब राज्य बदल गया है और अब उस विषय में उतना उत्साह और सहानुभूति नहीं दिखाई देती । परन्तु आप लोग जानते हैं कि यूरोपियन अफसर लोग केवल बसेरा करनेवाले पक्षियों की नाईं हैं। हमी लोग भारतवर्ष के वास्तविक निवासी हैं । अतः हमको उद्योग करना चाहिए और हमें निश्चय है कि समय पाकर हमारे उद्योग में सफलता होगी ।

"कुछ समय हुआ कि बम्बई में शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर ने हमारी मराठी भाषा की वर्णमाला में परिवर्तन करने का उद्योग किया था । उन्होंने एक छोटी सी कमेटी नियत की जिसने कि मराठी पढ़ने वाले सर्वसाधारण की सम्मति लिये बिना, मराठी की लिपि-प्रणाली में परिवर्तन करना निश्चित कर दिया और डाइरेक्टर ने यह आज्ञा दे दी की नई पाठ्य पुस्तकें इसी नवीन लिपि प्रणाली के अनुसार छापी जांय ।

"हम लोगों ने इस विषय को उठाया और पहिले बुक कमेटी के सभापति के पास प्रार्थनापत्र भेजा, यद्यपि हम लोग जानते थे कि इससे कोई लाभ न होगा । तब हम लोगों ने शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर से प्रार्थना की पर वहां से भी वही उत्तर मिला । फिर हम लोगों ने एक प्रार्थनापत्र तयार करके बम्बई की गवर्मेण्ट के पास भेजा । उसमें हम लोगों ने यह दिखलाया कि यह केवल भाषा ही का विषय नहीं है बरन यह राजनैतिक विषय है और मराठी भाषा की लिपिप्रणाली के विषय में जैसा कुछ किया गया है यदि वैसाही रह गया तो भाषा में पूरी तरह से उलट फेर हो जायगा और वह एक बड़े असन्तोष का कारण होगा । वहां इस विषय पर अधिक बुद्धिमानी से विचार किया गया और आप लोगों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि गवर्मेण्ट ने तुरन्त हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली ।

"मैं इस सभा को भी इसी उपाय का अवलम्बन करके यहाँ और अन्यत्र इस विषय में गवर्मेण्ट से प्रार्थना करने की सम्मति दूंगा और मुझे विश्वास है कि आप लोग निस्सन्देह गवर्मेण्ट की सहानुभूति प्राप्त करेंगे और अपने उद्योग में कृतकार्य होंगे। और मेरी सम्मति में यह बहुत उत्तम होगा कि उसी भाषा में हमारे वैज्ञानिक ग्रन्थ भी बनें।

"धर्मसम्बन्धी ग्रन्थों के विषय में बहुत से ग्रन्थ जैसे तुलसी दास की रामायण आदि जिन्हें सब लोग सत्कार और पूजा के दृष्टि से देखते हैं इस भाषा में वर्तमान हैं।

"उस बड़ी भाषा को, जिसने कि मराठा और हिन्दू समस्त जाति का चित्त आकर्षित कर लिया है, रक्षित रखना चाहिए। उसे रक्षित रखकर सारे भारतवर्ष की भाषा बनाने का उद्योग करना चाहिए और मुझे आशा है कि इसमें नागरीप्रचारिणी सभा को एक दिन सफलता होगी। इन्हीं थोड़ी सी बातों को कह कर सभा को हृदय से धन्यवाद देता हूं कि उसने मुझे इस आवश्यक विषय पर अपने विचार प्रगट करने का अवसर दिया।"

कलकत्ते के प्रोफेसर क्षीरोद प्रसाद विद्याविनोद एम० ए० ने जिनका स्वागत तालिध्वनि द्वारा किया गया कहा—

"महाशयो, यदि मैं आज आप लोगों के सम्मुख अपनी ही भाषा में व्याख्यान देने का उद्योग करूं तो मुझे भय है कि बहुत से लोग मेरी बातें नहीं समझ सकेंगे। परन्तु मुझे आशा है कि एक दिन अवश्य ऐसा आवेगा कि जब अपनेही देशवासियों के सम्मुख व्याख्यान देने में किसी विदेशी भाषा का आश्रय लेने की आवश्यकता न पड़ेगी। यद्यपि हम लोग एक विदेशी भाषा अर्थात् अंगरेजी भाषा के अनुगृहीत हैं क्योंकि उससे आज कल भारतवर्ष के बड़े बड़े बुद्धिमानों में एका होने की सहायता मिली है फिर भी हमें सारे देश के लोगों में एका उत्पन्न करने के लिये किसी एक भाषा की आवश्यकता है। इस प्रकार का एका हम लोगों में वैदिक काल में था परन्तु अब वह नहीं रहा है और हम लोग

उसे एक बार पुनः प्राप्त करने का उद्योग करते रहे हैं। परन्तु यह कैसे किया जायगा।

"अभी यह बात निस्सन्देह स्वप्नवत जान पड़ती होगी परन्तु यही स्वप्न मैं ने बरसों तक देखा है और जब मैं अपने योग्य सभापति के सदृश महानुभावों को, माननीय मिस्टर जस्टिस मित्र, मिस्टर तिलक और पं० मदन मोहन मालवीय सदृश लोगों को सारे भारतवर्ष के लिये एक लिपि का उद्योग करते हुए देखता हूं तो मुझे इस स्वप्न के सत्य होने की आशा होती है।

"महाशयो, जिस उद्देश्य को हम लोग प्राप्त किया चाहते हैं उसकी पहिली सीढ़ी सारे भारतवर्ष में एक लिपि का करना ही है। भारतवर्ष की भिन्न भिन्न आर्यभाषाओं के परस्पर के भेद इतने थोड़े हैं और उनमें इतनी अधिक समानता है कि यह देखकर आश्चर्य होता है कि इस समय एक प्रान्त के लोगों ने दूसरे प्रान्त की भाषाएं सीखने का उद्योग नहीं किया। इसका कारण मेरी सम्मति में भिन्न भिन्न प्रान्तों की लिपियों का भिन्न होना ही है। भिन्न लिपि ही पाठकों को कठिनता में डाल देती है और इसी कारण से वे उस भाषा को सीखने का वास्तविक उद्योग नहीं करते। परन्तु यदि वे एक बार इस कठिनाई को दूर कर दें तो उन्हें यह देखकर आश्चर्य होगा कि पहिले उन्हें जो भाषा विदेशी जान पड़ती थी वह वास्तव में उनकी मातृभाषा की बहिन ही है। सज्जनगण, मुझे विश्वास है बंगाली साधु भाषा में लिखी हुई किसी पुस्तक के १०० शब्दों में से ७५ शब्द बिना किसी की सहायता के किसी शिक्षित महाराष्ट्र वा पंजाबी की समझ में आ जांयगे। संयुक्त प्रदेश के लोगों का तो कहना ही क्या है। शेष २५ शब्दों के जिनमें मुख्यतः कोई न कोई व्याकरण की विशेषता होगी, जानने में कोई बड़ी दूसरी कठिनता न होगी, क्योंकि भारतवर्ष की एक भाषा के व्याकरण से दूसरी भाषा के व्याकरण में बहुत अन्तर नहीं है।

'मैं यहां पर अपने ही एक ग्रन्थ से एक वा दो वाक्य उद्धृत करता हूं:-'यमुनाजलसम्पूर्णा अमृतरूपिनी भागीरथी यार काष्ठ-

हार, चिरतुषारधवलित हिमाचल यार शिरोभूषण चिरश्यामल-शस्यसम्पद यार अङ्गावरण, एक निविड़ कृष्ण कान्ति वनश्रेणि र्मिन कुटिल कुन्तला अनन्त प्रसारी नीलाम्बुराशिर शुभ्र तरंग फेन रेखा यार मेखला, से बङ्गेर किसेर अभाव चराचरे? यार जले स्वर्ण, फले सुधा, शस्ये अनन्त देशेर अनन्त जीवेर प्राणदायिनि शक्ति, यार ललाट शशी सूर्य्य करोज्ज्वल यार प्रभाव मधुगन्ध कुसुम शीकरवाही से बङ्गेर अन्य आवार धनरत्न भिक्षा केन" ? यहां पर बहुत से ऐसे सज्जन उपस्थित हैं कि जिन्हों ने कदाचित कभी कोई बंगला पुस्तक नहीं पढ़ी है। मेरी उनसे प्रार्थना है कि वे कृपाकर देखें कि उपरोक्त वाक्यों का कितना कुछ अंश उनकी समझ में स्वय आजाता है। वे लोग देखेंगे कि एकाध दो सर्वनाम और कुछ विभक्तियों को छोड़ कर उसमें कुछ भी ऐसा नहीं है जो उनकी समझ में न आसके।

"हमारे सुयोग्य सभापति ने बंगला में बहुत ही उत्तम पुस्तकें लिखी हैं और वे बङ्गाल में ग्रन्थ रचना के लिये उतने ही प्रसिद्ध हैं जितने कि राजनीति के लिये। परन्तु सज्जनगण, उन के ग्रन्थ जो भिन्न लिपि में लिखे जाते हैं उसके कारण बङ्गला न जानने वाले किसी मनुष्य ने उन्हें समझने का कोई उद्योग नहीं किया। इस बात से यह स्पष्ट है कि समस्त भारतवर्ष के लिये एक लिपि का होना कितना आवश्यक है।

"हमलोगों की बंगला लिपि _गरी लिपि से अधिक प्राचीन है परन्तु देवनागरी अक्षरों को सारे भारतवर्ष के लिये एक लिपि बनाने का जो उद्योग किया जाता है उससे हममें किसी प्रकार दुःख नहीं होता, क्योंकि हमारी जातीय उन्नति हमारी भाषा की एकता पर निर्भर है और भाषा की एकता हमारी लिपि की एकता पर ही निर्भर है।

"सज्जनो, बस इतना ही कह कर मैं आपलोगों से आज्ञा लेता हूं।"

सलीम के मिस्टर राघवाचार्य बी० ए० ने जिनका स्वागत तालिध्वनि द्वारा किया गया कहा—

"सभापति महाशय तथा सज्जन गण, आप लोगों की आज्ञा लेकर मैं एक प्रस्ताव करने का साहस करूंगा। इस सभा के उद्देश्य जातीय भलाई से सम्बन्ध रखते हैं। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि आज जो यहां पर वक्तृताएं हुई हैं उन्हों ने इस उद्देश्य को परिमित कर दिया है और मुझे यही दुःख है। मैं समझता हूं कि आप लोगों का उद्देश्य सारे भारतवर्ष की भाषाओं के लिये एक लिपि करने का है परन्तु जान पड़ता है कि आज के व्याख्यान देने वालों ने आप के इस उद्देश्य को उत्तरी और पश्चमी भारतवर्ष की भाषाओं के लिये ही परिमित रक्खा है। मैं समझता हूं कि यह विचार ठीक नहीं है। मेरी समझ में यदि उत्तरी और पश्चमी भारतवर्ष की भाषाओं के लिये एक लिपि का होना सम्भव है तो इसी प्रस्ताव को बढ़ा कर उसमें दक्षिणी भारतवर्ष और लंका की भी भाषाओं को सम्मिलित कर लेना बहुत कठिन नहीं होगा। इस सम्बन्ध में इस प्रस्ताव पर भी विचार कर लेना चाहिए कि यदि हम लोग एक भाषा और उसके लिये पहिले पहल एक लिपि करना चाहते हैं तो वह लिपि योरप की क्यों न हो। मुझे कदाचित यह दिखलाने की आवश्यकता न होगी कि यह प्रस्ताव बिल्कुल असम्भव है। यदि भारतवर्ष जैसे बड़े देश में किसी समय एक भाषा हो सकती है तो वह योरप की कोई भाषा नहीं हो सकती। हमारे श्राद्ध तथा हमारी अन्य धार्मिक क्रियाओं के लिये कभी कोई योरप की भाषा नहीं हो सकेगी। हमारे मज़दूर आदि अपने कठिन परिश्रम का रोना कभी किसी युरोप की भाषा में नहीं रो सकेंगे। किसी योरोप की भाषा में भारतवर्ष के विचार और वेदान्त पूरी तरह यथार्थ रीति से नहीं प्रगट किए जासकते हैं। तब यदि सारे भारतवर्ष के शिक्षित और अशिक्षित ऊँच और नीच सभी लोगों के लिये एक भाषा का होना सम्भव है तो वह भारतवर्ष की ही भाषा है और सम्भवतः वह हिन्दी ही होगी। भारतवर्ष की सब बोल चाल की भाषाओं के स्थान पर एक भाषा करने के लिये मेरी समझ में हिन्दी सब से उपयुक्त है। इसी भाषा को भारतवर्ष के अधिकांश लोग समझते हैं और वह उर्दू तथा अन्य कई भाषाओं से बहुत

कुछ मिलती जुलती है। और संस्कृत के साथ जो उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है उस से यह निश्चय है कि प्रचार बढ़ाने के लिये यही सब से उतम और विज्ञान तथा आज कल की अन्य आवश्यकताओं के लिये वही सब से अधिक उपयुक्त है। और यह उचित ही है कि हमें ऐसा यत्न करना चाहिए कि वह हिन्दी जिस लिपि में लिखी जाती है वही सारे भारतवर्ष की लिपि बनाई जाय। योरप की लिपि से जो कि एक बारगी दोष से भरी हुई है हम लोगों का काम नहीं चलेगा। भारतवर्ष की मुख्य मुख्य लिपियों की विशेषता यह है कि उन में प्रत्येक उच्चारण के लिये एकही अक्षर और प्रत्येक अक्षर के लिये केवल एकही उच्चारण है। परन्तु क्या हमें निश्चय है कि देवनागरी अक्षरों में कुछ भी दोष नहीं है? निस्सन्देह प्रत्येक बालक की माता अपने बालक को संसार में सब से सुन्दर समझती है चाहे वह कैसाही कुरूप क्यों न हो। यदि हम पक्षपात रहित होकर देवनागरी लिपि की जांच करें तो सम्भवतः हमें विदित होगा कि उसमें कुछ सुधार की आवश्यकता है। यहां कई वर्ष हुए कि सर एण्टनी मेकडानेल के समय में न्यायालय तथा दफ़्तरों में उर्दू के साथ साथ हिन्दी के प्रचार के विषय में जो विरोध हुआ था वह सब लोगों को विदित है। उसका एक कारण यह बतलाया गया था कि देवनागरी अक्षरों के लिखने में बहुत समय लगता है। मैं समझता हूं कि इस बात का उत्तर अभी तक नहीं दिया गया। और न देवनागरी लिपि देखने ही में सब से सुन्दर है। वह कोनो तथा आड़ी और बेड़ी लकीरों से भरी हुई है। यदि हम देवनागरी लिपि को सुन्दर गोल मठोल तेलगू लिपि के सामने रख कर देखें तो मेरे कथन की सत्यता आप लोगों को विदित हो जायगी।

"मेरा प्रस्ताव है कि कुछ योग्य मनुष्यों की एक छोटी सी कमेटी नियत की जाय जो कि देवनागरी लिपि को सरल और यदि सम्भव हो तो सुन्दर भी बनाने के विषय में विचार करे। फिर यह संशोधित लिपि अन्त में धीरे धीरे सारे भारतवर्ष और लंका में प्रचलित हो जायगी। दक्षिणी भारतवर्ष तथा लंका में पांच

भाषाएं हैं अर्थात् तामिल, तेलगू, कनारी मलयालम और सिंघाली। इनमें से अन्तिम चारों भाषाओं के लिये संशोधित देवनागरी के अक्षर बहुत सुगमता से काम में लाए जा सकते हैं। संघाली भाषा हिन्दी की नांई संस्कृत की एक शाखा समझी जाती है और तेलगू कनारी तथा मलयालम यद्यपि द्राविड भाषाएं हैं तथापि उनपर आर्य लोगों और संस्कृत भाषा का इतना प्रभाव पड़ा है कि वे आर्य-द्राविड भाषा कही जा सकती हैं। केवल शुद्ध तामिल भाषा में ही हिन्दी भाषा के कुछ अक्षर नहीं हैं और उनमें कुछ अक्षर ऐसे हैं जो कि हिन्दी भाषा में नहीं हैं। इस भाषा के लिये भी नागरी लिपि जहां तक उसे व्यवहार करना सम्भव है व्यवहार की जा सकती है। इसलिये मैं इस बात पर जोर दूंगा कि सभा देवनागरी लिपि को सुधारने और सुगम बनाने के विषय में विचार करे। यद्यपि इस प्रस्ताव को स्वीकार करने से हिन्दी बोलने वाले लोगों को कुछ सांकल्पिक विरोध होगा परन्तु इससे उसके सारे देश में प्रचलित होने में जो सांकल्पिक विरोध है वह बहुत कम हो जायगा।

"सज्जनो बस इतनाही कह कर अब मैं आप लोगों से आज्ञा मांगूंगा।"

सभापति मिस्टर रमेशचन्द्र दत्त ने उस दिन के अधिवेशन का कार्य समाप्त करते हुए कहा—

"सज्जनगण, हममें से बहुतों को अभी दो ही घंटे में एक दूसरे बड़े अधिवेशन में उपस्थित होना है। अतः मैं समझता हूं कि यदि मैं अपने विचारों को जहां तक सम्भव हो थोड़े में प्रगट कर दूं तो इसके लिये आप लोग मुझे धन्यवाद देंगे।

"आज के व्याख्यानदाताओं से हम लोगों ने बड़े उपयोगी प्रस्ताव सुने हैं। उनके विषय में मैं कुछ कह कर आज का काम समाप्त करूंगा।

"मिस्टर तिलक ने देवनागरी लिपि का उल्लेख किया है और उन्होंने आप लोगों से जो कुछ कहा है वह ऐतिहासिक रीति पर ठीक है। देवनागरी भारतवर्ष की सब से प्राचीन लिपि नहीं है।

को सब से प्राचीन लिपि जिसके विषय में हम लोगों को ज्ञात है, वह है जो कि अशोक के खुदवाए हुए लेखों में देखी है। आज कल की छपी हुई पुस्तकों में हम देवनागरी लिपि जिस रूप में देखते हैं वह अशोक की लिपि का ही रूपान्तर । इस प्रश्न को नहीं उठाया चाहता कि अशोक की लिपि उत्पत्ति किस प्रकार हुई। यह प्रश्न आज के विषय के बाहर । मिस्टर तिलक ने यह एक बड़ा अच्छा प्रस्ताव किया है कि लिपि को धीरे धीरे स्कूली पुस्तकों में प्रचलित करना चाहिए जहां तक सम्भव हो अन्य भांति से भी उसके प्रचार का करना चाहिए। बहुत सी स्कूली किताबें हमारेही छापेखानों हैं और मुझे विश्वास है कि यदि हम उनमें धीरे धीरे का प्रवेश करें तो वे स्कूल की पाठ्य पुस्तकों से निकाल यगी। फिर उन्होंने कुछ अनुभवी मनुष्यों की कमेटी सर्वमान्य लिपि स्थिर करने के लिये कहा है। सज्जनो यह विश्वास है कि सर्वमान्य लिपि आप से आप हो दि हम लोग हिन्दी अक्षरों के व्यवहार करने का संकल्प लिखते लिखते एक ऐसी लिपि स्वयंही बन जायगी जो कि सुगम होगी। अनुभवी मनुष्यों की कमेटी यदि बैठ कर इस को सुधारें तो उसको लिखने में सुगम बनाने में उसकी आधी सफलता न होगी जितना कि लोगों के लिखते लिखते आप ही एक लिपि बन जाने से होगी। जब समस्त भारतवासी देवनागरी लिपि को लिखने लग जायंगे तो समय पाकर उसका एक ऐसा रूप बन जायगा जो कि आज कल की छापे की देवनागरी की अपेक्षा लिखने में कहीं सुगम होगा। मैं यह बात स्वयं अपने अनुभव से कहता हूं। मुझे जब संस्कृत लिखने की आवश्यकता पड़ती थी तो मैं उसे नागरी अक्षरों में लिखा करता था और नागरी अक्षर छापे के अक्षरों की अपेक्षा लिखने में बहुत सुगम होते थे। अतः मुझे इस बात पर बहुत ही अधिक विश्वास है।

"प्रोफेसर रानाडे ने वैज्ञानिक शब्दों को स्थिर करने के विषय में इस सभा ने जो उत्तम कार्य किया है उसका वर्णन किया है

और इसके पहिले भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों में इस विषय
उद्योग हुआ है उसका भी उल्लेख किया है। मेरा सम्बन्ध
के साहित्य परिशद से बहुत वर्षों तक रहा है और उस परि
का भी एक उद्देश्य वैज्ञानिक कोश बनाने का था। उस परि
इस विषय में बहुत अच्छा कार्य किया है और इस सभा
बहुत अच्छा काम किया है जैसा कि इस कोश के पांच प्रक
भागों से स्पष्ट है, मैं इन पुस्तकों को एक बार उड़ती नज़र से
सका हूं और मुझे विश्वास है कि उनमें बहुत से शब्द बहु
उत्तम चुने गए हैं और वे केवल हिन्दी बोलने वालों के ही
नहीं वरन सारे भारतवर्ष के लिये उपयोगी होंगे। मैं बड़ी
से यह आशा करता हूं कि यह कार्य शीघ्र समाप्त हो जा

"दीवान बहादुर अम्बालाल ने कहा है कि
सर्वप्रिय ग्रन्थों के सिवाय विज्ञान के सब ग्रन्थ भी ना
में छपने चाहिएं। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि
लोग इस प्रस्ताव को ठीक समझते होंगे और जहां तक
आज कल के बहुत से वैज्ञानिक ग्रन्थ नागरी अक्षर
सकते हैं। उन्होंने यह भी एक बड़ा अच्छा प्रस्ताव किया
विज्ञापन देवनागरी अक्षरों में छपवाने चाहिएं, फारसी अक्षरे
सज्जनो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि विज्ञापन का देवना क्षरों
में छपवाना भी भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों में नागरी अक्षरों का प्रचार
करने का एक मार्ग है। मुझे उनके इस कथन से बड़ा आश्चर्य
हुआ कि बनारस से नागरी अक्षरों में हिन्दी का कोई अच्छा पत्र
नहीं निकलता। भारतवर्ष के इस भाग में एक अच्छा हिन्दी का
पत्र अवश्य होना चाहिए और जितनीही जल्दी ऐसे पत्र के निका-
लने का प्रबन्ध हो सके उतनाही अच्छा है।

"सर भालचन्द्र कृष्ण ने नागरी अक्षरों को व्यवहार करने
के बहुत अच्छे प्रमाण बतलाए हैं और दक्षिण में मराठी लिपि में
परिवर्तन करने का जो उद्योग किया गया था उसका उन्होंने बहुत
हास्यजनक वृत्तान्त वर्णन किया है। यदि मुझे समय होता तो मैं आप
को इससे भी अधिक हास्यजनक वृतान्त समस्त बंगाल को एक भाषा

को दुःख नहीं होता। भाषाएं मृत होती ही हैं और उन की मृत्यु पर हमें आंसू बहाने की आवश्यकता नहीं है वरन हमें प्रसन्न होना चाहिए।

"सारे भारतवर्ष की एक भाषा हो जायगी अथवा नहीं और यदि हो जायगी तो वह कौन सी भाषा होगी, इस भविष्यतवाणी के करने का साहस मैं नहीं कर सकता और यदि ऐसा होना है तो सम्भव है कि यह उन मार्गों के द्वारा हो जाय कि जिन के द्वारा आपके कथनानुसार हम उद्योग नहीं कर रहे हैं। कभी कभी डाक्टर लोग किसी रोगी की चिकित्सा करने के लिये मिलकर उपाय सोचते हैं और जब कि उस विषय में उनकी बुद्धि नहीं काम करती तो उधर रोगी स्वयं ही अच्छा होने लगता है। क्या यही बात हमारे विषय में नहीं हो सकती? क्या यह सत्य नहीं है कि जब कि हम लोग एक भाषा होने का केवल उपाय ही सोच रहे हैं तो इण्डियन नैशनल कांग्रेस ने इस विषय को बहुत कुछ निश्चित कर दिया है? उसने एक भाषा की नींव डाल दी है। परन्तु उस से आप यह न समझिए कि मैं भारतवर्ष की एक भाषा के लिये अंगरेजी भाषा का पक्ष कर रहा हूं चाहे इस भाषा में कितने ही लाभ क्यों न हों। मैं स्वयं हिन्दी का पक्षपाती हूं और मैं नागरी अक्षरों को बहुत उत्तम समझता हूं और यदि सारे भारतवर्ष के लिये एक हिन्दी भाषा हो जाय तो मैं उसको प्रसन्नता से स्वागत करूंगा। सज्जनो, मैं अपने सभापति तथा उन महाशयों के लिये बड़े शुद्ध हृदय से धन्यवाद का प्रस्ताव करता हूं जिन्होंने आज हम लोगों के सामने व्याख्यान दिए हैं।"